BIHAR YOGA

रिखियापीठ सत्संग

भाग 2

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग

भाग 2

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

रिखियापीठ सत्संग 2

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में सितम्बर, 1997 में
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग



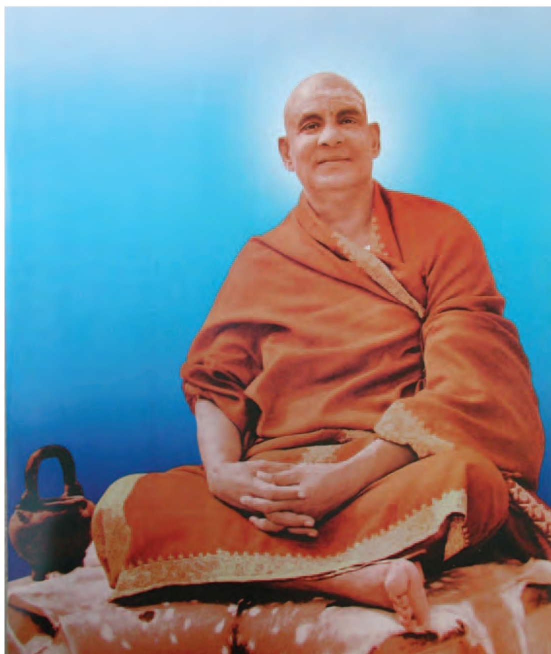
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम संस्करण 2012
पुनर्मुद्रण 2014

ISBN: 978-93-81620-11-3

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक— थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005



अध्याय 1

वैराग्य और निष्काम कर्म, दोनों एक ही हैं या इनमें अन्तर है? अगर अन्तर है, तो क्या है?

फर्क तो है। वैराग्य का कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। वैराग्य का मतलब कुछ और होता है। जिन विषयों को तुमने देखा और सुना है, जो तुम्हारे मन में बार-बार आते हैं, उनसे तुम्हें डर लगता है या तृष्णा होती है? तुमने किसी चीज का भोग किया हो, अच्छा खाना खाया हो, अच्छा कपड़ा पहना हो, उसकी याद बार-बार मन में आती है या नहीं? उन चीजों की तृष्णा होती है या नहीं? उसको कहते हैं राग। राग का अर्थ होता है मन में एक बाध्यता या सनक। मन में वही चीज बराबर घूमती रहती है, उसको कहते हैं राग। और जिसने तुमसे बुराई की हो, जिसने तुमको कष्ट दिया हो, उसकी याद आती है या नहीं? आती है। उसको कहते हैं द्वेष। द्वेष का मतलब होता है, नफरत। जो नहीं चाहते हो, वह द्वेष है।

राग और द्वेष, दोनों मन के ही धर्म हैं, एक ही भावना के दो पहलू हैं। हमारे पास एक मन है, उसके एक पहलू को हम पसन्द करते हैं, दूसरे को नापसंद। हमारे पास कोई दो मन थोड़े ही हैं। मन की वही वृत्ति है, एक से राग करती है, दूसरे से द्वेष। देखे गये, सुने गये विषयों की जो तृष्णा मन में है, उसको नियन्त्रित करना ही वैराग्य है – *दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्*। वैराग्य का मतलब कोई सम्प्रदाय नहीं होता है। हाँ, एक सम्प्रदाय भी है, जिसको कहते हैं वैरागी। वे लोग सफेद कपड़े पहनते हैं, दाढ़ी बढ़ाते हैं, तिलक लगाते हैं, कण्ठी पहनते हैं, खाने-पीने के उनके कुछ नियम होते हैं। उसे सम्प्रदाय कहते हैं। हम सम्प्रदाय की बात नहीं कर

रहे हैं, हम तो वैराग्य शब्द की बात कर रहे हैं। वैराग्य का मतलब है राग और द्वेष, दोनों का नहीं होना।

राग और द्वेष, दोनों की उत्पत्ति कहाँ से होती है? काम और क्रोध से होती है। काम माने चाहना और क्रोध का मतलब गुस्सा होना, निराश होना। जो चीज तुम चाहते थे, अगर वह तुमको मिल गयी, तो गुस्सा क्यों? मान लो, तुम घर चाहते थे, तुमको घर मिल गया, तो तुमको खुशी होगी, गुस्सा थोड़े ही होगा। तुमको बेटा चाहिए था, बेटा मिल गया तो तुम गुस्सा करोगे क्या? और बेटा न होकर बेटी हो गयी तो कहोगे, 'अरे, यह क्या बेटी हो गयी।' काम की पूर्ति न होने पर क्रोध होता है। काम से उत्पत्ति होती है क्रोध की और क्रोध से उत्पत्ति होती है द्वेष की। गीता में कहा गया है, इन दोनों की उत्पत्ति रजोगुण से हुई है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

महाशनः का मतलब बहुत खाने वाला, अग्नि के समान भोगों से न तृप्त होने वाला। काम ऐसा प्राणी है जो खाते जाता है। इच्छाओं को कितना भी पूरा करते जाओ, फिर भी भूख लगती रहती है। और क्रोध भी कभी खत्म नहीं होता, क्योंकि निराशा तो जिन्दगी भर लगी हुई है। कोई आदमी दुनिया में ऐसा नहीं है जिसको निराशा नहीं हुई हो। कोई ऐसा आदमी नहीं, जिसकी सब इच्छायें पूरी होती हों। कोई है क्या? काम और क्रोध, दोनों बहुत खाते रहते हैं, बहुत पेटू हैं, क्योंकि इच्छाओं की कितनी भी पूर्ति करते जाओ, पूरी होती नहीं, भूख कभी मिटती नहीं और क्रोध भी कभी खत्म नहीं होता। निराशा तो जिन्दगीभर लगी रहती है। इसलिए गीता में कहा है, इन्द्रियों को वश में करके इन विषयों को मारो –

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥3.41॥

इसलिए वैराग्य का अर्थ होता है निष्काम। तुम जो भी काम करते हो, उसके पीछे इच्छा रहती है, पुत्र, नौकरी और खेती के पीछे इच्छा है, रात को सोते हो, सवेरे जागते हो, खाना बनाते हो, उसके पीछे भी इच्छा है, कोई भी काम करो, उसके पीछे इच्छा है। और वह इच्छा अपने लिए है।

बेटा क्यों चाहिए? अपने लिए। घर क्यों चाहिए? अपने लिए, सब अपने लिए। समझ गये न? सब कामना आदमी अपने लिए करता है। जो कामना दूसरे के लिए की जाती है, वह कामना नहीं है। जो चीज तुम दूसरे के लिए चाहते हो, वह कामना नहीं होती। जो चीज तुम अपने लिए चाहते हो, जिस इच्छा का सम्बन्ध अपने से है, उसको कामना कहते हैं। और जब तुम्हारी इच्छा का केन्द्र तुम न होकर कोई और हो, तब वह निष्काम हुआ। उपनिषद् कहता है –

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।
न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।

पुत्र को तुम प्रेम करते हो, इसलिए नहीं कि वह तुम्हारा पुत्र है; पत्नी को तुम प्रेम करते हो, इसलिए नहीं कि वह तुम्हारी पत्नी है; तुम उन्हें अपने लिए प्यार करते हो। ऐसा शास्त्र में लिखा हुआ है। इसका मतलब जो भी सम्बन्ध दुनिया में है, उसका केन्द्र 'मैं' हूँ। जिसमें 'तुम' केन्द्र हो जाते हो, उसको कहते हैं त्याग। अभी 'मैं' केन्द्र हूँ सबका, जो कुछ हो रहा है, मेरे लिए हो रहा है। और जब दूसरे के लिए होने लगता है, तब उसको कहते हैं निष्काम। निष्काम ही परमार्थ है और परमार्थ में इच्छा नहीं, संकल्प होता है। जब तुम दूसरे की भलाई और सेवा की बात सोचते हो, वह इच्छा नहीं, संकल्प है। कामना और संकल्प में इतना ही फर्क होता है। इसलिए हम हमेशा कहते हैं, हमारा संकल्प है, हमारी इच्छा नहीं।

दूसरी बात ध्यान देने की है – दुनिया में कितने ही लोग सेवा भी करते हैं, उसके पीछे कारण कुछ और होता है। अपना स्वार्थ होता है, चाहे छोटा हो या बड़ा। मैं दूसरों की सेवा क्यों करता हूँ? ताकि भगवान तक पहुँच जाऊँ। मैं दूसरों की सेवा इसलिए करता हूँ कि मेरा नाम हो, मेरी तारीफ हो, यह भी स्वार्थ की श्रेणी में आता है। ऐसी सेवा बहुत कठिन है, जिसमें तुमको कोई फल मिले या नहीं, उससे तुम्हें फर्क न पड़े। गधे को खिलाया, न पाप न पुण्य। जिस सेवा को करने से तुमको कुछ नहीं मिलता, न नाम, न धन, न यश, न दुःख, न शान्ति, उसको कहते हैं निष्काम।

जब मदर टेरेसा 40-50 साल पहले कलकत्ता में आयीं, तो क्या करती थीं? सड़क से मरते हुए लोगों को ले आती थीं। लोग उसका मजाक उड़ाते थे। वे सोचते थे, इसका दिमाग ठीक नहीं है, वह तो मरने ही वाला है, उसे

ले जाने की क्या जरूरत है। और वह मर भी जाता था। वे कचड़े से, सड़क से उठा कर ले जाती थीं। वे ऐसा क्यों करती थीं? करुणा? नहीं, ईश्वर को खोजने के कई तरीके होते हैं। जैसे कलकत्ता जाने के लिए एक रास्ता बम्बई से, दूसरा मद्रास से, तीसरा कहीं और से है, एक ही रास्ता कलकत्ता के लिए नहीं है। वैसे ही भगवान् के पास पहुँचने के लिए हर आदमी के लिए अलग रास्ता है। तुम जहाँ हो, वहीं से चलो। तुमको अगर देवघर से कलकत्ता जाना हो, तो बम्बई जाने की जरूरत नहीं है, सीधे जा सकते हो। बहुत से लोग विचार नहीं करते। भगवान के पास पहुँचने के लिए बहुत से रास्ते हैं। जब तुम्हारे पुत्र, पत्नी या इष्ट मित्र को तकलीफ होती है, तो तुमको तकलीफ क्यों होती है? होती है न? मगर जब किसी अपरिचित को तकलीफ होती है, तब तुमको तकलीफ नहीं होती। वेदान्त में इसके लिए द्वैत शब्द का प्रयोग किया गया है। तुम्हारी आत्मा अपनी स्त्री, बेटे, भाई, भाभी इत्यादि से जुड़ी हुई है, इसलिए उनकी तकलीफ से तुम्हें तकलीफ होती है। किन्तु जब तक तुम्हारी आत्मा दूसरों से भी इसी प्रकार नहीं जुड़ेगी, तब तक तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं होगा। और जब तक हृदय शुद्ध नहीं होगा, तब तक भगवान की छाया भी नहीं दिखेगी, क्योंकि भगवान भी आईने में दिखायी देते हैं।

जो मुखड़ा देखन चहिए तो दरपन मांजत रहिये।
जो दरपन लागे काई तो मुखड़ा लखा न जाई॥

अगर चेहरा देखना हो, कहाँ देखोगे? आईने में देखोगे कि नहीं! और अगर आईना गन्दा रहा तो क्या करोगे उसको? साफ करोगे। जैसे आईना साफ नहीं हो तो चेहरा नहीं दिखेगा, उसी तरह भगवान का हिसाब है। भगवान तो तुम ही हो, मगर तुमको अपना चेहरा नहीं दिख रहा है।

हमारे गुरुजी कहते थे, इसके लिए आध्यात्मिक स्कूल में भर्ती हो जाओ, जिसका पहला दर्जा है 'सेवा', दूसरा दर्जा है 'प्रेम', तीसरा दर्जा 'दो-दो-दो', चौथा दर्जा 'आत्मा शुद्ध करो, दिल को साफ करो' और पाँचवाँ दर्जा 'ध्यान करो।' छठा दर्जा यूनिवर्सिटी का है – 'भगवान का दर्शन करो।' तुम कुछ भी करो, गीता, रामायण, भागवत पढ़ो, पूजा-पाठ करो, पर केवल उससे कुछ नहीं होगा। केवल सब्जी काटने से काम नहीं चलता, उसमें नमक भी डालना पड़ता है। केवल सूजी से हलवा नहीं बनता, उसमें चीनी भी डालनी पड़ती है।

मदर टेरेसा ने भी यही कहा था कि भगवान की पूजा गिरजाघर में तो सभी करते हैं, मैंने अच्छे खासे पैसे वालों को भी भगवान की पूजा करते देखा है, वे मन्दिर में बच्चों के साथ जाते हैं, घण्टी बजाते हैं, आरती करते हैं, पर असाध्य बीमारी से पीड़ित सड़क पर पड़े हुए आदमी को कोई चूमता ही नहीं। और मजे की बात यही है कि वे कहती थीं, 'मैं उसे ठीक करने के लिए नहीं लायी हूँ। वह जो असाध्य बीमारी से पीड़ित आदमी है, उसे प्रेम की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी तुमको। उसको भी प्यार चाहिए, वह भी चाहता है कि कोई उसको चाहे, प्यार दे। जैसे एक सुन्दर स्त्री पुरुष को चाहती है, माता पुत्र को चाहती है, सब चाहते हैं स्त्री उसे प्यार करे, पुरुष उसे प्यार करे, बेटा प्यार करे या माँ प्यार करे, उसी प्रकार एक सड़क पर पड़ा हुआ आदमी क्या प्यार नहीं चाहता? तो उसको कौन देगा प्यार?'

सन् 1950 की बात है। मैं संन्यास ले चुका था, हरिद्वार में कुम्भ मेला हुआ। हजारों-लाखों लोग आये थे। जब मेले में आते हैं, तो आस-पास की जगहों में भी जाते हैं। एक दिन शाम को मेरे गुरुभाई स्वामी चिदानन्द जी, जो स्वामी शिवानन्द जी की गद्‌दी पर बैठे हैं, वे गये, उनको एक छोटा-पतला आदमी सड़क के किनारे पड़ा हुआ मिला। उसके शरीर पर मक्खियाँ बैठी थीं, शरीर से बास आ रही थी। तो वे आश्रम आये, एक बोरा ले गये और उस बोरे में भरकर आदमी को ले आये। उसको एक छोटे से कमरे में रख दिया। डेटॉल और कुछ दवाओं से उसका घाव वगैरह साफ किया। वह कोढ़ की बीमारी से पीड़ित था, उसको गलित कुष्ठ था। कुष्ठ दो प्रकार का होता है, एक गलित कुष्ठ होता है, जिसमें कोढ़ फूटता है। दूसरा होता है जिसमें सफेद दाग होता है।

वह वहाँ मरने के लिये आया था, गंगा किनारे शरीर छोड़ने के लिए। यह बाद में पता चला। उसको लाये तो आश्रम में हल्ला हो गया कि कोढ़ी को आश्रम में लाया है, क्योंकि आश्रम तो एक सार्वजनिक स्थान है, वहाँ कमजोर, अच्छे, ब्राह्मण, वैश्य, छुआछूत मानने वाले, हर प्रकार के लोग आते हैं। स्वामीजी को खबर लगी, उन्होंने कहा, उसके लिए झोपड़ी बना दो। उसको भी एक सहारा मिल गया। अब हमारी, उनकी, सबकी ड्यूटी लगा दी। आश्रम में तो सेवा करनी पड़ती है, उसकी टट्टी साफ करना, दवाई लगाना, दवाई खिलाना और मुझको बहुत गुस्सा आता था। वह गाली दिये बिना तो बोलता ही नहीं था, बहुत बुरा लगता था। सेवा करते थे, कम

से कम बात तो अच्छी करे। साला बोले बिना तो कुछ बोलता ही नहीं था। यह नहीं सोचता था कि मुझे यहाँ लाये हैं, साफ करते हैं, सेवा करते हैं, दवाई देते हैं।

एक दिन मेरी ड्यूटी लग गयी। मुझे गुस्सा आया, क्योंकि मैं जिस जात का हूँ, उसमें गाली सुनने की तो आदत है नहीं। किसी का ऊँचा स्वर नहीं सुना, किसी का हुकुम नहीं सुना और यह गाली देता है। मैंने स्वामी चिदानन्द जी से कह दिया, मैं यह काम नहीं करूँगा। स्वामीजी को पता चल गया। चार-पाँच दिन के बाद स्वामीजी ने समझाया, यह सेवा नहीं है, अपने को साफ करना है, अपने अन्दर देखने का तरीका है। अगर तुम्हारे अन्दर घृणा या प्रेम है, उसको प्रकट कैसे करोगे? अगर तुम्हारे अन्दर पेशाब नहीं है, तो बाहर क्या फेंकोगे? उसी प्रकार अगर अन्दर प्रेम नहीं है, तो बाहर क्या दोगे? आखिर आदमी जो दूसरे को देता है, वह अपनी चीज देता है। तुम्हारे अन्दर घृणा है। उसने अगर गाली दी कि तुम गधे हो, तो क्या तुम गधे हो गये? उसने तो अपने अन्दर को प्रकट किया, तुम्हें उससे क्या मतलब? मुझे यह सब समझाया।

मदर टेरेसा की बात चल रही थी, जितने भी अनाथ बच्चे होते थे, उनको उठा कर ले आती थीं। सेवा का यह उत्तम तरीका है। भगवान को पाने का यह सबसे उत्तम तरीका है। दूसरों से जो निन्दित, उपेक्षित हों, उनकी सेवा करनी चाहिए। इसलिए नहीं कि वे अच्छे हो जायेंगे, मरने वाला तो मर ही जाएगा। वह कोढ़ी आदमी भी एक दिन वहाँ से गायब हो गया। चिट्ठी लिख कर गया, मैं यहाँ मरने के लिए आया हूँ, अच्छा होने के लिए थोड़े ही आया हूँ। मैं पापी हूँ, गन्दा हूँ, गंगा किनारे मरूँगा तो अगला जन्म अच्छा होगा। स्वामी चिदानन्द की भावना दूसरी थी और हमारी भावना दूसरी थी।

निष्काम शब्द बड़ा ही व्यावहारिक है और वैराग्य से श्रेष्ठ है, यद्यपि कठिन है। सारी गीता में यही बात बताई है। गीता निष्काम कर्मयोग पर ही है। संजय से पूछा, धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है? यह शरीर ही धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र है और कौरव-पाण्डव भी इसी के अन्दर दिखते हैं। संजय ने आखिरी श्लोक में कहा है, राजन् क्या बताऊँ, जहाँ भगवान कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारण करने वाला अर्जुन है, वहीं श्री है, वहीं विजय है, वही विभूति है। धनुर्धारी अर्जुन का मतलब निष्काम कर्मयोगी और योगेश्वर श्री कृष्ण का मतलब अपने अन्दर जो ऊँची आत्मा है, परमात्मा है।

जो आदमी निष्काम कर्म करता है, उसका अन्तस् हमेशा साफ रहता है, उसे श्री मिलती है। श्री का मतलब सुन्दरता, सम्पत्ति, मंगल, शक्ति। विजय का मतलब जीत, तुम जो भी करोगे, जीत होगी, योग सिखाओ, बैडमिन्टन खेलो, चाहे जो करो। विभूति का मतलब होता है विशेषता। जैसे, बहुत से लोग अच्छा गाने वाले होते हैं, यह विभूति है। महात्मा गाँधी, क्या रास्ता उन्होंने निकाला अँग्रेजों को हराने का! महात्मा गाँधी के पास विभूति थी। वैज्ञानिकों के पास विभूति है। एक वैज्ञानिक ने सिंकोना निकाला। जानते हो सिंकोना कैसे बना? कहते हैं एक अंग्रेज था, उसको बुखार आया। उसे नींद आ रही थी, वह चलते-चलते एक तालाब के किनारे सो गया। जब उसकी आँख खुली, उसने उस तालाब का पानी पी लिया। जब वह सोकर उठा, तब उसका शरीर पसीने से भरा हुआ था और बुखार उतर गया था। वह कैसे? उसने सोचा और उसे पता चला कि वहाँ सिंकोना के कई पेड़ हैं, सिंकोना के पत्ते तालाब के पानी में गिरते हैं और वह पानी कुनैन का काम करता है। यह विभूति है। विभूति का मतलब होता है, एकदम अंतर्ज्ञान हो। हमको भी हुआ, हम तो वेदान्त वाले आदमी हैं, हमने योग पर आज तक कोई किताब नहीं पढ़ी है। शंकराचार्य का भाष्य, रामानुजम् का भाष्य, सब का सब अध्ययन किया हुआ है, सब जबानी याद है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, यही सब अध्ययन किया है। योग तो जानते ही नहीं थे। फिर भी मैंने सोचा यही काम करेगा और काम कर गया।

मुंगेर में मैंने छोटा-सा स्कूल खोला था, लोग मजाक करते थे, 15 दिन का स्कूल कहते थे। इक्कीस रुपये फीस थी पन्द्रह दिन की। उसमें खाना-पीना-रहना, सब था। मुझसे लोग कहते थे, 'स्वामी जी, इससे अच्छा नेचुरोपैथी कीजिए, गर्म-ठण्ढा पानी का टैंक रखिये, लेप का उपयोग कीजिए।' मैंने कहा, नहीं। और आज देखो, दुनियाभर में लोग योग के स्कूल खोल रहे हैं। इसको कहते हैं, विभूषण। अब बिहार योग भारती यूनिवर्सिटी है। तुम देखो दस साल में तीन यूनिवर्सिटी हो जाएँगी। अभी लोग हँसते होंगे, मजाक करते होंगे, क्या यूनिवर्सिटी खोल कर रखी है। मगर दस साल में सब लोग योग-यूनिवर्सिटी खोलने लगेंगे। यह जो विचार है, अन्तर्ज्ञान से आता है। विभूति शब्द को समझा रहा था, विभूति का मतलब अपने अन्दर अपनी आत्मा की आवाज आती है, विचार आता है। वैज्ञानिक, साहित्यकार, कवि, यहाँ तक कि जितने बड़े-बड़े योद्धा हुए, जैसे, शिवाजी, महाराणा प्रताप,

झाँसी की रानी, इन सबमें विभूतियाँ होती हैं। ये किसी-किसी में प्रकट होती हैं। भगवान ने गीता में कहा है, जब ऐसी विभूति किसी में हो, तो समझो वह मेरे ही प्रकाश के अंश से पैदा हुआ है।

बँटवारे के समय हम बंगलादेश में ड्यूटी पर थे। वहाँ रिफ्यूजी कैम्प के लिए जो अनाज आता था, वह ट्रक लूट लिया गया। मैंने कहा, यह कैसे हो सकता है! मैंने दूसरे दिन बन्दूक उठाई और चल पड़ा। जो लोग लूटने आये, उनसे मैंने कहा – खबरदार! सब को मार डालूँगा, सब के सब भाग गये। यह कुछ दिन चला। एक दिन किसी ने कहा, यही वह व्यक्ति है, उसने मुझे पहचान लिया। मैंने सोचा, अब यहाँ नहीं रहूँगा, जिन्दगी खतरे में है। यह जिन्दगी इतनी सस्ती नहीं है, जो इन बेवकूफों के लिए गवाँ दूँ। तुरन्त मैंने निर्णय लिया और वहाँ से चल दिया। एक मारवाड़ी संस्था इस कार्य का संचालन करती थी। मैंने इस्तीफा दिया, कलकत्ता गया और कहा – अब अपना काम खुद सम्भालिये। नहीं तो मैं तब ही मर गया होता।

मैं ऋषिकेश आया। उन दिनों मीरा बहन वहाँ आया करती थीं। हम लोगों ने सोचा और सात-आठ मील दूर एक जमीन ले ली, वहाँ कोढ़ियों को बसा दिया। उन लोगों के लिए कुटिया बना दी। उन लोगों को रोज एक बीड़ी का बण्डल आश्रम की तरफ से दिया जाता था। रामायण सिखाने के लिए रोज हम रामचरितमानस पढ़ने जाते थे। दवाई के लिए डॉक्टर को पैसा देना, सरकार की तरफ से जो सहायता मिलती थी उसे उन तक पहुँचाना, जो कुछ हो सकता था, करते थे। मगर किसलिए किया? इसलिए कि कहा जा रहा है, कुछ समझ में नहीं आता था, क्यों? जब तक लोहा पूरा पिघलता नहीं है, उसको मोड़ नहीं सकते। लोहा पिघलने के बाद उसका चाहे चदरा बनाओ, एंगल बनाओ, कुछ भी बनाओ। लेकिन व्यक्ति पिघले लोहे के समान तब तक नहीं बनता जब तक वह अपने संन्यास में अच्छी तरह से अटल न रहे। हमारे जीवन में भी कई उतार-चढ़ाव, तकलीफें आयीं, लेकिन सोचा, कुछ भी छूट जाए, पर संन्यास नहीं छूटना चाहिए। संन्यास तो अन्तिम चीज है, और संन्यास के बाद गृहस्थ में जाना फालतू बात है। संन्यास तो बहुत आगे की चीज है। कलेक्टर बन गये, फिर उसको छोड़कर चपरासी बन जाएँ, तो कैसा लगता है? संन्यास के बाद शादी, कैसा खराब लगता है। संन्यासी हमारे यहाँ सब से ऊँचा माना जाता है। हाँ, संन्यासी की तरह नहीं रह सकते, लेकिन कोशिश करेंगे। अपने पर विश्वास होना चाहिए या गुरुजी पर।

लेकिन गुरुजी तो रहे नहीं, फिर किससे पूछें, कौन बोलेगा और हम किसी की बात सुनने वाले हैं नहीं। इस किताब में ऐसा लिखा है, उस किताब में ऐसा लिखा है, नहीं। हाँ, जिस दिन भगवान कहें, तब हम करेंगे। जब भगवान का आदेश आया, यह काम कर, हम करेंगे। आज जो हम कर रहे हैं, वह उनके कहने पर ही कर रहे हैं।

क्या इसमें कभी अहंकार नहीं आ सकता है? आप की बात नहीं कर रहा, पर अहंकार तो हो सकता है।

हाँ, आ सकता है। आता है, तो आने दो। छोटी-छोटी बातों में शक्ति नष्ट न करो, दूसरों का भला करते जाओ। अगर अहंकार आता है, तो दूसरे को क्या तकलीफ होगी? अहंकार आता है, आने दो और दूसरों का भला करते जाओ। अहंकार को देखोगे, तो दूसरे का भला करने में तकलीफ होगी, इसलिए अहंकार करते जाओ और किसी का भला करते जाओ। यह बहुत जरूरी है। और इसका मतलब यह है दूसरे का भला इसलिए नहीं किया जाता कि उसका भला होगा। संसार में हर एक व्यक्ति को प्यार चाहिए। संसार का हर एक व्यक्ति चाहता है कि कोई मुझे प्यार करे। बीमार आदमी भी चाहता है, मरने वाला आदमी भी चाहता है। जो कोढ़ी है, जिसे कुष्ठ है, वह भी प्यार चाहता है। सड़क के किनारे गटर में पड़ा हुआ आदमी भी प्यार चाहता है। जिसकी न माँ है, न बाप, न घर, जो सड़क पर भीख मांगता है, वह भी प्रेम चाहता है।

प्रेम एक ऐसी चीज है, जो हर एक मनुष्य की मूल आवश्यकता है। यह प्रेम भी तुम अगर किसी को दे सकते हो, तो तुम भगवान को प्रेम देते हो। आखिर जिस भगवान को ढूँढते हो, वह भगवान तो तुम ही हो। उस शिला का देव मिथ्या, शक्ति जो है वह तुममें है। भगवान पत्थर में थोड़े ही है, तुम ही में है, पत्थर में तुम उसे प्रक्षेपित करते हो। भगवान तुममें है, मूर्ति में उसे प्रकट करते हो; वासना तुममें है, स्त्री में प्रकट करते हो; लोभ तुममें है, धन में प्रकट करते हो; क्रोध तुममें है, दूसरों में प्रकट करते हो। काम, क्रोध, लोभ, भक्ति, करुणा, सब तुममें है। तुम केवल प्रकट करते हो, इसलिए तुमको दिखायी देता है।

यदि निष्काम बनना इतना सरल होता, तो संसार में इतनी दिक्कत नहीं होती। एक आदमी एक छोटा परिवार बना कर रहता है, जिसमें माँ-बाप,

बीबी-बच्चे होते हैं। यदि सारा संसार एक घर होता, तो कितनी दिक्कत होती! खाना बनाने के लिए कितना बड़ा बर्तन, कितनी बड़ी कड़चुली, सब चीज कितनी बड़ी रखनी पड़ती। यह एक व्यवस्था है, हमारा घर, उनका घर, सबका घर अलग-अलग है। यह जो अलग-अलग व्यवस्था की है, वह सुविधा के लिए की गयी है, इसलिए नहीं कि तुम और हम अलग-अलग हैं। अगर दुनिया के पाँच अरब लोग एक ही जगह पर खाने लगें तो क्या होगा? मुश्किल नहीं है क्या? व्यावहारिक ही नहीं है। तो ऐसी व्यवस्था है कि बस पति-पत्नी हों। इसका एक परिवार हो, उसका एक परिवार हो, अपने-अपने घर को देखो। यह सुविधा के लिए किया गया है, किन्तु हम वास्तव में अलग नहीं, एक हैं। तुम्हारा घर अलग है, मेरा घर अलग है, रसोई अलग-अलग है। तुम्हारा बैंक एकाउण्ट अलग है, मेरा बैंक एकाउण्ट अलग है; तुम्हारी सम्पत्ति अलग है, मेरी सम्पत्ति अलग है; मगर हम लोग जो भावना रखते हैं कि हम अलग-अलग हैं, वह गलत है। उसको कहते हैं द्वैत। सब एक हैं, यह मानना अद्वैत है। द्वैत और अद्वैत की यही परिभाषा है।

स्वामीजी, डॉक्टरी जाँच से पता चला है कि मेरे गुर्दे में पत्थर है। इसके लिए क्या करूँ?

देखो, हमारा विकास बन्दर से हुआ है, और बन्दर शाकाहारी होता है। हमारे पूर्वज हजारों-लाखों साल पहले बन्दर थे। अन्य कोई ऐसा जानवर नहीं, जो मनुष्य से समानता रखता हो। घोड़े को देखो, उसका घुटना पीछे की तरफ होता है और वह सीधा खड़ा नहीं हो सकता। केवल एक जानवर है, जो सीधा हो सकता है और उसके पंजे भी हमारी तरह होते हैं। इसलिए मान्यता है कि हमारा विकास बन्दर से हुआ और वह शाकाहारी प्राणी है। वह मार सकता है, लेकिन खाएगा नहीं। डॉक्टर से पूछो मांस खाने से कितनी बीमारियाँ होती हैं। इसलिए रोटी-सब्जी खाओ। घर में अगर मांस बनाते हैं, तो मत खाओ, अपने स्वास्थ्य के लिए अण्डा, मुर्गी, पाठा सब छोड़ो। चना-मूंगफली खाओ और खूब काम करो। उबला पानी पियो, पानी उबाल कर बोतलों में रख दो और पीते रहो। कुलथी का पानी पिओ, कुलथी से पत्थर टूटता है। बहुत-सी बीमारियों में आराम करना पड़ता है और बहुत-सी बीमारियों में काम करना पड़ता है।

– 9 सितम्बर, 1997



अध्याय 2

रामचरितमानस कविता या साहित्य नहीं है, यह मन्त्र है। इसलिए जब किसी को सिखाना हो, तो उसको सबसे पहले मास-पारायण या नवाह्न-पारायण के रूप में इसकी साधना करनी पड़ती है। रामचरितमानस में जितने विषय हैं, वे किसी खास धर्म से सम्बन्ध नहीं रखते, वे मूलत: मानव धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। पर इसका ढाँचा वैदिक धर्म के मुताबिक है। राम-सीता विवाह, रावण इत्यादि जितने इसके प्रसंग या माध्यम हैं, वे सब वैदिक हैं। बाकी कोई धर्म इसको नहीं मानता है। बाकी धर्मों में ऐसी कथाएँ समझ में नहीं आती हैं। जैसे सीता जी लंका गयीं, फिर वापस आयीं, उनकी अग्नि-परीक्षा हुई, अन्य कोई धर्म वाला इसे नहीं मानता। वे कहते हैं यह फालतू बात है कि सीताजी किसी के घर चली गयीं, वहाँ से वापस आयीं तो अशुद्ध हो गयीं! या राम अपने पिता के वचन पालन के लिए वन को चले गये। वे लोग इस बात को नहीं मानते। वे कहते हैं कि जब बच्चा बड़ा हो जाता है, तब उसे अपने ढंग से रहने और सोचने दें। बच्चे माँ-बाप की बात क्यों मानेंगे?

ऐसे बहुत से प्रसंग हैं, पर इसमें मूल बात मानव-समाज की है, जो समय-समय पर अलग मतलब रखता है। उस वक्त में रावण क्या मतलब रखता था? आज के युग में रावण का मतलब वह नहीं है। यदि आज भगवान जन्म लेंगे, तो किसको मारेंगे? क्या वे किसी तानाशाह को मारेंगे? नहीं, आज का जो रावण है, वह है भ्रष्टाचार। यह सब जगह फैला हुआ है, इससे न तुम छूटे, न वे छूटे। लंका भले ही रावण की राजधानी थी, पर पूतना तो यहीं-कहीं बिहार में रहती थी, विश्वामित्र सिद्धाश्रम के पास रहते थे, ऐसा कहा जाता है।

भारत में भ्रष्टाचार है, इसलिए कहते हैं कि यह रावण है। पर अगर किसी अँग्रेज, अमेरिकन या मुसलमान को रामायण सिखाना चाहो, तो वहाँ तो भ्रष्टाचार रूपी रावण है नहीं। वहाँ का रावण कौन है? हम कभी-कभी वहाँ रामायण पर प्रवचन देते थे। वहाँ यह नहीं कहते थे कि भ्रष्टाचार रावण है, क्योंकि वहाँ भ्रष्टाचार है ही नहीं। वहाँ तो ईमानदार लोग रहते हैं, जो झूठ नहीं बोलते, साफ-साफ, आमने-सामने बोलते हैं। इसे प्रस्तुत करने के लिए आदमी की बुद्धि पैनी होनी चाहिए, नहीं तो लोग कहेंगे, फालतू बात है। रामजी की जो कथा है, रामचरितमानस, वह बहुत देशों में मशहूर है। बर्मा, थाईलैण्ड, जावा, सुमात्रा, आदि बहुत-सी जगहों में नाटक के रूप में प्रचलित है। पर इसका समाज पर कोई विशेष असर नहीं है। वे लोग रामलीला करते हैं, राम द्वारा रावण को मारा जाता है। नाचते हैं, गाना गाते हैं, सब कुछ होता है, मगर वहाँ यह एक प्रकार का मनोरंजन है, जैसे कि कोई नौटंकी या नाटक हो रहा है। इसको पूरे दक्षिण के लोग देखते हैं। पर यूरोप के देशों में, गोरे लोगों के देशों में रामायण का प्रचार बहुत मुश्किल है। उनकी संस्कृति इसको स्वीकार नहीं करती है। राम का जो आदर्श है, सीता का जो आदर्श है या लक्ष्मण या भरत जैसे भाई का जो आदर्श है, उसे वे लोग स्वीकार नहीं करते। रावण के व्यवहार को वे आसुरी नहीं मानते हैं। कहते हैं, इसमें क्या है, किसी का किसी के साथ भी सम्बन्ध हो सकता है, कोई फर्क नहीं पड़ता है। उनको यह सब समझाना मुश्किल है।

हाँ, कृष्णजी की बात विदेशों में समझ में आती है, क्योंकि कृष्णजी का जीवन आज के जीवन से मिलता-जुलता है। चाहे बचपन की बदमाशियाँ हों या युवावस्था में राधा जी के साथ सम्बन्ध हो। फिर राधा को छोड़ कर वे राजनीति में चले गये। यह सब उनकी समझ में आता है। कृष्णजी और उनकी भगवद्गीता, जहाँ-जहाँ जाओ, अमरीका या कहीं भी, सब जगह चलती है। वहाँ भगवद्गीता का अनुवाद भी करते हैं, व्याख्या भी देते हैं, उस पर लेख लिखते हैं और पाँच सितारा होटलों में हर कमरे में एक बाईबिल के साथ अँग्रेजी में गीता भी रख देते हैं। बंगाल के भक्ति वेदान्त वाले महात्मा प्रभुपाद वहाँ चले गये और उनके शिष्य हैं 'हरे राम हरे कृष्ण' वाले, जो चुटिया रखते हैं। बहुत प्रचार है उनका।

वे भागवत भी पढ़ते हैं। श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता पर बहुत टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं। वे श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद् गीता, दोनों

को स्वीकार करते हैं। गीता को तो सभी ने स्वीकार किया है। बड़े-बड़े विद्वानों ने उसकी व्याख्या की है। महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, अरविन्द, सबने अँग्रेजी में टीका लिखी है। आदि गुरु शंकराचार्य ने गीता पर जो व्याख्या लिखी है, वह हर विश्वविद्यालय में पढ़ायी जाती है। उसका वहाँ बहुत सम्मान है। श्रीमद्‌भागवत का विषय विदेशियों को भाता है। रामचरितमानस का विषय उनको नहीं भाता। रामचरितमानस में गृहस्थाश्रम पर ज्यादा जोर है। इसमें सबसे बड़ा अध्याय विवाह पर है। अरण्यकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, आदि को थोड़े में समाप्त कर दिया, पर रामजी के जन्म और शादी पर बहुत लम्बा लिखा है। जबकि श्रीमद्‌भागवत में जो भी कहानी आती है, उसके अन्त में यही कहा है कि वे वानप्रस्थ आश्रम में चले गये। हर कहानी के अन्त में यही कहा है, पचास-साठ साल राज किया, फिर अपने पुत्रों को राज देकर जंगलों में चले गये। वहाँ ब्रह्म का चिन्तन किया, द्वैत में अद्वैत करके वानप्रस्थ हो गये और मोक्ष को प्राप्त किया।

यह विदेशियों को अच्छा लगता है, क्योंकि पश्चिम की संस्कृति भोग-प्रधान है। बढ़िया आराम, बढ़िया खाना, बढ़िया कपड़ा, सब चीज बढ़िया। और यही वहाँ का रावण है। वहाँ का हर व्यक्ति, चाहे वह माली हो या चपरासी, उत्तम ढंग से रहना चाहता है। वहाँ अगर टॉयलेट सिस्टम खराब हो जाए, तो कम्पनी को फोन करते हैं और प्लम्बर आता है। वह लाट साहब की तरह अपनी कार में आता है, जिसमें उसके औजार वगैरह, छोटी-मोटी सब चीजें रहती हैं। वह आयेगा, पहले मेमसाहब से हाथ मिलायेगा, फिर चाय-सिगरेट पियेगा, गप्प लगायेगा। फिर काम करता है। उसके बाद फिर चाय-कॉफी पीता है और बिल देकर चला जाता है। एक घण्टे के काम का कम-से-कम तीस-चालीस डॉलर, मतलब एक हजार रुपये ले जाता है। क्यों? इसलिए कि वह अच्छे ढंग से रहना चाहता है। अगर वह साधना या पूजा-पाठ भी करना चाहे, तो उसे भी बढ़िया ढंग से करेगा। बैठेगा, तो एक ढंग का आसन बना कर। बाजार में मिलता है बैठने के लिए, जिसमें पीठ और सिर के लिए सहारा रहता है।

रामायण में त्याग की बात नहीं लिखी है। उसमें भक्ति की बात लिखी है। शादी हो, बच्चा हो, ससुराल हो, वातावरण हो, विदेशियों को यह सब जँचता नहीं है। इसलिए मैंने रामचरितमानस हिन्दुस्तान के लिए आरक्षित करके रखा है और श्रीमद्‌भागवत एवं भगवद्‌गीता विदेश के लिए। वे लोग

कहते थे, 'भगवद्‌गीता पर बोलो।' भगवद्‌गीता एक ऐसा ग्रन्थ है, जो आज के पढ़े-लिखे, आधुनिक लोगों को भाता है, क्योंकि यह आज के समाज के अनुकूल है। अब जैसे एक बैंक है, तुम वहाँ काम करते हो, तुम्हें क्या मतलब कि पैसा कहाँ से आता है, कहाँ जाता है। तुमको तो केवल पैसा लेना है और लेखा-जोखा कर लेना है। तुम्हें किसी फल की इच्छा तो करनी नहीं है। तुम्हें उतना ही फल मिलेगा, महीने में तन्ख्वाह के रूप में जितना भी पाँच-छ: हजार रुपया मिलता है। बैंक में कोई डकैती हो, पैसा चोरी हो जाए, तुम्हें उससे क्या मतलब है? यह आज की संस्कृति है, जो अब आ रही है, अनासक्ति। बैंक में जो काम करते हैं, ऑडिटर, एकाउण्टेन्ट, टाइपिस्ट, कम्प्यूटर ऑपरेटर, मैनेजर, आदि होते हैं, लेकिन सब बहुत अनासक्त होते हैं। अपनी ड्यूटी कर लेते हैं, मगर पैसे से उनको कोई मतलब नहीं रहता है। ड्यूटी खत्म करके शाम को चले जाते हैं।

गीता में भी कहा है – '*कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।*' गीता के दूसरे अध्याय में यह श्लोक है और यह उन्हें बहुत फिट बैठता है। तुम्हारा काम है कि अपनी ड्यूटी खत्म करो, तुम्हारी इतनी जिम्मेवारी है। सेक्रेटरी, कैशियर या टाइपिस्ट के रूप में सब ड्यूटी करो, बाकी से तुम्हें कोई मतलब नहीं। और किसी को कुछ पसन्द नहीं, तो तुरन्त नौकरी छोड़कर चला जाएगा। इसलिए बाहर के लोगों को श्रीमद्‌भागवत बहुत पसन्द है। श्रीमद्‌भागवत और गीता का बहुत प्रचार हुआ है। वहाँ के लोग कीर्तन करते हैं, तो *'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* को उल्टा करके गाते हैं – *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।'* वे लोग कहते हैं, 'रामजी ने सीताजी को क्यों छोड़ा? स्त्री के ऊपर किसी भी तरह का लांछन लगाना गलत है। अगर स्त्री के ऊपर लांछन लग सकता है, तो पुरुष के ऊपर क्यों नहीं लग सकता? पुरुष तो लांछन से मुक्त हो गया, पर स्त्री लांछन से मुक्त क्यों नहीं हुई?' इसलिए रामजी का यह जो बड़ा प्रसंग हुआ था, सीता के त्याग का, वे उसे पसंद नहीं करते। आजकल के लड़के-लड़कियाँ सब हम से पूछते हैं, क्यों किया राम ने ऐसा? क्यों सीता का त्याग किया? क्यों उसको वन में भेज दिया? बेचारे रामजी के ऊपर यह बहुत बड़ा कलंक है, जिसे धो नहीं पा रहे हैं आज तक। और इसका असर समाज के ऊपर पड़ता है। जो उसने किया, हम भी वही करेंगे और इसका मतलब है स्त्री के ऊपर अत्याचार होगा। यह जो समाज का अन्याय है स्त्री के साथ,

उस सामाजिक अन्याय को वहाँ के समाज का आदमी स्वीकार नहीं करता है। इसलिए वहाँ भागवत और गीता बहुत प्रचलित है, रामायण नहीं।

रामेश्वरम् में जो सत्ताइस कुएँ हैं, जिनमें स्नान किया जाता है, उनका पानी पीना मना है, केवल इक्कीसवें कुएँ का पानी पी सकते हैं। उसका क्या महत्त्व है?

बहुत-सी मान्यतायें स्थानीय होती हैं। रामेश्वरम् में जितने कुएँ हैं, वे सब खारे हैं, क्योंकि चारों ओर समुद्र है। वहाँ पीने का मीठा पानी बाहर से लाया जाता है। मद्रास में, रामेश्वरम् में मीठा कुआँ नहीं होता है। यह अपने दिमाग से कह रहा हूँ, पर किताब में क्या लिखा है, मुझे नहीं मालूम और न ही मुझे उन कुओं के बारे में कुछ मालूम है। इतना बता सकता हूँ कि इक्कीस हों या इकतालीस, वहाँ किसी कुएँ का पानी पीने लायक नहीं होता, क्योंकि वहाँ जितने भी कुएँ होते हैं, खारे होते हैं।

रामेश्वरम् का मन्दिर एकदम समुद्र के किनारे है और रामेश्वरम् से एक गाड़ी धनुषकोटि तक जाती है। धनुषकोटि से ही रामजी ने समुद्र पार किया था। अब तो वह मिट गया है, बीस साल पहले तूफान आया था, उससे सारा मिट गया। धनुषकोटि वहाँ है जहाँ हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी और अरब सागर का संगम होता है। वहीं से श्रीलंका के लिए स्टीमर जाता है, जिसको तलैया पीयर कहते हैं।

चारों ओर समुद्र होने के कारण वहाँ कोई कुआँ पीने लायक तो होगा नहीं और जहाँ तक नहाने का सम्बन्ध है, बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं जो स्थानीय विश्वासों के मुताबिक होती हैं। जैसे कि मन्दिरों के दर्शन के पहले गणेशजी का दर्शन कर लो, उसके पहले अन्दर नहीं जाना या उसके पहले यहाँ जाना या वहाँ जाना। इस प्रकार के जो बन्धन हैं, वे कुछ स्थानीय कारणों से होते हैं। दर्शन के बाद पैर यहीं धोना, ऐसा करना या वैसा नहीं करना, इसको टोटका कहते हैं। ये स्थानीय परिस्थितियों, स्थानीय विश्वासों या स्थानीय स्वार्थों के अनुसार होते हैं। स्थानीय स्वार्थ भी होते हैं। अगर सब एक ही मन्दिर में जायेंगे, तो बाकी मन्दिरों में चढ़ौती कम हो जाएगी न। उड़ीसा के सब लोग अगर जगन्नाथ पुरी ही जायेंगे, तो बाबा बैद्यनाथ कौन आएगा? इसलिए कह दिया कि बाबा बैद्यनाथ सिविल कोर्ट है और वासुकीनाथ क्रिमिनल कोर्ट है!

इसको कहते हैं स्थानीय स्वार्थ। कुछ और स्थानीय कारण भी होते हैं। जब तुम शिरडी साईं बाबा के यहाँ जाते हो, तो साईं बाबा का दर्शन करने के बाद निश्चित रूप से द्वारिका माई की मजार जाना पड़ता है। चाहे हिन्दू हो, चाहे ईसाई, वहाँ मस्जिद में जाना ही पड़ता है। क्यों? कोई कारण रहा है। साईं बाबा मुसलमान थे। शिरडी में किसी तरह पहुँच गये भटकते-भटकते। एक ब्राह्मण परिवार ने उनका स्वागत-सत्कार किया और उनके रहने के लिए एक जगह बना दी। गाँव के लोगों को उनसे फायदा होने लगा, वे तो सिद्ध पुरुष थे। तो ब्राह्मण, चमार, सब लोग उनके चेले बन गये। सब उनकी सेवा करने लगे और वे नमाज तो पढ़ते ही थे। कहीं पर पढ़ते थे, पर मस्जिद में नहीं पढ़ते थे। जब वे मर गये, तो बगल में मजार बन गयी। और अब हजारों की संख्या में लोग साईं बाबा के यहाँ जाते हैं।

मुम्बई में जितनी फिल्में बनती हैं, सबका मुहूर्त वहीं होता है। कोई ऐसी फिल्म नहीं, जिसका मुहूर्त वहाँ नहीं होता। जब भी वहाँ जाओ, तुमको फिल्म वाले मिलेंगे। प्रोड्यूसर, एक्टर, बड़े-बड़े लोग मिलेंगे वहाँ। यहाँ से मुम्बई की तरफ जाओ, भूसावल से ट्रेन पकड़ो अहमदनगर तक और अहमदनगर में एक छोटी-सी जगह है शिरडी। वहाँ एक महात्मा सवा सौ साल पहले रहा करते थे। एक मुसलमान फकीर। एक चिमटा लेकर भटकते-भटकते आ गये। उनके पास सिद्धि थी। कोई उनके पास गया, बोला, 'बाबा मुझे तकलीफ है।' तो बाबा ने कहा, 'ठीक हो जाओगे' और उसकी तकलीफ ठीक हो गयी। सारे संसार में उनकी कहानियाँ विख्यात हैं। एक दिन ऐसे ही धूनी के आगे बैठे थे, अचानक पानी लेकर उसके ऊपर डालने लगे, लोगों ने पूछा, 'क्या कर रहे हैं?' तो उन्होंने कहा कि एक भक्त के घर में आग लगी है, उसे बुझा रहा हूँ। इस प्रकार की बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ हैं। वे वहीं बैठते थे। अब जो कोई वहाँ जाता है, उसको मजार में जाना ही पड़ता है।

तो मैं समझा रहा था कि स्थानीय परिस्थितियों को लेकर कुछ आचार होते हैं। उज्जैन में महाकालेश्वर का मन्दिर है, जहाँ इन्द्र कुष्ठ रोग से मुक्त हुआ था। महाकालेश्वर में भैरव के मन्दिर में जाकर शराब पिलानी पड़ती है। वह भैरव का स्थान है, उसके बिना वहाँ पूजा पूरी नहीं होती है। मैं जिस व्यक्ति के साथ गया था, वे वैष्णव थे। वे शराब के नाम से ही चिढ़ते थे। वे बोले, हम नहीं जायेंगे। मैंने कहा, तुम मत जाओ, मैं तो जाऊँगा ही। मैं वहाँ गया, बोतल पिला दी। उसमें क्या रखा है, दर्शन ही तो करना है। जब हम

वहाँ गये ही हैं, तब भगवान को बोतल जरूर पिलायेंगे। कहते हैं, उसके बिना मनौती पूरी नहीं होती। शिवजी भी तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे, उनके आगे पाँच रुपये की मोहर लगनी ही चाहिए। जैसे कोई सरकारी आवेदन हो तो कागज में पाँच या दस रुपये की मोहर लगी रहती है, उसी तरह से उनको पिलाना पड़ता है और उन्होंने पीया भी। पूरी की पूरी बोतल पी। न केवल मेरी, वहाँ जितने लोग थे सब पिलाते जाते थे और वे पीते जाते थे। आज से करीब दो सौ साल पहले, जब अँग्रेजों का राज था, तब उन लोगों ने कहा कि उसके पीछे जरूर कोई ट्यूब होगी, कोई पाइप होगा। पूरा खोदा, पर कुछ नहीं मिला। गले के बाद रास्ता रुक जाता है। माने भैरव का जो मुँह है, वह थोड़ा अन्दर जाकर पत्थर है। तो कहाँ जाती है शराब? और अभिषेक चिता की भस्म से होता है। वहाँ जो चिताएँ जलती हैं, उनकी भस्म इकट्ठा करते हैं और उसी से अभिषेक करते हैं। कुछ लोग उसे माथे पर लगाते हैं। वहाँ भी कहते हैं, इसमें स्नान करो और उसमें स्नान करो।

रामेश्वरम् में शिवजी का जो शिवलिंग बना हुआ है, उसे बालुका लिंग कहते हैं। वह शिवलिंग सैण्ड-स्टोन का है। वह नर्मदेश्वर लिंग नहीं है। रामजी ने जिस शिवलिंग की स्थापना की थी, वह बालू से बना था। आज जो है, उसे बाद में बनाया गया और उसी की पूजा होती है। आजकल लोग सोने और स्फटिक के शिवलिंग भी बना देते हैं।

लोग कहते हैं कि स्फटिक लिंग की स्थापना आदिगुरु शंकराचार्य ने की थी?

हो सकता है। पर मजे की बात यह कि स्फटिक हिन्दुस्तान में नहीं होता। स्फटिक करोड़ों साल पुरानी चट्टानों के अन्दर मिलता है। स्फटिक काँच नहीं है, यह तो सबसे पुरानी चट्टान है। ये पाँच-दस हजार साल पुरानी चट्टानें नहीं, जो पास में आप देखते हैं। जो लाखों-करोड़ों साल पुरानी चट्टानें होती हैं, उनमें स्फटिक मिलता है। ये चट्टानें उत्तर की तरफ होती हैं, हॉलैण्ड, नॉर्वे, साइबेरिया में। उत्तर की तरफ जितनी चट्टानें मिलती हैं, वे बहुत पुरानी होती हैं। उन्हीं में से कई प्रकार के स्फटिक मिलते हैं। सूर्य की रोशनी मिलने पर स्फटिक सातों रंग पैदा करता है। अगर वह स्फटिक यहाँ आनन्द कुटीर में टांग दो और सूर्य की रोशनी उस पर पड़े, तो सातों रंग की छाया यहाँ दिखायी देगी। बहुत पुरानी चट्टानों के गर्भ में

छोटे-बड़े हर प्रकार के स्फटिक मिलते हैं। यह कोई आम चीज नहीं है। जो बाजार में मिलता है, वह तो काँच है। स्फटिक भी काँच की तरह ही दिखता है। स्फटिक को यहाँ कोने में रखें, तो सूर्य की रोशनी पड़ने पर सातों रंग दिखायी देंगे इन्द्रधनुष की तरह। यही उसकी पहचान है।

जिसे हम स्फटिक लिंग कहते हैं, अंग्रेजी में उसे 'क्रिस्टल बॉल' कहते हैं। पश्चिमी देशों में जो ओझा किस्म के लोग होते हैं, वे इसे रखते हैं और इसको देखकर भविष्यवाणी करते हैं। जैसे तुम लोग विश्वास करते हो, सारी दुनिया में विश्वास करते हैं। ऐसा नहीं कि केवल यहाँ अंधविश्वास है, सारी दुनिया में लोग अंधविश्वास करते हैं। विश्वास मनुष्य का स्वभाव है। उसका पढ़े-लिखे होने से कोई मतलब नहीं है। रुचि, उत्साह, अमीरी-गरीबी, सदाचार-दुराचार से उसका कोई मतलब नहीं है। विश्वास, आशा, अंधविश्वास, श्रद्धा, ये सब मनुष्य के अन्दर हैं। उनको कोई निकाल नहीं सकता। ये लोग विदेशों में क्या करते हैं? जब ये व्यापार या नौकरी के लिए कहीं जाते हैं, तो वे पहले ओझा के यहाँ जाते हैं। वहाँ ओझा को कहते हैं 'क्लेयरवॉइन्ट', वह अतीन्द्रिय दृष्टि से देख सकता है। वह अपने क्रिस्टल बॉल में देखकर कहता है, 'तुम फलाने शहर जाओगे, तुम्हारा हवाई जहाज ठीक समय पर पहुँचेगा, तुमको वहाँ जो औरत मिलेगी, उससे ज्यादा बात नहीं करना।' कितने दिन में लौटोगे, तुम्हारा काम बनेगा या नहीं, यह सब बता देते हैं क्लेयरवॉइन्ट। उनके पास क्रिस्टल बॉल रहता है। यह बहुत ही दुर्लभ चीज है। जिप्सी लोग भी रखते हैं। यह उनकी परम्परा में है। मेरे पास भी क्रिस्टल बॉल था, पर मैंने अपना दे दिया।



इसको तराशते हैं या ऐसे ही निकलता है?

ऐसे भी निकलता है, तराशा भी जाता है। जो पैसे वाले लोग होते हैं, वे इसके टुकड़ों को घर में टांग देते हैं और उनके कमरे में लाल, पीला, हरा, रंग चारों ओर दिखता है। वे इसको सजावट की तरह लगाते हैं। बड़े सुन्दर लगते हैं। जो बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं, वे 'क्रिस्टल डायल' के रूप में बिकते हैं। रेडियो ट्रांजिस्टर में दिल्ली से या कहीं और से जो आवाज आती है, उसको डायल पहले पकड़ता है। हर ट्रांजिस्टर में क्रिस्टल रहता है। आजकल वे कृत्रिम भी बनाने लग गये हैं, मगर प्राकृतिक क्रिस्टल जो होता है, उसकी छोटी-छोटी डायल लगायी जाती हैं। जब क्रिस्टल को तराशते हैं, तब उससे छोटे-छोटे टुकड़े निकलते हैं। वे वैज्ञानिकों को बिक जाते हैं।

स्फटिक की विशेषता यह है कि वह ध्वनि तरंगों को पहले पकड़ता है, फिर फेंकता है। जैसे अभी हम बोल रहे हैं, मेरे मुँह से ध्वनि निकल रही है। अब यह ध्वनि इस एल्यूमीनियम से, काँच से, संगमरमर से, आप से टकरा रही है। पर आप इसको ग्रहण नहीं कर रहे हैं, आप इसको सोख नहीं रहे हैं। आपसे लग कर यह वापस आ रही है, ऐसा वैज्ञानिक लोग मानते हैं। वह ध्वनि जाती है, आपसे टकराती है, फिर वापस आती है, जबकि स्फटिक उसे ग्रहण करके अपने में रखता है। और यह स्फटिक हमारे मन्दिरों में रहता है।

रामेश्वरम् की बात चल रही थी कि वहाँ स्फटिक शिवलिंग है। कई जगह स्फटिक शिवलिंग हैं, उनकी पूजा होती है। स्फटिक का जो शिवलिंग है, उसका अपना महत्त्व है। यह तान्त्रिक मतलब गुप्त चीज है, इसलिए ओझा लोग, तान्त्रिक लोग, जहाँ भी हों, चाहे यहाँ, अमरीका में, जापान में या यूरोप में, सब जगह ये लोग क्रिस्टल रखते हैं। क्रिस्टल बॉल की रोज पूजा करते हैं। आप जो प्राय: बॉल देखते हैं, उनमें बहुत-से नकली होते हैं। उन्हें काँच से बनाते हैं। पर क्रिस्टल एक असली चीज है, जो प्राकृतिक है और बहुत मुश्किल से मिलती है। करोड़ों साल के बाद इसका जन्म होता है। यह चट्टानों का सार तत्त्व है। इसी को तान्त्रिक लोग रखते हैं। शिवलिंग भी स्फटिक के होते हैं, इनकी बहुत पूजा होती है, जैसे रामेश्वरम् में।

देवघर में नहीं है?

नहीं, यहाँ शिवलिंग आया है कैलाश से। शिवलिंग के मूल स्रोत दो ही माने जाते हैं, एक है नर्मदा, दूसरा है गोमती। सब लोग अपनी-अपनी तरह

से मानते हैं, कोई विष्णु को मानते हैं, कोई शिवजी को मानते हैं। अपना-अपना विश्वास है, कोई ईसामसीह को मानते हैं, तो ईसाई हो गये। विष्णु को मानते हैं, तो वैष्णव हो गये। शिवजी को मानते हैं, तो शैव हो गये और देवी जी को मानते हैं तो शाक्त हो गये। ये सब अलग-अलग रास्ते हैं भगवान तक पहुँचने के लिए। तुम्हारी जो मर्जी हो, उसको चुनो।

समुद्र के तल से भी तो निकलते हैं, जिनको कीमती पत्थर कहते हैं।

हाँ, समुद्र से भी निकल सकते हैं। इसमें एक ही बात है, चट्टान पुरानी हो, चाहे कहीं भी हो। हो सकता है यहाँ से निकल जाए। बस यह जरूरी है कि चट्टान करोड़ों वर्ष पुरानी हो। स्फटिक उसके गर्भ में होता है और उसके छोटे टुकड़े ट्रांजिस्टर में लगाये जाते हैं। स्फटिक ध्वनि तरंगों को पकड़ता है। इसका मिलना बहुत मुश्किल है।

शिवलिंग तीन प्रकार के होते हैं। पहला गोमतेश्वर, दूसरा नर्मदेश्वर और शिवलिंग का एक तीसरा स्रोत है, जिसको हम कहते हैं ज्योतिर्लिंग। ज्योतिर्लिंग का मतलब है, वह वहीं प्रकट हुआ है, कहीं से लाया नहीं गया। जैसे यहाँ जमीन है, खोदा और शिवलिंग निकल आया। तब उसकी स्थापना यहीं होगी, उसे सरकाया नहीं जाएगा। जिसे मन्दिर बनाना हो, वहीं बना देते हैं। कितने मन्दिर हैं, जिनमें शिवलिंग बाहर से ही आता है, किन्तु बारह मन्दिर ऐसे हैं जिनके शिवलिंग वहीं से निकले हैं, उनको कहते हैं द्वादश ज्योतिर्लिंग। ये हैं रामेश्वरम्, सोमनाथ, महाकालेश्वर, भीमशंकर, त्र्यम्बकेश्वर, काशी विश्वनाथ, केदारनाथ, घुश्मेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश्वर, ओंकारेश्वर और मल्लिकार्जुन। ये बारह शिवलिंग हैं, जो वहीं बने, वहीं स्थापना हुई। बाकी बहुत से बड़े-बड़े मन्दिर हैं, वहाँ शिवलिंग बाहर से लाकर लगाए गए हैं।

इनमें कौन श्रेष्ठ है, कौन नहीं, इसका सवाल नहीं उठता। भगवान का कोई भी स्वरूप हो, उसका महत्त्व होता है श्रद्धा और विश्वास से। अगर श्रद्धा-विश्वास नहीं है, तो वह केवल पत्थर है। श्रद्धा-विश्वास के बिना इसका कोई महत्त्व नहीं है। श्रद्धा हर व्यक्ति के अन्दर तब तक होती है जब तक कि उसका हृदय बच्चे की तरह पवित्र होता है, निष्कपट रहता है, झूठ नहीं बोल सकता, बातें छुपा नहीं सकता, जो भी मुँह में आया, बोल दिया। बच्चे कहते हैं न, 'पिताजी कह रहे हैं कि पिताजी घर में नहीं हैं!' इसको

कहते हैं, बच्चे की तरह मासूम होना। तो जो बच्चे की तरह निष्कपटता है, वही श्रद्धा है। और यह जो बुद्धि है, बुद्धि माने खोपड़ी, यह खोपड़ी भगवान के बारे में सोच सकती है, भगवान के बारे में लिख सकती है, मगर यह खोपड़ी भगवान के बारे में जानती नहीं है।

भगवान का खोपड़ी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह सब महात्माओं ने कहा है। अगर तुमको भगवान का कुछ भी अनुभव करना हो, तो खोपड़ी को कमरे में बन्द करके आना। खोपड़ी का मतलब विचार। क्यों, कैसे, अच्छा-खराब, यह सब खोपड़ी का विषय है। यह जो हम बोल रहे हैं, यह खोपड़ी है। यह बुद्धि का विषय है। इससे भगवान नहीं मिलता। भगवान को प्राप्त करने के लिए, भगवान का दर्शन करने के लिए, उनके आशीर्वाद पाने के लिए छोटे बच्चे की तरह सरल होना चाहिए। यह नहीं सोचना कि मैं पापी हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। मनुष्य चाहे सदाचारी हो या दुराचारी, पापी हो या पुण्यात्मा, उससे कोई मतलब नहीं है। भगवान कहते हैं, 'जो निष्कपट होकर मेरे पास आता है, उसे मैं अपना रूप दिखाता हूँ।' इसलिए भगवान के आगे जो पूजा की जाती है, उसको कभी समझने की कोशिश नहीं करना। रामेश्वरम् में स्फटिक लिंग है या ज्योतिर्लिंग है या नर्मदेश्वर लिंग है, ये सब फालतू बातें हैं। छोटा पत्थर भी भगवान हो जाता है। भगवान को तुम किसी भी रूप में देख सकते हो। शिवलिंग में भी देख सकते हो, शालीग्राम में भी देख सकते हो, और तो क्या, बकरी के रूप में भी देख सकते हो। उसके लिए एक ही योग्यता होनी चाहिए– *'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।'* मन में कुछ और बाहर से कुछ, इसको कपट कहते हैं। कपट भगवान को ही नहीं, हम लोगों को भी पसन्द नहीं है। तुम्हारा नौकर, तुम्हारी स्त्री या तुम्हारे बच्चे मन में रखें कुछ और बोलें या करें कुछ और, तो बुरा लगता है न? तो भगवान को कैसे अच्छा लगेगा?

भगवान के सामने दिल खोलना है। चोर हो तो क्या हुआ? वेश्या हो तो हो, क्या फर्क पड़ता है? उपाधि तो समाज ने दी है। ब्राह्मण का ठप्पा तो समाज ने दिया है न? भगवान ने तो तुमको ब्राह्मण नहीं बनाया। यादव का ठप्पा तुमको किसने दिया? भगवान ने तुमको यादव बनाया क्या? भगवान ने तुमको लोहार बनाया क्या? भगवान ने तुमको बढ़ई बनाया क्या? ये सब तो हमने बनाये हैं। भगवान के सामने तुम केवल एक आत्मा हो, जो भटक रही है। संसार में रहते हुए जब तुम भगवान के पास जाते हो और उनसे प्रार्थना

करते हो, तब तुम बिल्कुल भूल जाओ कि तुम नालायक हो। केवल एक बात याद रखो, भगवान तुम्हारी प्रार्थना जरूर सुनेंगे। आखिर भगवान तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनेंगे? तुम तो सुन रहे हो न? जब तुम कुछ कहते हो, तब तुम सुनते हो या नहीं? जब तुम सुनते हो, तब वही तो सुनते हैं! वही तुम हो। प्रार्थना करने वाले भी तुम हो और प्रार्थना सुनने वाले भी तुम ही हो! तुम सुनते हो तो भगवान भी सुनते हैं।

लेकिन हम लोगों का दिमाग चलता रहता है। गणेश जी ने दूध पीया या नहीं? गणेश जी ने दूध पीया कि नहीं, मुझे नहीं मालूम। लेकिन उज्जैन में काल भैरव को मैंने एक बोतल ब्रांडी जरूर पिलाई और वे पी गए! मेरे सामने सब ने ब्रांडी पिलाई और वे सब पी गए। *तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी*– तुम तो किताब की बात कहते हो न? मैं तो आँखों से देखा हुआ कहता हूँ। और मुझे अच्छी तरह से मालूम है, जब मैं पिला रहा था तब वह कहीं नहीं गिर रही थी। हमने किताबों में पढ़ा है, अंग्रेजों के समय में उसकी जाँच-पड़ताल हुई है। उसको नीचे से खोदा गया, कुछ नहीं मिला। उसमें जो मूर्ति है, उसका मुँह सिर्फ गले तक खुला हुआ है। उसके नीचे कोई रास्ता नहीं। तो फिर कहाँ जाता है? और लोग दिन भर पिलाते रहते हैं। लोग वहाँ पिलाने के लिए ही जाते हैं। महाकालभैरव का वही महत्त्व है। उसे पिलाते जाओ और चिता भस्म से अभिषेक करो।

क्या आपने उनको अपने हाथ से पिलाया?

हाँ, बोतल उनके मुँह में रख दी और वे पी गए, बस काम खतम। और क्यों नहीं, जब हम अपने बच्चे को दूध अपने हाथ से पिलाते हैं तो क्या भगवान को हाथ से नहीं पिलायेंगे? अच्छा लगता है। पता भी नहीं चलता कि कोई पण्डा या भूत वगैरह चल रहा है।

जहाँ महाकालेश्वर का ज्योतिर्लिंग है, उस जगह को कहते हैं उज्जैन। पहले उसे उज्जैनी कहते थे। उत्तरकाण्ड में ब्राह्मण बालक का प्रसंग आता है, जिसने उज्जैनी में जन्म लिया था। यह उज्जैनी गुरु संदीपनी का स्थान था। संदीपनी वाराणसी के रहने वाले बड़े विद्वान् ब्राह्मण थे। किन्तु कुछ कारणों से उनकी ब्राह्मणों के साथ, आचार्यों के साथ पटरी बैठी नहीं। वे वाराणसी छोड़कर उज्जैन आ गये और यहीं श्री कृष्णजी की शिक्षा हुई। भगवान कृष्ण के गुरु संदीपनी थे। वे मथुरा-वृन्दावन से वहाँ गए और वहीं उनकी शिक्षा-

दीक्षा हुई। वहाँ बारह साल में एक महाकुम्भ मेला होता है। एक लगता है हरिद्वार में, एक प्रयाग में और एक लगता है त्र्यम्बकेश्वर में। बारह-बारह साल में कुम्भ लगता है। कुम्भ मेला तब लगता है, जब सूर्य विशेष राशि में होता है। ऐसा माना जाता है कि सूर्य जब उस राशि में होता है, उस समय उस स्थान का जो जल है, वह अमृत का महत्त्व रखता है। मैं तुम लोगों को कुम्भ मेले के बारे में थोड़ा बता दूँ। भयंकर मेला, जिसकी कल्पना नहीं कर सकते। लाखों की संख्या में आदमी इकट्ठे होते हैं। काले कपड़ेधारी, झण्डाधारी, नंगे खड़े रहने वाले, मांस खाने वाले, बीड़ी पीने वाले, सब पंथों वाले लोग रहते हैं। संन्यासी तीन प्रकार के होते हैं– संन्यासी, उदासी और वैरागी। वैरागी सफेद कपड़े पहनते हैं, उदासी काला कपड़ा पहनते हैं और संन्यासी गेरु पहनते हैं।

मेले में लाखों लोग आते हैं, गाँव-गाँव से आते हैं, औरतें आती हैं, पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आती हैं। हमारे निरंजनी अखाड़े में पढ़े-लिखे लोग संन्यास लेते हैं। पुरी के शंकराचार्य जी संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य थे। अनपढ़ लोगों को हमारे यहाँ बहुत मुश्किल पड़ती है। अब तो सब कम्प्यूटर जानते हैं। सब गाड़ियाँ चलाना जानते हैं। गाँव-गाँव से मेले में भक्त लोग आते हैं, कम से कम चार-पाँच करोड़ लोग आते हैं। त्रिवेणी में उनका स्नान होता है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम होता है। ठीक उसी क्षण में सूर्य का समय रहता है। यह सब विस्तार से नहीं कहूँगा। कभी मौका मिले तो जाना, तब पता चलेगा कि कुम्भ मेला क्या है। बिना गए वह समझ में नहीं आएगा। उस समय लगता है सारा हिन्दुस्तान सिमट कर वहाँ आ गया है। सब जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोग, गुजराती साधु, मराठी साधु, बंगाली साधु, पंजाबी साधु, मद्रासी साधु, सब साधु लोग वहाँ जाते हैं। हर प्रकार के लोग, कोई एक आहार करने वाले, कोई फलाहार करने वाले, कोई गांजा पीने वाले, कोई बोतल पीने वाले, सब लोग जाते हैं। रात-दिन सत्संग चलता है वहाँ। सरकार की तरफ से पूरा इन्तजाम रहता है। सुरक्षा विभाग के अधिकारियों की ड्यूटी लगती है। विशेष रेलगाड़ियाँ हर पाँच-पाँच मिनट में चलती हैं। बड़े-बड़े आदमी आते हैं। गाँव के लोग तो आते ही हैं, अरबपति भी आते हैं, जिनके पास पैसे का कोई हिसाब-किताब नहीं।

उस समय जो अखाड़े होते हैं, वहाँ नये आचार्य का चुनाव होता है। हर एक मण्डली अपना चुनाव करती है और घोषणा करती है कि हमारे आचार्य ये हैं, हमारा कारोबार ये सम्भालेंगे। वह नतीजा फिर सरकार को



दिया जाता है। तब यह निश्चित होता है कि हमारा गेरु झण्डा पहले कौन ले जाएगा, जूना अखाड़ा, निरंजनी अखाड़ा या महानिर्वाणी? कतार लगती है। पहले यह अखाड़ा ले जाएगा, फिर वह ले जाएगा। अखाड़ा जाता है, उसके हाथी-घोड़े, बैण्ड-बाजे, चुटियाधारी पण्डितजी, मन्त्र पाठ करते हुए, कीर्तन करते हुए, त्रिशूलधारी, जनेऊधारी सब जाते हैं। पहले साधु लोग नहाते हैं, फिर बाकी लोग स्नान करते हैं। बहुत विचित्र है। सबसे महान् और विशाल मेला होता है हरिद्वार का या प्रयाग का। कुम्भ देखना हो तो हरिद्वार का देखो, मगर वहाँ बहुत मुश्किल है। किसी साधु के साथ जाना, नहीं तो बहुत मुश्किल पड़ जाएगी। बहुत भीड़ होती है, हिन्दुस्तान का आदमी तो भीड़-पसन्द आदमी है ही। सब जैसे पागल-से हो जाते हैं। पता ही नहीं चलता कि हमने खाया है या नहीं, थके हैं या नहीं, सोये हैं या नहीं। भूख

लगे तो किसी टेंट में चले जाओ, खाना मिल जाएगा। पूड़ी के नीचे कोई चीज मिलती नहीं वहाँ। पूड़ी, मालपुआ, हलवा ही मिलता है। कोई भी किसी को भी खिला देता है।

जब मैं वहाँ गया था, तो एक जगह बैठ गया। बस फिर क्या था, सब लोग पैसा देते गए! हम तो मांग ही नहीं रहे थे। स्वामी सत्संगी और स्वामी निरंजन कहीं गए, मैं बैठा था चाय पीने के लिए, और वे लोग पैसा चढ़ाए जा रहे थे। मैंने कहा, 'मुझे पैसा नहीं चाहिए भाई।' वहाँ नागा रहते थे। नागा बिल्कुल निर्वस्त्र रहते हैं। वे वहीं पेशाब करते हैं, वहीं टट्टी करते हैं और वहीं सो जाते हैं। वहाँ से मिट्टी उठा कर लोग बदन पर लगाते हैं, माथे पर लगाते हैं, इतने श्रद्धालु हैं लोग। किसी को कोई बीमारी होगी, किसी को चमड़ी की बीमारी होगी, किसी को कैंसर की बीमारी होगी, कोई न कोई तकलीफ तो होगी। सोचते होंगे ठीक हो जाएँगे। श्रद्धा की भी हद होती है। नागा लोग सज्जन नहीं होते, वे बड़े रूखे होते हैं, चिल्ला पड़ते हैं, 'हट साला, जाता है कि नहीं।' नागा लोगों की भाषा सज्जन लोगों की भाषा नहीं होती। वे कह देंगे, 'तुम्हारे बाप का घर है, जो यहाँ बैठते हो? हट जाओ यहाँ से।' वे गँवार की तरह बात करते हैं, लेकिन फिर भी लोग उनके पास जाते हैं। देश-विदेश के, अमरीका के गोरे लोग, सब मानते हैं उन्हें। वहाँ ईसाई आते हैं, बौद्ध आते हैं, जैन आते हैं, पैसे वाले आते हैं। जब सूर्य कुम्भ राशि में स्थित हो, तब उसे कहते हैं कुम्भ मेला।

कहते हैं, जब गरुड़ जी अमृत कलश लेकर भाग रहे थे, तब उनके पीछे राक्षस लोग भी भाग रहे थे। तो भागने में अमृत छलक गया। चार जगह पर अमृत छलका और चारों जगह कुम्भ मेला लगता है। वहाँ लोग दु:ख के निवारण और इच्छाओं की पूर्ति के लिए जाते हैं। और उस समय हिन्दुस्तान के सभी सम्प्रदायों के महात्माओं का दर्शन होता है, पौराणिक से लेकर आधुनिक तक। सब तरह के गुरु और आचार्य लोग, हिमालय से कन्याकुमारी तक का हर साधु-महात्मा वहाँ पहुँच जाता है। सरकार उस समय पूरी व्यवस्था में लगी रहती है और दुकानदार अपना बीड़ी-जलेबी बेचते हैं। कभी जाना और देखना, बहुत बड़ी चीज है वह। हम दो बड़े कुम्भ देख चुके हैं, एक हरिद्वार का, दूसरा प्रयाग का। अब देखने की हिम्मत भी नहीं होती है। बहुत मुश्किल होती है, क्योंकि जहाँ तीन-चार करोड़ लोग एक छोटे से क्षेत्र में इकट्ठे हों, वहाँ बहुत दिक्कत होती है। और कुम्भ मेले में किसी

मन्त्री, किसी वी.आइ.पी. को जाने की अनुमति नहीं है। आएगा तो उसको छुपकर आना पड़ेगा। वह गाड़ी-झण्डा वगैरह के साथ नहीं आ सकता। सरकारी कानून बना हुआ है। एक बार जवाहरलाल नेहरू गए थे, उस समय बहुत भीड़ हुई थी और बहुत-से लोग मरे थे। तब से यह कानून बना है कि जो भी जाएगा, एक साधारण व्यक्ति की तरह जाएगा। मुख्यमंत्री, राज्यपाल या प्रधानमंत्री बनकर नहीं जा सकता, सरकार को उससे कोई मतलब नहीं है। और सही बात भी है। धर्म के स्थान में इन बातों का क्या मतलब?

ब्रिटिश और मुगल शासन के समय भी यह कुम्भ मेला था क्या?

कुम्भ मेला बहुत पुराना है, यह राजा हर्षवर्द्धन के समय से है। अँग्रेजों के बारे में जो भी कहो, धर्म के साथ उन लोगों ने कभी दखलंदाजी नहीं की। अकबर के समय भी दखलंदाजी नहीं हुई, शाहजहाँ के समय दखलंदाजी नहीं हुई, जहाँगीर के समय दखलंदाजी नहीं हुई। औरंगजेब के समय दखलंदाजी होना चालू हो गई थी। उसके समय दखलंदाजी इसलिए हुई कि उसको स्थापित होना था। और हुमायूँ तो खैर बहुत ही कमजोर था। पर अकबर के महल में सब जाते थे।

क्यों? जोधाबाई के कारण?

हाँ, वह भी एक कारण है, लेकिन हर एक का अपना-अपना विश्वास भी तो होता है। अकबर के समय रामनवमी होती थी, सब त्योहार मनाये जाते थे, और सब लोग जाते थे। उस समय बादशाह सब त्योहारों में शामिल होते थे। अकबर के समय तुलसीदास पैदा हुए, मीरा पैदा हुईं, रामदास पैदा हुए। उस समय कई कवि पैदा हुए, कवियों की पंक्ति निकल गई। क्यों? जिस राज्य में धर्म का दमन नहीं होता, वहाँ लोग खुल कर बातें करते हैं। अकबर के समय खुलापन था, सब खुलकर बोलते थे, इसलिए तुलसीदास निकल गए, मीराबाई निकल गईं। लोग मीराबाई के सत्संग में जाते थे। अकबर भी जाता था, इसका प्रमाण है।

उसी तरह अँग्रेजों के समय भी कुम्भ मेला होता था। कुम्भ मेला तो इससे भी पुराना है। महाराज हर्षवर्द्धन के समय से है। राज्यश्री उसकी बहन थी। हर्षवर्द्धन सम्राट् था, वह भी कुम्भ मेले में गया और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति, राज्य की नहीं, बल्कि अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति सब दान में दे दी। वह जमीन

पर पुआल बिछाकर सोता था। वह और उसकी महारानी पत्तल और कुल्हड़ में खाना खाते थे। इसका प्रमाण मिलता है। चीनी यात्री की किताब में लिखा हुआ मिलता है। हर्षवर्द्धन के समय हिन्दुस्तान का चीन के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। फाहियान, ह्वेन सांग, ऐसे कई चीनी हिन्दुस्तान आए। उसका भी प्रमाण मिलता है। अत: कुम्भ मेला तो बहुत ही प्राचीन मेला है, आज का नहीं है। यह बौद्ध काल में भी होता था। अब यह हो गया है कि रेलगाड़ियाँ बन गईं, दुकानें बन गईं, अस्पताल बन गए, सब तरह की व्यवस्था हो गई, तो ज्यादा लोग आने लग गए हैं। उस समय कम लोग जाते होंगे।

भगवान बुद्ध पच्चीस सौ दस साल पहले हुए। उसके बाद जब अशोक हुआ, उस समय कलिंग पर आक्रमण हुआ था और उसने बौद्ध धर्म अख्तियार किया था। अशोक अट्ठारह सौ साल पहले हुआ। कुम्भ मेले का इतिहास आज का नहीं है, बहुत पुराना है। वेदों में इसका वर्णन आता है। वेद बौद्ध काल के पहले लिखे गए हैं, वे पाली-संस्कृत में नहीं हैं। वेदों की संस्कृत थोड़ी अलग होती है। आजकल जो संस्कृत पढ़ते हैं, वह दूसरी है, उसका अलग व्याकरण है। उसको याद करना पड़ता है, निरंतर पढ़ना पड़ता है। वेद जिस भाषा में लिखे गए हैं, वह बौद्ध भाषा के पहले थी। भगवान बुद्ध जब आए, उस समय अपभ्रंश भाषा चलती थी, पाली। भगवान बुद्ध पाली बोलते थे। जैनों के समय भी पाली ही बोलते थे। उनके जितने भी ग्रन्थ हैं, वे पाली में हैं, संस्कृत में नहीं। नालन्दा में जो पढ़ाई होती थी, वह पाली में ही होती थी। उसी भाषा से फिर अवधी, भोजपुरी, मैथिली और अन्य भाषाएँ निकलीं। ब्रजभाषा से मैथिली तक, सब पाली से निकली हुई भाषाएँ हैं।

वेदों में कुम्भ मेले का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। और वहाँ सरस्वती का वर्णन भी है। उस समय सरस्वती नदी ऊपर बहती थी। अब सरस्वती नदी दिखती नहीं है, केवल दो नदियाँ दिखती हैं, गंगा और यमुना। सरस्वती जो हैं, वे अन्त:सलिला हैं। उनको गुप्त कहते हैं। वेदों के समय में गंगा, यमुना, सरस्वती – तीनों नदियाँ बहती थीं। तीनों नदियों में जो सरस्वती हैं, अब वे अन्दर चली गई हैं, गुप्त हो गईं, अन्त:सलिला हो गईं। प्रयाग को संगम कहते हैं और संगम को त्रिवेणी भी कहते हैं। प्रयाग को सब तीर्थों का राजा माना जाता है, तीर्थराज। वहाँ अनेक यज्ञ हुए हैं। इलाहाबाद नाम तो मुसलमानों का दिया हुआ है। प्रयाग शब्द में याग का मतलब होता है यज्ञ। जब भी लोगों को यज्ञ करना होता था, नदी के संगम पर ही करते थे,

जैसे, कर्ण प्रयाग, देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, सोन प्रयाग वगैरह। कर्ण प्रयाग केदारनाथ के रास्ते में पड़ता है। देव प्रयाग ऋषिकेश के थोड़ा आगे पड़ता है। प्रयाग नदी के संगम होते हैं। वहाँ नदियाँ मिलती हैं, वहाँ प्राचीन काल में यज्ञ किया करते थे। इसलिए उन्हें प्रयाग कहते हैं।

सरस्वती क्यों लुप्त हो गईं? भौगोलिक परिवर्तन के कारण या कोई और कारण है?

सरस्वती तो लुप्त हो गईं, यह पक्की बात है। सेटेलाईट से सरस्वती का पूरा मार्ग मिलता है, जहाँ वह बहती थीं। अब नदियाँ कई कारणों से लुप्त हो जाती हैं। एक कारण है, उसमें बहुत बालू का आ जाना, क्योंकि बालू तो पानी को रखता नहीं है और पानी से बहता भी नहीं है। तो बालू बढ़ता गया, बढ़ता गया और पानी नीचे रह गया। गया में जाते हो, तो वहाँ भी नदी है, पर कुछ नहीं दिखता। थोड़ा खोदो तो पानी निकलता है। पानी का तल नीचे गया है या बालू का स्तर ऊपर आया है? जो बालू होती है, वह धीरे-धीरे पहाड़ों से आती है, चट्टानों से आती है, बहती हुई आती है। जब पानी बहता है, तब बालू चट्टानों से निकलती है। और दूसरा अंतरिक्ष से धूल भी आती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसके कारण हमारी पृथ्वी की मोटाई हर साल एक सेन्टीमीटर बढ़ती जा रही है।

दूसरी नदी है गंगा। गंगा की मिट्टी चिकनी मिट्टी है। वह बह जाती है, किनारे आ जाती है। वह अगर नहीं बहती, तो गंगा का भी यही हाल होता। तीसरी नदी, यमुना न केवल यहाँ काली दिखती है, बल्कि उद्गम से ऐसी है। यहाँ से देहरादून जाओ, वहाँ से मसूरी जाओ, फिर मसूरी से नीचे उतरो, दूर से देखते ही मालूम पड़ेगा कि यमुनाजी हैं। उसका बिल्कुल आसमान जैसा नीला रंग रहता है। उसका रंग ही नीला है, वहीं से। उसको देखते ही पहचान में आता है। जब भरतजी ने यमुना की तरफ देखा, तो उनकी आँखों में आँसू आ गए, क्योंकि भगवान का रंग नीला है। भगवान का रंग तो नीला होगा ही, क्योंकि वे अनन्त हैं। निर्गुण का रंग नीला ही तो होता है। असीम का रंग क्या होगा? नीला। आसमान का रंग क्या है? नीला। क्यों? वहाँ तो कुछ है ही नहीं। आसमान में कोई दीवाल थोड़े ही है। वह तो खाली है, अंतरिक्ष है, आकाश है। इसलिए वहाँ जो रंग है, वह नीला ही होगा।

– 10 सितम्बर, 1997



अध्याय 3

स्वामीजी, आपको अपने संन्यास जीवन में कोई समस्या या तकलीफ नहीं हुई?

हमारा संन्यास तो एक संयोग था। हमारे साथ के सब लोगों ने संन्यास आठ सितम्बर को ले लिया, हमने बारह तारीख को लिया। हमने तो संन्यास के लिये मना कर दिया था। पर आज के दिन हमारे संन्यास के पचास साल हो रहे हैं। संन्यास बहुत मुश्किल है, तकलीफ तो आज भी है। मच्छर काटता है, तकलीफ नहीं होती क्या?

आदमी का बचपन ही उसके सारे जीवन का निर्णय करता है। और बचपन में हम तो किसान घर के थे। हम लोग बड़े किसान थे, लेकिन सामान्य मिट्टी के घर में रहना, अन्धेरे में रहना, बिना खिड़की के रहना, ऐसा था हमारा जीवन। बिस्तर में खटमल और पिस्सू होते थे, घर की औरतों को जुएँ होती थीं। हम अल्मोड़ा के हैं, अल्मोड़ा जिला अठारह हजार फीट की ऊँचाई तक जाता है। साल में दो बार कपड़े धोते थे, एक बार नहाते थे। वहाँ कोई रोज नहाए तो निमोनिया हो जाए! बहुत मुश्किल है, बहुत ठण्ढा स्थान है अल्मोड़ा। घर कितना भी गर्म हो, बाहर बहुत ठण्ढा रहता है। मिट्टी के तेल की छोटी-सी डिब्बी जलाते हैं और शौच के लिए ठण्ढी में जाना होता है। वहाँ जो नौकर होते हैं, उन सबके हाथ फटे रहते हैं। ठण्ढ में पत्थर पर चलते हैं तो पैरों में छाले हो जाते हैं।

उसके बाद फिर शिवानन्द आश्रम में क्या सुविधा थी? कुछ नहीं। मच्छर ही मच्छर थे, और मच्छरदानी भी नहीं थी। मच्छरदानी का तो हमने कभी उपयोग ही नहीं किया। वहाँ बिच्छू थे, बन्दर थे, कपड़ों का कोई ठिकाना

नहीं था। वह बहुत ही आदिम माहौल था। गंगाजी का पानी बहुत गंदला, मिट्टी वाला होता है। वही पानी पियो, फिर दस्त हो, बहुत कष्ट था। पर चाहे जैसा भी हो, वह भी जीवन है। लोग इंग्लैण्ड या अमरीका में जब खोज-अभियान पर जाते हैं तो क्या उनको तकलीफ नहीं होती है? होती है, पर वे उसको चुनौती मानते हैं।

जीवन एक चुनौती है। हमने भी तकलीफों को अनुभव किया है, लेकिन हमको कभी दु:ख नहीं हुआ। हमको कभी बीमारी या दु:ख, यह सब समझ में नहीं आया। और किसी से दिल लगाना भी कभी समझ में नहीं आया। कोई आए, तो ठीक है। जाए, तो भी ठीक है, चलेगा। किसी को पसन्द क्या करना, किसी को नापसन्द क्या करना। वह सब जमता नहीं। यह एक स्वभाव है, जिसे मैंने विकसित किया है। आदमी का पूर्व जन्म में जो स्वभाव रहा, वही इस जन्म में निकलता है। धान की जगह धान ही होगा, गेहूँ थोड़े ही होगा। मैं अपने खुद के कर्म, खुद के संस्कार, खुद का स्वभाव लाया हूँ। मुझे तो यह जगह छोड़ने में भी कोई दिक्कत नहीं होगी। इसे कौन चलाएगा, कैसे चलाएगा, इसकी कोई चिन्ता नहीं।

क्या आपको भावनात्मक समस्या भी नहीं रही?

नहीं, भावनात्मक भी नहीं। हमको वह प्रेम वगैरह, जिसे कविता में पढ़ते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। सिनेमा में जो लड़का-लड़की फँस जाते हैं, वियोग में लड़की दु:खी रहती है, खाना नहीं खाती, लड़का दाढ़ी बढ़ा लेता है, हमको समझ में ही नहीं आता है कि ऐसा कैसे होता है!

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था

अगर मन में अच्छी भावना है तो यह सतयुग है और अगर मन में खराब भावना है तो यही कलियुग है। ऐसा नहीं समझना कि आज दुनिया बहुत खराब हो गयी है। चोरी-डकैती तो त्रेता युग में भी होती थी। श्रीराम जी की तो स्त्री चोरी हो गयी। महाभारत काल में पूतना आदमियों को खा जाती थी, हिडिम्ब और हिडिम्बा भी आदमियों को खा जाते थे। हर युग में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण रहता है। इसलिए यह कहना कि जमाना बहुत खराब हो गया, गलत है।

परिस्थितियाँ बिगड़ी हों तो अच्छे-अच्छे आदमी का भी संकल्प डोल जाता है। द्रोणाचार्य का संकल्प डोल गया जब अश्वत्थामा ने दूध माँगा था। द्रोणाचार्य गरीब थे, जब पुत्र ने दूध माँगा तो उन्होंने चावल पीस कर, पानी मिलाकर कहा कि यही दूध है। अश्वत्थामा ने पीने से मना कर दिया तो द्रोणाचार्य द्रवित हो गये। उन्होंने राजा द्रुपद से अपमानित हो, कौरव दरबार में आकर अस्त्र-शस्त्र की विद्या सिखायी। यह उनकी मजबूरी थी। मजबूरी में अगर कोई व्यक्ति कुछ कर्म करे तो इसका मतलब यह नहीं कि आदमी खराब है। मजबूरी में आदमी कभी झूठी दवाइयाँ भी तो दे देता है न? नहीं देना चाहता, मगर मजबूरी में देनी पड़ती है।

वर्तमान व्यवस्था को सुधारने के लिए सबसे पहले लड़कियों से काम शुरू करो। हम तुमको यह मन्त्र की तरह बोल रहे हैं – जब तक तुम्हारे समाज में लड़कियाँ समर्थ नहीं होंगी, तब तक तुम अमीर नहीं हो सकते, कंगाल ही रहोगे। लड़कियों के प्रति जो भावना मुसलमानों और यूनानियों ने तुमको सिखायी, वह ठीक नहीं है। मनुष्य के दो पैर होते हैं, एक पैर लंगड़ा होगा तो मनुष्य लंगड़ाएगा। उसी तरह पति और पत्नी, परिवार के दो पैर होते हैं। लेकिन एक पैर तो कमजोर है, फिर घर-गृहस्थी कैसे चलेगी? मर्द बेचारा नौकरी भी करता है, व्यापार भी करता है, बाहर का काम भी करता है और उसे अपनी बीबी को भी देखना है। कैसे हो सकता है यह?

लड़की को सब चीजें मालूम होनी चाहिए। बिजली बिल का भुगतान करना है, टेलीफोन बिल का भुगतान करना है, आयकर चुकता करना है, कचहरी का काम करना है, वकील से बात करनी है, कलेक्टर से बात करनी है, उसको सब जानकारी होनी चाहिए। वह भी दुनिया में रहती है। केवल करछुली और कड़ाही की जरूरत नहीं है। सभ्य, सम्पन्न समाज में स्त्रियाँ रसोईघर में नहीं रहती हैं। बड़े-से-बड़े देश में देख लो, रसोइये कौन होते हैं? स्त्रियाँ होती हैं क्या? नहीं, बड़े-बड़े रसोइये जो बड़े-बड़े लोगों का खाना बनाते हैं, वे केवल मर्द ही रहते हैं। हाँ, स्त्रियाँ घर-गृहस्थी जरूर देखती हैं, नौकर-चाकर क्या कर रहे हैं, यह सब देखती हैं। सम्पन्न समाज, सभ्य समाज, शिक्षित समाज और सुसंस्कृत समाज, ये सब करीब-करीब एक-दूसरे के पर्याय हैं।

अब लड़कियों को पढ़ाना चाहिए। और लड़कों के स्कूल में पढ़ाना चाहिए ताकि उनको बचपन से ही मालूम पड़े कि लड़कों के बीच कैसे रहा

जाता है, कैसे बोला जाता है और किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह सात-आठ साल की अवस्था से ही मालूम होना चाहिए। बच्चों को जरूर पढ़ाओ और आध्यात्मिक साधना के रूप में बच्चों को छोटी उम्र से ही रामचरितमानस पढ़ाओ। हम इस क्षेत्र की बात कर रहे हैं। दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में गीता पढ़ाते हैं, गुजरात में रामचरितमानस पढ़ाते हैं।

रामचरितमानस बहुत अच्छा ग्रंथ है। बचपन से ही उसे पढ़ना चाहिए। घरों में रामचरितमानस का पाठ होना ही चाहिए और सबको सुनना चाहिए। केवल तुम्हारे पढ़ने से कल्याण नहीं होगा। अपनी बीबी को, बच्चों को, सबको सुनाओ। बहू आती है तो उसको भी सिखाओ। अब दिन भर तो तुम खराब-खराब विचार रखते हो, अगर पाँच मिनट अपना मन भगवान में लगा लोगे तो क्या नुकसान हो जायेगा? सारे आध्यात्मिक जीवन का सारांश भगवद्भक्ति में है। यह जो पाठा काटते हैं, देवी-देवता जगाए जाते हैं, यह सब अपनी जगह ठीक है, मगर यह आध्यात्मिकता नहीं है। यह तो अन्धविश्वास है। तुम भले ही करो, तुम्हारी मर्जी है, हम रोक नहीं रहे हैं, मगर धर्म या भक्ति का मतलब है – भगवान से स्नेह, भगवान से सम्बन्ध।

प्राणायाम

सवेरे उठकर हर बच्चे को कुछ न कुछ योगाभ्यास करना चाहिए। नहा कर, पालथी लगा कर, पद्मासन लगाकर थोड़ा प्राणायाम करो। जैसे-जैसे तुम बूढ़े होते जाते हो, यह हवा ले जाने वाली नली संकरी होती जाती है। पहले तो खुली रहती है, पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, यह संकरी होती जाती है। बीड़ी पीने वालों और धुएँ में काम करने वालों की भी नली संकरी हो जाती है। नली संकरी होने के कारण ही वे कहते हैं, मुझे श्वास लेने में हकली होती है, मेरे से तो चढ़ा ही नहीं जाता है। तुम्हारी श्वास का रास्ता इतना छोटा हो गया है कि हवा का ट्रैफिक ठीक से नहीं चल सकता। हवा के ट्रैफिक का मतलब होता है ऑक्सीजन। अगर तुम्हारे फेफड़े में भरपूर ऑक्सीजन जाएगी तो तुम पहाड़ चढ़ सकते हो, तब उम्र का कोई सवाल नहीं है। महात्माओं को देखो, ऊँचे पहाड़ चढ़ते हैं, सत्तर-अस्सी साल की उम्र में भी। क्यों? इसलिए कि प्राणायाम करके श्वास की नली को ठीक रखा जाता है। पाँच मिनट तो लगते हैं प्राणायाम करने में, बीमारी में तो

दस दिन लग जाते हैं। पर लोग दस दिन की बीमारी झेल लेंगे, पाँच मिनट अभ्यास नहीं कर पाएँगे!

कलियुग का धर्म–परोपकार

हम हमेशा सोचते हैं कि इन्सान को दूसरों के बारे में भी सोचना चाहिए। अगर तुम ऐसे लोगों के बारे में सोचते हो, जो तुम्हारे रिश्तेदार नहीं हैं, न खून का रिश्ता है, न जात का और न ही प्रेम का, तो समझो कि आध्यात्मिक मार्ग में तुम्हारा एक कदम बढ़ा है। अपने बीबी-बच्चों, रिश्तेदारों, दोस्त-मित्रों के बारे में तो सभी सोचते हैं। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है, प्रशिक्षण देने की भी जरूरत नहीं पड़ती है। मगर दूसरों के बारे में सोचना मुश्किल है। और असली चीज क्या है, उसको ध्यान से सुनो। दुनिया में हर एक प्राणी को प्रेम चाहिए, कुत्ते, गाय, भेड़, तोते, सबको। नहीं चाहिए क्या? हर एक को प्रेम चाहिए। कुत्ता प्रेम माँगता है, उसके सिर पर हाथ फेरो तो उसे बहुत अच्छा लगता है।

यह प्रेम बहुत लोगों को नहीं मिल रहा है, क्योंकि घर के लोग उनको निकाल देते हैं या घर के लोग मर गये होते हैं और कोई खाना देने तक के लिए तैयार नहीं होता है। भले ही तुम शिवजी को पाँच सौ लीटर दूध चढ़ा दो, मगर किसी जरूरतमंद को एक लीटर भी नहीं दोगे। पचास-सौ रुपये में पाठा काटते हो, लेकिन यह नहीं सोचते कि इस पैसे से दस विधवाओं को खाना खिलायेंगे तो मेरा बेटा ठीक हो जाएगा। ऐसा नहीं कि हम देवी-देवताओं की निन्दा कर रहे हैं, हम तो सनातन धर्म वाले हैं, हम भी उनको मानते हैं। लेकिन लोगों का अंधविश्वासों में इतना विश्वास है कि कोई यह विश्वास नहीं रखता कि चार गरीबों को खिलाऊँगा तो मेरा बेटा ठीक होगा। यही मानते हैं कि पाठा काटेंगे, तब ही चंगा होगा।

मदर टेरेसा, जिसकी अभी हाल में मृत्यु हुई है, वह हिन्दुस्तान की रहने वाली नहीं थी। वह अल्बानिया की रहने वाली थी। वह उत्तरी आयरलैण्ड चली गयी, वहाँ नन बन गयी, माने संन्यासी बन गयी। उसके बाद वह हिन्दुस्तान आयी। देश में जहाँ दंगा चल रहा था, वह वहाँ गयी। मैं भी वहीं था, उससे मिला था। फिर वह कलकत्ता आ गयी। उसका एक ही काम था। रास्ते में जो कोई बच्चा लावारिस मिलता था, उसे उठा कर लाना, उसे झाड़ना-पोंछना, नहलाना, ड्रेसिंग करना, खाना खिलाना। लोग उसका

मजाक उड़ाते थे कि वह ईसाई है, इसलिए ईसाई धर्म का प्रचार कर रही है। किन्तु उसके इस काम को देखकर चौदह-पन्द्रह साल की लड़कियाँ उसके साथ जुड़ने लगीं। जुड़ने का मतलब संन्यास नहीं, बस रोज वहाँ जाने लगीं। हमारी जान-पहचान के बड़े-बड़े लोग थे, दस-दस ड्राइवर और बीस-बीस नौकर वाले, बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ चलाते थे, सब कार लेकर वहीं चले जाते थे, एक-दो हजार कम्बल दे देते थे।

वे सबको रखती थीं। उनके साथ दुर्व्यवहार भी हुआ। लेकिन उनका एक ही कहना था– जिसका पति है, वह उसको प्यार दे देता है, जिसकी पत्नी है, वह उसको प्यार दे देती है, ज्यादा नहीं तो थोड़ा ही सही। जिसकी माँ है, उसे माँ का प्यार मिल जाता है, जिसके बेटा-बेटी हैं, उसे उनका प्यार मिल जाता है, भाई-बहन को एक-दूसरे का प्यार मिल जाता है। मतलब अधिकतर लोगों को किसी न किसी रूप में, किसी तरह प्यार मिलता ही है। उनको मेरी जरूरत नहीं। किन्तु कुछ लोग ऐसे अभागे हैं, जिनको किसी का प्यार नहीं मिलता। मतलब उनको कोई पूछने वाला भी नहीं है कि तुम जिन्दा हो या मर रहे हो, बल्कि उनकी ओर देखकर थूक देते हैं।

साईं सब संसार में मतलब का व्यवहार।
जब तक पैसा पास में तब तक ताको यार॥

यही दुनिया का रिवाज है। तो ऐसे अभागे व्यक्ति को जो प्रेम दे, वह परमेश्वर का ही स्वरूप होता है। भगवान श्री राम जब अयोध्या छोड़कर जा रहे थे और तमसा नदी पार करके शृंगबेरपुर पहुँचे तब वहाँ रास्ते में केवल निषादराज उनकी नजरों में उतरा। शबरी के अलावा उनको कोई सच्चा भक्त ही नहीं मिला।

भगवान का यह कहना है कि जिस तरह से हमने तुमको प्रेम दिया, तुम भी दूसरों को प्रेम दो। हमसे एक बार किसी ने कहा, 'स्वामीजी, आपने फलाने आदमी को कुछ दिया और उसने उस चीज को बाजार में बेच दिया।' हमने फट् से जवाब दिया, 'देखो, उसने जो बेचा, मुफ्त में तो नहीं गया न? पैसा मिला न?' उसने कहा, 'हाँ।' हमने कहा, 'पैसा मिला तो कुछ फायदा तो हुआ न?'

मान लो, हमने तुमको एक बैल दिया और तुमने जाकर बाजार में बेच दिया। हमने बैल खरीदा तीन-चार हजार में, तुमने उसे सौ रुपये में

बेच दिया। पर तुमको कुछ तो पैसा मिला न? बस काम हो गया। उसी से मतलब है, तुमको कुछ तो फायदा हुआ। अब हम यह नहीं सोचेंगे कि हमने तुम्हारा भला किया और तुमने हमसे धोखा किया। नहीं, न साधु ऐसा सोचता है और न भगवान ऐसा सोचते हैं।

भगवान ने तुमको भी बहुत-सी चीजें दी हैं। क्या तुमने उनका दुरुपयोग नहीं किया है? तुमने भगवान से बेईमानी नहीं की है क्या? भगवान ने तुम्हें बहुत-सी चीजें दान में दी हैं, अच्छी स्त्री, अच्छे बच्चे, अच्छा घर, अच्छा नौकर, लेकिन तुमने तो सबका गलत इस्तेमाल किया है। मगर भगवान बुरा नहीं मानते हैं। कहते हैं, चलो बेटा, तुम्हारा कुछ तो भला हुआ। बस हमारा भी यही कहना है। हमारा, तुम्हारा, हम सब का काम है, ऐसे व्यक्ति को खोजना, जो बेसहारा हो। जिसका कोई सहारा नहीं है, भगवान ही उसका सहारा हो सकता है। भगवान तुमसे जो प्रेम करते हैं, वह बिना मतलब के, बिना किसी स्वार्थ के करते हैं, क्योंकि वे प्रेम-स्वरूप हैं। जो प्रेम-स्वरूप है, प्रेम करना तो उसकी कमजोरी है, उसका स्वभाव है। भगवान प्रेम-स्वरूप हैं, वे किसी को दण्ड नहीं देते हैं। मनुष्य का कर्म ही उसे अपने आप दण्ड देता है। अगर जहर खाओगे, तो मर जाओगे, दूध पिओगे तो मोटे हो जाओगे, नीम खाओगे तो कड़वा लगेगा, रसगुल्ला खाओगे तो मीठा लगेगा, इसमें भगवान को कहाँ बीच में ले आते हो?

मदर टेरेसा को इतना सम्मान मिला, इतने लोग मानते हैं। कलकत्ते में हिन्दू, मुसलमान, अन्धे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, बदमाश, चोर, सब फूल लेकर जा रहे हैं, वेश्याएँ जा रही हैं, वहाँ फूल चढ़ाने के लिए। कैथोलिक परम्परा के पोप भी अपना प्रतिनिधि भेज रहे हैं। आज तक इतिहास में ऐसा नहीं हुआ है कि वे किसी कैथोलिक नन के मरने पर अपना प्रतिनिधि भेजें। परन्तु मदर टेरेसा के लिए हुआ और कैथोलिक मत के प्रमुख की तरह उसकी अन्त्येष्टि होगी। जो भी कर्मकाण्ड होगा, वह पोप का प्रतिनिधि करेगा। यह इतिहास का पहला उदाहरण है। यह सम्मान है। और सब से बड़ी चीज है कि आज तक महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू के अलावा किसी को भी तोपगाड़ी में अन्त्येष्टि नहीं मिली है। वे तो महापुरुष थे, विभूतियाँ थीं। मदर टेरेसा की भी अन्त्येष्टि का पूरा इंतजाम सेना ने अपने हाथ में ले लिया है।

सम्मान की बात छोड़ो, कहने का मतलब यह है कि उसकी जो साधना थी, वह यही थी कि परमेश्वर प्रेम-स्वरूप है और जब भी किसी मरते हुए आदमी को, किसी रोगी को, किसी अनाथ को या किसी अभागे को गले लगाते हैं, तब यही परमात्मा की पूजा है। परमात्मा की पूजा के बहुत रूप होते हैं, मन्दिर में जाकर बेल-पत्ता और तुलसी चढ़ाना भी पूजा है, घण्टी और शंख बजाना भी पूजा है, तीर्थ और व्रत करना भी पूजा है। मगर इस कलियुग में भगवान की सर्वश्रेष्ठ पूजा है दूसरों की भलाई करना। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कहा भी गया है, कलियुग में दो ही चीजें महत्त्वपूर्ण हैं, जो मनुष्य को मुक्त कर देती हैं। एक भगवान का नाम-स्मरण और दूसरा परोपकार। यही कलियुग के धर्म हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापर के धर्म अलग-अलग थे। सतयुग में यज्ञ था। त्रेता में तप था। द्वापर में योग था। और कलियुग में नाम है। पूरे रामचरितमानस का आधार है 'राम नाम', और कुछ नहीं।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥

बच्चों को भगवान का नाम और सात्त्विक श्रद्धा सिखाओ। पाठा वाली श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा नहीं है। गृहस्थ हूँ, भगवान का नाम लेता हूँ, अपने बीबी-बच्चों को पालना पड़ता है, पर थोड़ा समय दूसरों के लिए भी काम कर लेता हूँ– यह सात्त्विक श्रद्धा है।

अगले साल से हम यही करने वाले हैं। जो स्त्रियाँ बेसहारा हैं, बेटा-बहू देखते नहीं, बुढ़ापे में किसी तरह सड़क पर भीख मांगती हैं या किसी के यहाँ बर्तन धोती हैं, उनको हम यहीं आत्मसात् कर लेंगे और सुबह आठ बजे बुलायेंगे। तीन रुपये प्रति घण्टा के हिसाब से, जितने घण्टे का काम करें, पैसा तत्काल दे देंगे। काम उनको कुछ नहीं करना है। अनपढ़ हों तो राम नाम लेना है, *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'*, बस इतना ही करना है। और थोड़ी पढ़ी-लिखी हों तो उनको रामचरितमानस पढ़ना होगा। बूढ़ी औरतें तो बहुत कम मिलेंगी ऐसी, लेकिन अगर मैट्रिक पास हो तो उसको बोलेंगे 'श्री राम, श्री राम' लिखते जाओ। वह नोटबुक में लिखेगी, ऐसी बहुत सारी नोटबुक हो जायेंगी। जब नई बिल्डिंग बनेगी तो नींव में डाल देंगे उनको। भगवान के नाम पर उसकी नींव होगी!

आप लोगों के हाथ-पैर तो मजबूत हैं, पर समाज में बहुत-से ऐसे लोग भी हैं जो बहुत ही लाचार हैं। कोई भीख मांगते हैं, कोई पचास-सौ रुपये की नौकरी करते हैं, किसी घर के बरामदे में सो जाते हैं। अगले साल हमने सौ लोगों का बजट रखा है। उनको सरकार के नियम मुताबिक मजदूरी देंगे, तीस-चालीस रुपया जो भी है। अगर सरकार ज्यादा कहेगी, तो ज्यादा देंगे, क्या रखा है। जब तक पैसा है, देंगे।

दुनिया में अच्छाई का आदर अभी भी है। मदद करने वाले से राष्ट्रपति, धर्मपति, गरीब, अमीर, सब प्रभावित हैं। हम हिन्दू हैं, वह ईसाई है, ऐसा नहीं है। हमारा धर्म संकीर्ण नहीं है। सीधी-सी बात है, जो आदमी अच्छा है वह इन्सान है, जो बुरा है, वह हैवान है, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म में जन्मे।

हम लोग पारिवारिक दायित्व की बात तो करते हैं, मगर सामाजिक दायित्व की बात नहीं करते। उसको ऋण कहते हैं। हमारे पूर्वजों ने कहा है कि हर व्यक्ति के ऊपर पाँच ऋण रहते हैं – देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, भूत ऋण और मनुष्य ऋण। देव ऋण पूजा, यज्ञ आदि से चुकता है। हमारे पूर्वजों, वशिष्ठ, व्यास, विश्वामित्र आदि कई ऋषियों ने पुस्तकें लिखीं। उन्हें कोई नहीं पढ़ता, लेकिन हम पढ़ते हैं। ऋषि ऋण अध्ययन से चुकता है, हमने चुका दिया। इसलिए खूब पढ़ो, खाली समय में पढ़ो, दिन-रात पढ़ो। हमारे यहाँ चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण हैं, अन्य बहुत से ग्रन्थ हैं। हमारे हिन्दुस्तान का साहित्य इतना विशाल है कि अंग्रेजी के बाद इसी का नम्बर आता है। अंग्रेजी साहित्य बहुत विशाल है, उस जैसा विशाल साहित्य तो दुनिया भर के किसी देश में नहीं है। उसके बाद संस्कृत का स्थान आता है। संस्कृत में हर विषय पर ग्रन्थ हैं, धर्म शास्त्र से लेकर काम शास्त्र तक। मगर कौन पढ़ता है? हाँ, हम लोग पढ़ते थे, लेकिन हम लोगों का अब जमाना बीत चुका।

मनुष्य ऋण समाज के प्रति ऋण है। तुमने समाज का ऋण तो चुकाया ही नहीं। लेकिन हम चुकाते हैं। यह काम रिखिया में ही नहीं, सब जगह जरूरी है। सब जगह ऐसे विचार वाले लोग होने चाहिए। पचास साल के बाद सबको सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए। हमारे धर्म में लिखा है, वानप्रस्थ आश्रम। और पचहत्तर वर्ष के बाद तो बाल-बच्चों को छोड़कर, सबको छोड़कर, कहीं कुटिया बना लेनी चाहिए, और अपने बचाए हुए पैसे से



गरीबों के बीच काम करना चाहिए। ऐसा मत सोचो कि मेरे पास ज्यादा पैसा नहीं है, मैं दूसरों की मदद कैसे करूँगा। जैसा मैंने पहले कहा, दुनिया में अच्छे लोगों की कमी नहीं है। तुम जानते हो द्विरागमन के समय हम गाँव की वधुओं को कपड़े, गहने वगैरह देते हैं। सारी व्यवस्था स्वामी सत्संगी करती है। हाल में मैंने एक पेटी देखी, तो कहा, 'तीस हजार से कम का सामान नहीं होगा!' तो उसने पूछा, 'क्या करूँ?' मैंने कहा, 'दो, अगर तुम्हारी लड़की होती तो नहीं देते क्या?' मेरे कहने का मतलब है कि आखिर उस पेटी को भी तो किसी ने भेजा है, मैंने तो नहीं कमाया है। एक व्यक्ति ने कलकत्ता से डेढ़ सौ पेटियाँ तैयार करके भेजीं – साड़ी, चूड़ी, सैन्डिल, तिलक, सिंदूर, घड़ी, इत्यादि। यहाँ तक कि सेनेटरी टॉवेल तक भेज दिया उन लोगों ने, जो लड़की और आगे की सन्तान के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है।

लोगों को यह अच्छा लगता है कि किसी भी कन्या को द्विरागमन के समय, जब अंतिम रूप से बहू बना कर भेजा जाए, तब उसको अच्छी चीज दी जाए। यह सब सत्कार्य है। जब कोई आदमी दूसरों के लिए सोचता है तब दूसरे भी उसके लिए सोचते हैं। ऐसे ही आदमी को साधु-महात्मा कहा जाता है।

– 12 सितम्बर, 1997



अध्याय 4

परिव्राजक जीवन और स्वारोपित गरीबी

थाईलैण्ड में प्रत्येक बौद्ध धर्म मानने वाले व्यक्ति को साधु बनना पड़ता है, गेरू वस्त्र पहनना पड़ता है, जमीन पर चटाई बिछा कर सोना पड़ता है, दिन में गाँव में भिक्षा माँगने जाना पड़ता है, सिर मुड़ाकर मठ में रहना पड़ता है। राजा से लेकर रंक तक, किसी को भी इससे छूट नहीं। इस प्रथा का क्या फायदा है? आखिर हमने भी भीख माँगी है। हमको तो कभी भीख की जरूरत नहीं पड़ी, फिर हम क्यों भीख माँगते? हमारी आवश्यकता तो थी नहीं। कोई बाल-बच्चे तो थे नहीं, जिनके लिए माँगें। बीबी-बच्चे होते तो उनके लिए माँगते। हमने किसके लिए माँगी? दो रोटी तो कहीं भी मिल जाती है। बनारस में तो कोई भूखा नहीं मरता, कहीं भी बैठ जाओ, दो रोटी तो मिल ही जाती है। वहाँ कई अन्न क्षेत्र हैं, किसी भी अन्न क्षेत्र में चले जाओ, रोटी-दाल तो मिल ही जाती है।

फिर भी हमने चार-पाँच साल भिक्षाटन किया। क्यों किया? इसलिए कि यह हमारे मानसिक विकास और मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी था। हमें जीवन में जो मिला, उसका श्रेय ऐसी ही चीजों को जाता है। भिक्षाटन करने, धर्मशालाओं में रहने या पीपल के पेड़ के नीचे ठहरने या किसी गृहस्थ के बरामदे में जाकर सोने से शरीर और मन पर ऐसी प्रतिक्रिया होती है जो मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक जीवन को ऊँचा उठाती है। इसकी वास्तविक प्रक्रिया क्या है, वह तो हमारी भी समझ में नहीं आया, मगर यह प्रथा ईसाइयों में भी है, मुसलमानों में भी है, बौद्धों में भी है और जैनों में भी है। सब धर्मों में लिखा है, भिक्षाटन और परिव्रजन।

हम तो सब जगह घूमे हैं, अफगानिस्तान से बर्मा तक। जेब में पैसा कुछ नहीं, जब कहीं से मिल गया तो चल दिये। ट्रेन में टिकट वाले को कहते थे, 'बनारस जाना है'। वह कहता था, 'हाँ, बैठ जाइए कहीं भी।' बैठ जाते थे बिना टिकट के, लेकिन कभी बिना अनुमति के नहीं। उस समय तो अँग्रेज राज करते थे। अँग्रेजों के जमाने में, सन् 1945 में, हमको काफी मदद मिलती थी। उस जमाने में साधु लोगों को कम दिक्कत होती थी, किसी भी ट्रेन में चढ़ा देते थे। अभी तो बहुत मुश्किल है।

उस समय बड़े मजे से घूमते थे–अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, तजीकिस्तान! एक बार असम गये थे हाथी पर, उसी पर नदी तट पार गये। मध्यप्रदेश के ऐसे आदिवासियों के यहाँ रहे जहाँ गाड़ी तो क्या साइकिल भी नहीं जा सकती। फिर भी चले जाते थे, किसी गोशाला में सो जाते थे। वे गरीब लोग थे। एक ने तो हमको चूहे का सूप पिला दिया, एक दिन नहीं, पूरे दो महीने तक! मुझे मालूम नहीं था। जगदलपुर, बस्तर में मैं चातुर्मास कर रहा था। वहाँ मेरे गुरुजी के एक शिष्य थे जो रेवेन्यू इन्स्पेक्टर थे। उन्होंने मुझे एक आदिवासी के यहाँ छोड़ दिया, क्योंकि मैं एकदम एकान्त में रहना चाहता था। दिन-भर बाहर किसी पेड़ के नीचे, पत्ते वगैरह बिछा कर बैठ जाता था। आदिवासी की एक छोटी-सी झोपड़ी थी, उसी में सब एक ही जगह, एक के बगल में एक सो जाते थे। और रात में मैं भी वहीं सो जाता था। दिन में वह आदिवासी चावल और मूसा का सूप लाता था। जब दो महीने पूरे हुए तो भाद्रपद पूर्णिमा को वे रेवेन्यू इन्स्पेक्टर आए हमें लेने के लिए। उनके लिए भी वह वही खाना लाया। उन्होंने पूछा– 'यह क्या है?' तो उसने जवाब दिया, 'यह मूसा का झोल है।' माने चूहे का झोल! उन्होंने कहा, 'धत्त तेरी की। सारा धर्म बिगाड़ दिया।' मैंने कहा, 'चलिये छोड़िये, बेचारा गरीब है।' कहने का मतलब मेरे ऊपर कोई असर नहीं पड़ा। मैंने मन में सोचा, 'क्या हुआ, मन पर कुछ तो असर नहीं पड़ा, बीमारी भी नहीं हुई। ऐसे तो लोगों ने कुछ भी खिलाया हो, अनजाने में तो हमने कुछ भी खाया होगा। यहाँ कम-से-कम इसकी जानकारी तो हुई!'

तो परिव्राजक जीवन, भिखारी का जीवन और गरीबी का जीवन, यह उपचार है। यह बीमारी को दूर करता है। गरीबी अभिशाप नहीं है, अभिशाप है गरीबी का दु:ख। गरीबी अभिशाप तब है जब गरीबी के दु:ख से कुण्ठा होने लगती है, जब बच्चों का मुँह देखते हो। जब द्रोणाचार्य ने

अश्वत्थामा का मुँह देखा तो विचलित हो गये। जब पत्नी कुछ कहती है या बड़े लोग कुछ कहते हैं, तब कुण्ठा होती है। अगर हमारे भी बीबी-बच्चे होते, तो हमें भी चिन्ता होती। मगर मुझे कोई बोलने वाला नहीं था कि कमा कर क्यों नहीं लाते और मुझे उसमें अच्छा लगता था। अब तो हम देखते हैं दुनिया वालों को कितना दु:ख है। पैसे वालों को कितना दु:ख है। और जिनके पास नहीं है, उनके पास कितनी चाह है। जितने बड़े लोग हुए हैं, गाँधी जी को ले लो, ईसामसीह को ले लो, बौद्ध सन्तों को ले लो, सब फटीचर रहे हैं। इतिहास पढ़ लो। ऐसे बहुत से उदाहरण दे सकते हैं, गणितज्ञ रामानुजम् टी.बी. से मरे। आज के युग का अद्‌भुत राजनैतिक चिन्तन करने वाला नीत्से, क्या हाल था उसका? उसके पास बिल्कुल रुपया-पैसा नहीं था।

अमीरी या पैसा बीमारी का कारण है, क्योंकि पैसा आराम देता है, झूठी सुरक्षा देता है और भय पैदा करता है।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयम्
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयम्
सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

भोगे रोगभयम्– जो भोग करेगा, उसे रोग का भय रहेगा। *कुले च्युतिभयम्*– तुम अगर बड़े घर के हो, बड़े कुल और खानदान के हो, तो भय रहेगा, कहीं नाक न कट जाए। *वित्ते नृपालाद् भयम्*– पैसा है, हमेशा सरकार का भय रहेगा। दुनिया में जितनी चीजें हैं, सबसे कहीं न कहीं पर डर पैदा होता है। पैसा उसी आदमी के पास होना चाहिए जो दूसरों के ऊपर खर्च करने के लिए रखे। फिर वह भले ही करोड़ों रुपये रखे। यह पैसा दूसरे के लिए है, मेरे लिए नहीं।

महात्मा गाँधी के जीवन की एक छोटी-सी घटना है। एक जगह चार आना पड़ा था, जिसे कस्तूरबा जी लेकर अपने नाती-पोतों के लिए खिलौने ले आयीं। उस समय तो चार आना बहुत मूल्य रखता था, आज के माफिक नहीं। आज तो सौ रुपये भी खो जायें तो पता नहीं चलता। शाम को गाँधी जी ने खिलौने देखे तो पूछा। नाती-पोते बोले, 'दादी जी ने दिये।' दादी को बुलाया गया, गाँधी जी ने पूछा, 'खिलौने कहाँ से लायीं?' कस्तूरबा जी ने

कहा, ‘बाजार से।’ ‘पैसा कहाँ से आया?’ वे बोलीं, ‘वहाँ आपका पैसा रखा था, उसमें से लिया।’ गाँधी जी भड़क गये, बोले कि वह पैसा मेरा नहीं था, वह संस्था का था। तो वे बोलीं, ‘पर वह पैसा तो आपको दिया गया है।’ गाँधी जी ने कहा, ‘नहीं, वह मेरे लिए भी नहीं था और तुम्हारे लिए भी नहीं। अब जब तक एक नयी धोती नहीं बुनतीं, तब तक तुम यह कपड़ा बदलोगी नहीं।’ उनको दण्ड दिया और हरिजन पत्रिका में उन्होंने लिखा कि गाँधी के परिवार ने अमानत में खयानत की है!

सामाजिक ऋण

जो आदमी अपने पैसे का एक हिस्सा परिवार के लिए, एक हिस्सा समाज के लिए और एक हिस्सा कंगालों के लिए रखे, उसको फिर पैसा रखने से कष्ट नहीं है। जो पैसा तुम कमा रहे हो, उस पर मेरा भी हक है। मेरा माने समाज का। जिस पैसे को तुम कमा रहे हो, उस पर समाज का हक है, क्योंकि तुमने वह पैसा समाज से ही लिया है और समाज ने ही उस पैसे को कमाने में मदद की है। तुम अपने बूते पर ही पैसा नहीं कमा सकते हो। तुमको समाज ने शिक्षा दी। तुमको शिक्षा देने के लिए समाज ने स्कूल-संस्था खोली, प्रोफेसर तैयार किये, जमीन-मकान तैयार किये, नियम-कानून बनाये। इसका हिस्सा कहाँ है?



इसको कहते हैं ऋण। हर मनुष्य के ऊपर पाँच ऋण चढ़े हुए हैं। हर एक आदमी पर सामाजिक ऋण है। आज अगर सब चोर और डकैत हो जायें तो क्या पैसे कमा सकोगे तुम? नहीं। अगर कोई बचाने वाला न हो तो घर चल सकेगा क्या? नहीं। समाज ने तुमको सुरक्षा दी है। समाज ने तुमको एक पहचान दी है, रहने के लिये सुरक्षित जगह दी है। उसका ऋण चुकाओगे या नहीं? और उन लोगों का भी ऋण चुकाओ, जिन्होंने भूगोल पर किताबें लिखीं, इतिहास पर किताबें लिखीं, दर्शन, धर्म, वाणिज्य, रसायन और भौतिक शास्त्रों पर किताबें लिखीं। उन विद्वानों का ऋण चुकाओ, ऋषि ऋण। तुमने देव ऋण, पितृ ऋण, गुरु ऋण वगैरह के बारे में सुना होगा, यह उसकी आधुनिक व्याख्या है। अगर वे किताब नहीं लिखते, तो तुम खाक बी.ए., एम.ए., एम.बी.बी.एस. पढ़ते! तुम डॉक्टर कैसे बने? किताब पढ़कर न। इसका मतलब तुमको ऋण चुकाना पड़ेगा उनका।

संत की परिभाषा

मनुष्य के ऊपर अलग-अलग ऋण होते हैं और एक ऋण होता है समाज के उस हिस्से का जो असहाय है। जिसने इस ऋण को चुकाया उसको कहते हैं संत। मदर टेरेसा को आज जो सम्मान मिला है, वह इसलिए कि उसने उनको उठाया जो एकदम मरने वाले थे। उनमें से बहुत कम ही जीवित रहे, किन्तु उसकी वही भावना थी। जिनका कोई नहीं, उसका जो हुआ, उसी को संत की उपाधि दी गयी। यह कोई डिग्री नहीं है, कोई संस्था तुम्हें संत की डिग्री नहीं देती। महंत बोल सकते हैं, महामण्डलेश्वर बोल सकते हैं, फादर बोल सकते हैं, कुछ भी बोल सकते हैं, मगर संत की डिग्री नहीं होती। पाँच ऋणों में से एक ऋण समाज के असहाय वर्ग का है। जो यह ऋण चुकाए उसी को संत कहते हैं। चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

गाँधी जी को 'नेता गाँधी' क्यों नहीं कहते? उनको संत भी नहीं कहते, महात्मा कहते हैं। हमारे यहाँ महात्मा, संत, ऋषि, मुनि, योगी, साधु, संन्यासी – ये अलग-अलग योग्यताएँ हैं। जैसे बी.ए., एम.ए., बी.कॉम., एम.बी.बी.एस. की योग्यताएँ हैं, वैसे ही हमारे यहाँ अलग-अलग योग्यताएँ हैं। नारद जी को मुनि कहते हैं। कहीं पढ़ा है ऋषि नारद? अगस्त्य को मुनि कहते हैं। वशिष्ठ को मुनि वशिष्ठ नहीं कहते, ऋषि

वशिष्ठ कहते हैं। ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी – ये योग्यताएँ होती हैं। इसी तरह होते हैं संत। संत उसे कहते हैं, जिसने अपना सब कुछ उन लोगों के लिए समर्पित कर दिया है, जिनका कोई नहीं है। भगवान के लिए भी यही कहते हैं। जिसका कोई नहीं, उसका भगवान है। दीनानाथ, दीनबन्धु, दीनदयाल, नहीं कहते हैं क्या?

हर पैसे वाला अगर इस नियम का पालन करे, तो उसे पैसे से डरने की कोई जरूरत नहीं। फिर पैसा कभी उत्पात नहीं कर सकता। पैसा उत्पात तब करता है, जब अपने लिए खर्च किया जाता है। जब अपनों के लिए खर्च किया जाता है, भोग के लिए खर्च किया जाता है, तब पैसा छटपटाता है। पैसे की निन्दा नहीं हो रही है। जब हम बोलते हैं, संतुलित कथन कहते हैं। जहाँ गरीबी एक अच्छा गुण है, वहाँ गरीबी का दु:ख कष्टदायक भी है, अभिशाप भी है। और जहाँ अमीरी एक भयानक अभिशाप है, वहाँ अमीरी एक उत्तम वरदान वृक्ष भी है।

जब मनुष्य समाज के उस तबके का, जिसमें अन्धे हैं, लंगड़े हैं, लूले हैं, ऋण चुकाता है, तब वह एक महापुरुष की श्रेणी में आता है, भले ही उसका व्यक्तिगत जीवन जैसा भी रहे। तुम बहुत बड़े आदमी हो सकते हो, लेकिन तुमने समाज के लिए क्या किया है? कुछ नहीं। जो आदमी अच्छे हैं, वे अपने लिए ही अच्छे हैं। समाज में तुमने क्या किया, गरीबों के लिए तुमने क्या किया? अन्धों के लिए तुमने क्या किया? कोढ़ियों के लिए तुमने क्या किया? लंगड़ों के लिए तुमने क्या किया? केवल अच्छे बन गये।

मनुष्य की अच्छाई तब तक दूसरे तक नहीं पहुँचती है, जब तक उसमें व्यावहारिक पक्ष न हो। सबसे बड़ी अच्छाई है – परोपकार। परोपकार इस युग का सबसे बड़ा धर्म है। रामचरितमानस में, वेदों में, शास्त्रों में, पुराणों में, बाइबिल में, कुरान में यत्र-तत्र सब जगह लिखा गया है, परोपकार बहुत बड़ा गुण है।

परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।

कोई आदमी शराबी हो, मांसाहारी हो, जुआरी हो, व्यभिचारी हो, चोर हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। उसने कितनों का भला किया, दुनिया सिर्फ यह देखेगी। और यही जरूरी है।

– 13 सितम्बर, 1997



अध्याय 5

मैं स्कूल जाता हूँ, लेकिन बहुत संघर्ष करना पड़ता है।

जीवन में अगर कुछ बनना चाहते हो, तो संघर्ष होना ही चाहिए। बिना संघर्ष के कोई महान् नहीं बन सकता। हाँ, तुम शिक्षक, प्रोफेसर, डॉक्टर बन सकते हो, पर वही सब कुछ नहीं है। स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटी में, लड़का-लड़की दोनों ही जाते हैं, साथ-साथ पढ़ते हैं। कोई प्रोफेसर हो जाता है, कोई नेता, कोई मन्त्री तो कोई कलेक्टर। मगर उसके बाद उन्हें कोई याद नहीं रखता, सब भूल जाते हैं। क्यों? बिना संघर्ष के जो चीज मिलती है, वह ज्यादा दिन टिकती नहीं है।

गाँधीजी ने कितना संघर्ष किया, सब परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं। वैसे ही झाँसी की रानी ने बहुत संघर्ष किया, सब हालात उनके प्रतिकूल थे। सुभाषचन्द्र बोस ने संघर्ष किया, जेल से भागे, जर्मनी, रूस और जापान गये, आजाद हिन्द फौज को व्यवस्थित किया। कैसे किया होगा, कहाँ से पैसे का इन्तजाम किया होगा, क्या खाया होगा, कितने दिन नहीं भी खाया होगा। संघर्ष का मतलब अनुकूल परिस्थिति नहीं होता। मान लो तुम्हारी खेती है, सक्षम माँ-बाप हैं, स्कूल जाने के लिए साइकिल या मोटर-साइकिल है, जब घर आते हो, खाना तुमको तैयार मिल जाता है, यह अनुकूल परिस्थिति हुई। अनुकूल परिस्थिति में उन्नति बहुत मुश्किल है। हाँ, बी.ए., एम.ए. हो सकते हो।

संघर्ष प्रतिकूल परिस्थिति में होता है। प्रतिकूल का मतलब होता है कठिन। परिस्थितियाँ बहुत कठिन हैं, सात-आठ किलोमीटर साइकिल से जाना पड़ता है, खाने को कुछ है नहीं, माँ-बाप बीमार हैं, पैसा नहीं है,

यह प्रतिकूल परिस्थिति है। लाल बहादुर शास्त्री नदी पार करके स्कूल जाते थे। नाव से नहीं, तैर कर, क्योंकि नाव के लिए चवन्नी-अठन्नी देनी पड़ती, जो उनके पास थी नहीं। छोटी-सी नदी थी, बरसात में पानी बढ़ जाता था। सिर में बस्ता बाँध लेते थे और तैर कर चले जाते थे। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को अंदर से भगवान की मदद मिलती है। ऐसी बहुत-सी कहानियाँ हैं। जितने महापुरुष दुनिया में हुए हैं, वे प्रतिकूल परिस्थिति में संघर्ष कर बड़े हुए।

स्वामी विवेकानन्दजी भी प्रतिकूल परिस्थिति में ही आगे बढ़े और अड़तीस साल की उम्र में ही शरीर त्याग दिया। जब स्वामी विवेकानन्द साधु बने, उनको कभी-कभी खाना तक नहीं मिलता था। एक बार बन्दर उनकी लंगोटी चुराकर ले गया! जब वे अमरीका गये, तो कोई उनको लेने नहीं आया। पानी का जो बड़ा ह्यूम पाईप होता है, वहाँ उनको सोना पड़ा। जिस किसी के पास जाते, वह दरवाजा तक नहीं खोलता था। ऐसी बहुत-सी प्रतिकूल परिस्थितियाँ थीं। लेकिन आज पूरी दुनिया में उन्हें सम्मान मिलता है।

मदर टेरेसा, जिनका अभी स्वर्गवास हुआ है, कान्वेंट में इतिहास की व्याख्याता थीं। उन्होंने झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र में स्कूल और अस्पताल खोले। लोग उनका मजाक उड़ाते थे, कहते थे, 'यह सब ढोंग है।' पचास साल पहले की बात है। आज सारा हिन्दुस्तान उन्हें याद कर रहा है। उनकी अन्त्येष्टि के लिए अमरीका के राष्ट्रपति की पत्नी आयी है, बड़े-बड़े लोग आये हैं। इसलिए हमेशा याद रखो, अगर तुमको जीवन में कुछ बनना है, तो सरल जीवन मत खोजो। जो आदमी पहाड़ नहीं चढ़ सकता, वह मजबूत नहीं हो सकता। पढ़ाई बहुत अच्छी चीज है, जो विद्यार्थी है, उसको इस बात को सदा याद रखना चाहिए।

संस्कृत और अँग्रेजी का अध्ययन

'हिन्दू पैंथ्योन' नामक एक किताब है, जिसमें एक अँग्रेज ने पुराणों की कथाओं के अनुसार गणेश, काली, दुर्गा, शिव, रुद्र, देवी, वीरभद्र, विष्णु आदि वैदिक देवी-देवताओं पर निबन्ध लिखे हैं। वह किताब जब छपी, तब उसका वजन दस किलोग्राम और आकार 2.5'x2' था! वह किताब बहुत प्रचलित हुई थी। उसका मूल्य था पन्द्रह-बीस पाउण्ड, मतलब उस समय के पन्द्रह-बीस रुपये। पर अब वह किताब भिन्न-भिन्न संस्करणों में छोटे रूप में

भी छपी है। उस किताब में सभी प्रमुख देवी-देवताओं के चित्र दिये गये हैं, गणेश, शिव, कार्तिकेय, दुर्गा, चण्डी, महाकाली, इत्यादि। ये चित्र किसी चित्रकार से नहीं बनवाये गये हैं, फोटो लेकर छापे गये हैं। अन्त में उसमें तिलक के बारे में बताया गया है। हमारे यहाँ जितने प्रकार के तिलक होते हैं, जो नाक से भ्रूमध्य तक लगाते हैं, कोई लाल तिलक लगाता है, कोई तीन लकीर दायें से बायें लगाता है, कोई 'U' आकार का तिलक लगाता है, कोई छोटा-सा तिलक लगाता है, ये सब धार्मिक प्रतीक छाप दिये गये हैं।

इसलिए कहता हूँ, अगर संस्कृत के साथ अँग्रेजी का सम्बन्ध हो जाए, तो बहुत काम किया जा सकता है। एक बार तुमको अँग्रेजी आ जाए, फिर संस्कृत का बहुत काम कर सकते हो। योग्यता हासिल करने के लिए अँग्रेजी बहुत जरूरी है। अँग्रेजी का अध्ययन अच्छी तरह से कर लो। अँग्रेजी अब पूरी दुनिया में राज करेगी, उसको हटाना सम्भव नहीं है। यह सरकार के बस की बात नहीं है। अँग्रेजों को हटाने के बाद क्या हुआ? लोग अँग्रेजों को गाली देते हैं और अपने बेटे को अँग्रेजी स्कूल में पढ़ाने भेजते हैं! सब पाखण्डी हैं।

संस्कृत भाषा में शोध करने की बहुत सम्भावनाएँ हैं। संस्कृत में बहुत-सी बातें तो पढ़ाते भी नहीं हैं। केवल साहित्य पढ़ाते हैं, थोड़ा वेद पढ़ाते हैं। तुम ब्राह्मण ग्रन्थ ही पढ़ लो, चाहे शतपथ ब्राह्मण हो या अरण्य ग्रन्थ या उपनिषद्। उपनिषद् एक सौ आठ हैं, इनके अलावा अप्रकाशित उपनिषद् भी हैं। आयुर्वेद शास्त्र पूरा संस्कृत में है।

चार पुरुषार्थ

मनुष्य जीवन में चार प्रकार के पुरुषार्थ होते हैं– अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थों पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। विदुर, चाणक्य और बृहस्पति ने अर्थशास्त्र लिखे हैं। वात्स्यायन का काम शास्त्र प्रसिद्ध है। काम शास्त्र पर और भी बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं। उनमें केवल साधारण बातें नहीं लिखी हुई हैं। गृहस्थ आश्रम में स्त्री को क्या खाना चाहिए, क्या नहीं, सौन्दर्य के लिए क्या धारण करना चाहिए, कैसे वस्त्र पहनने चाहिए, किस प्रकार की स्त्रियों से मिलना चाहिए, किस प्रकार के पुरुषों से बातें करनी चाहिए, सब लिखा हुआ है। काम शास्त्र का उद्देश्य है छोटे-से जीवन में ज्यादा-से-ज्यादा आनन्द की प्राप्ति।

वात्स्यायन, जिन्होंने काम शास्त्र लिखा था, वे ब्रह्मचारी थे। उन्होंने शादी नहीं की थी।

इसके बाद महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं मोक्ष शास्त्र के। मोक्ष शास्त्र में उपनिषद् आते हैं, ब्रह्मसूत्र आता है। इनके अलावा विज्ञान शास्त्र, रसायन शास्त्र, विमान शास्त्र, धनुर्वेद आदि बहुत-से शास्त्र हैं। किस तरह से जहर बनाना, जहर बना कर तीर में लगाना, फिर किस शत्रु को मारना, यह सब विज्ञान शास्त्र में है। बहुत बारीक बातों का वर्णन है। इसको लोग बड़े ध्यान से पढ़ते हैं। हमें जब पढ़ने का मन हुआ, तो हमने अँग्रेजी माध्यम से ही पढ़ा, क्योंकि जब हम रामायण आदि का हिन्दी अनुवाद पढ़ रहे थे, उसमें बहुत बेकार हिन्दी लिखी थी, कुछ समझ में नहीं आता था। उपनिषद् भी अँग्रेजी माध्यम से पढ़े। अँग्रेजी लिखने वाले बहुत अच्छे से लिखते हैं, क्योंकि पैसा तो उनके पास बहुत है। आखिर अनुसन्धान करने वाले के पास पैसा होगा, तभी तो ठीक से काम करेगा, ठीक से छपाई करेगा। वैसे संस्कृत के पण्डित आज भी हैं, वह परम्परा अभी भी चालू है।

प्राचीनकाल में स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी या नहीं, उनकी क्या स्थिति थी?

हिन्दुस्तान में जितने लोग हैं, वे बाहर से आये हैं। मूलत: यह देश आदिवासियों का है। पहले रहने वाले लोगों को कहते हैं आदिवासी। भील, कोल, गोंड, मोरिया – ये यहाँ के मूल निवासी हैं। साथ ही इस देश में पानी है, जंगल हैं, खेत हैं, मौसम हैं, सभी चीजें रहने के लिए अनुकूल हैं। दुनियाभर में, जहाँ-जहाँ राजनैतिक परिस्थितियाँ बिगड़ती हैं, वहाँ से लोग भागते हैं। जैसे आजकल बोसनिया और बर्मा से लोग भाग रहे हैं। माने जहाँ भी राजनैतिक परिस्थितियाँ बदलती हैं, लोग झोला-झण्डा लेकर भागते हैं। उसी तरह से अफ्रीका के लोग यहाँ आए, दक्षिण भारत में बस गये। दक्षिण-पूर्वी एशिया के लोग भागे, तो उड़ीसा और बंगाल में बस गये। पश्चिमी प्रदेशों से लोग भागे और पंजाब में बस गये। अरब देश के लोग, उस समय इस्लाम तो था नहीं, राजस्थान में आकर बस गये।

इन अलग-अलग देशों के लोगों के बसने के कारण हिन्दुस्तान का सामाजिक जीवन बड़ा अस्थिर रहा। एक से दूसरी जगह झोला-झण्डा लेकर भागे, तो कौन कहाँ पढ़ेगा? कहाँ स्कूल, कहाँ अस्पताल, कहाँ



वैद्य। इसलिए वे सब झोपड़ियों में रहते थे, स्थायी आवास तो उनका हो नहीं सकता था। जब हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बना, तब बंगाल के लाखों लोग हिन्दुस्तान में आये। जब बंगलादेश बना, लाखों की संख्या में लोग भागे। आज भी सियालदह स्टेशन चले जाओ, तुमको वे सब हजारों की संख्या में मिलेंगे। छोटे-छोटे बच्चे, चार-पाँच साल के लड़के-लड़कियाँ, सब वहीं रहते हैं। उनका कोई घर नहीं, माँ-बाप मर गये हैं। वे सब कुछ जानते हैं, महाबदमाश होते हैं। चोरी कर लेते हैं, सामान उठा लेते हैं, समोसा वगैरह खाकर वहीं सो जाते हैं। अब वे लोग पढ़ाई क्या करेंगे? कोई व्यवस्था ही नहीं है।

परन्तु प्राचीन काल में गुरुकुल होता था। गुरुजी का अपना एक आश्रम होता था, खेती होती थी, पूरी व्यवस्था थी। बच्चे वहाँ पढ़ने के लिए जाते थे। किसी गुरुजी के यहाँ आयुर्वेद की शिक्षा होती थी, किसी के यहाँ साहित्य की। अलग-अलग गुरु अलग-अलग शिक्षा देते थे, किन्तु सब लोगों को शिक्षा नहीं मिलती थी। अर्थात् जो लोग वहाँ बसे हुए थे, केवल उनको शिक्षा मिलती थी। जो लोग बाहर से आते थे, याने शरणार्थी थे, उनको शिक्षा नहीं मिलती थी। राज परिवारों में तो सभी की शिक्षा अनिवार्य थी।

जैसे कैकेयी, राम-सीता, ये सब शिक्षित थे। शिक्षा उस समय के लायक होती थी, क्योंकि समय के साथ शिक्षा की जरूरत बदल जाती है।

अब इंग्लैण्ड या अमेरिका में लोग क्या पढ़ते हैं? औरंगजेब कब जन्मे, कब मरे, महाराणा प्रताप कब जन्मे, कब मरे, यह थोड़े ही उनके काम आएगा। उनको तो कम्प्यूटर चलाना, मशीन चलाना, गाड़ी चलाना, मोटरकार इंजीनियरिंग, प्रिन्टिंग, मकान बनाना, फसल काटना, खेतों में छोटे ट्रैक्टर के साथ हल चलाना, घास काटने की मशीन चलाना, यह सब सिखाते हैं। छोटी-सी मशीन थोड़े-से समय में बड़े खेत को काट देती है और वे एक दिन में ही एक-दो हजार रुपये कमा लेते हैं। जो व्यावहारिक है, वहाँ वही सिखाते हैं। वहाँ के लोग बी.ए., एम.ए. तक नहीं पढ़ते। वहाँ हर एक के लिए आठवें दर्जे तक पढ़ना अनिवार्य है। अगर नहीं पढ़े तो माँ-बाप को जेल में डाल देते हैं, क्योंकि जो माँ-बाप बच्चे को न पढ़ाएँ, वे उसके दुश्मन हैं – *माता शत्रु पिता वैरी, यो न बालं पाठयति।*

आठवें दर्जे तक पढ़ने के बाद वे व्यावसायिक प्रशिक्षण में चले जाते हैं। तब तक उनकी उम्र भी चौदह-पन्द्रह साल की हो जाती है। उसके बाद वे नौकरी ढूँढ लेते हैं। वहाँ नौकरी ढूँढने में कोई झंझट नहीं है। वे मुर्गीखाना या सूअरखाना में काम कर लेते हैं, टॉयलेट साफ कर लेते हैं, नाली साफ कर लेते हैं, कपड़ा साफ कर लेते हैं, कुछ भी काम कर लेते हैं। कुछ झंझट नहीं, क्योंकि वहाँ के टॉयलेट यहाँ की तरह तो हैं नहीं। वहाँ तो बोतल लाए, छिड़का, फ्लश चलाया, टॉयलेट साफ हो गया!

इस तरह तीन-चार साल काम किया, कुछ पैसा कमाया, उसके बाद वे सोचते हैं कुछ घूम लेंगे। कोई चीन जाता है, कोई जापान, कोई भारत। सब अच्छी तरह से देख लेते हैं, अपने दिमाग को खोलते हैं, तब सोचते हैं कि हम क्या काम करेंगे। करीब-करीब बीस-पचीस साल की उम्र में वे निर्णय लेते हैं कि उन्हें क्या करना है। उसके बाद वे विश्वविद्यालय में जाते हैं। किसी ने सोचा कि अँग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर पर शोध करूँगा, तो वह बस उतना ही करेगा, बाकी रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र या गणित वगैरह से कोई मतलब नहीं। वे लोग निश्चित विषय लेकर उसी का अध्ययन करते हैं। वहाँ अधिकतर लोग ऐसे ही करते हैं। यहाँ की पढ़ाई-लिखाई तो बाबूगिरी है। जैसे-जैसे लड़का पढ़ता जाता है, बाबू बनता जाता है।

यहाँ बी.ए. के लड़कों को देख लो, बिल्कुल हीरो के माफिक कपड़े और बाल बनाते हैं! वहाँ चौदह-पन्द्रह साल के बच्चे से बाप कहता है– 'शाम पाँच बजे तक घर वापस आ जाना।' वहाँ हर घर का दरवाजा हमेशा बन्द रहता है, यह रिवाज है। कोई दरवाजा खुला नहीं रखता। अन्दर जाने के लिए घण्टी बजानी पड़ेगी। वहाँ बाप कहता है, 'हम दिनभर काम करते हैं, शाम को आराम करते हैं, इसलिए तुम जब चाहो तब नहीं आ सकते हो। अगर ऐसा ही करना है तो तुम अपना कुछ इन्तजाम कर लो।' वहाँ प्राय: चौदह साल के बच्चे माँ-बाप से अलग रहते हैं। चार-पाँच लड़के मिलकर फ्लैट ले लेते हैं। अपना-अपना खाना बनाते, पढ़ते और मौज भी करते हैं। लखपति की बात नहीं, मैं आम लोगों की बात कह रहा हूँ।

वहाँ लड़की और लड़के में एक प्रतिशत का भी फर्क नहीं है। कौन बड़ा, कौन छोटा, इसका कोई हिसाब नहीं है। यहाँ लड़कियों और लड़कों के साथ अलग-अलग व्यवहार किया जाता है, लेकिन वहाँ दोनों के साथ एक-सा व्यवहार होता है। लड़का हुआ तो वही खुशी, लड़की हुई तो वही खुशी। लड़कियों को भी कहा जाता है, 'तुमको जो करना है करो। रात को देर से ग्यारह-बारह बजे आना हो, आओ, पर इस घर में पाँच बजे तक आना होगा और नहीं आ सकते, तो अपना इन्तजाम खुद करो।' लड़कियाँ भी आजाद हैं, सोचती हैं शाम को तो खेलने जाना ही है, रात को डाँस-ड्रामा में जाना ही है, कहीं शो हो रहा है तो वहाँ जाना ही है। इसलिए वे अलग रहती हैं। वहाँ खाना बनाने की व्यवस्था यहाँ की तरह नहीं है कि घर में बीबी बैठकर खाना बना रही है। वहाँ बीबी कहती है, तुमको खाना है, तो अपना बनाकर खाओ।

दूसरी बात, प्राय: जो गोरे देश हैं, अमरीका, कनाडा या यूरोप, वहाँ माँ-बाप की विरासत अपने आप बच्चों को नहीं मिलती है। जो तुम्हारा है, वह तुम्हारे बेटे को ही मिलेगा, जरूरी नहीं है। पूर्वजों की मिल्कियत तुम्हें विरासत में मिलेगी ही, यह कोई जरूरी नहीं। यहाँ बेटा बाप की सम्पत्ति पर नजर रखे रहता है, सोचता है कि चला जाऊँगा तो मुझे ही नुकसान होगा, बाप का पैसा नहीं मिलेगा, घर नहीं मिलेगा। औरत भी यही सोचती है कि इतना सब छोड़ कर जाऊँगी, तो नुकसान होगा। वहाँ आदमी वकील को लिख कर दे देता है कि मेरे मरने के बाद मेरे धन-सम्पत्ति का बँटवारा कैसे होगा। ज्यादातर लोग तो सम्पत्ति दातव्य संस्था को देकर जाते हैं, अपने बच्चों को नहीं। वे कहते हैं, जो बच्चे माँ-बाप की विरासत पर जिन्दा रहते हैं,

वे नपुंसक होते हैं। समझने की बात तो है। जब तक तुमको पिता की सम्पत्ति पर, उनकी जमीन-जायदाद पर भरोसा है, जो उनके मरने के बाद तुमको मिलने वाली है, तब तक तुम आगे नहीं बढ़ सकोगे। आगे वह बढ़ सकता है, जिसे विरासत में कुछ नहीं मिलता, जिसको अपना भविष्य खुद बनाना है।

पूर्वजों की मिल्कियत विरासत में बच्चों को मिलना, यह हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी कमजोरी है। हिन्दुस्तान ही नहीं, दुनिया में जितने गरीब देश हैं, उन सबका यही हाल है, सब जगह यही नियम है। और जितने अमीर देश हैं, वहाँ दूसरा नियम है। चौदह साल के बाद पंछी अपने बल पर उड़ेगा, गाय का बछड़ा अपना चरेगा। जिसको अधिकार है, वही जीवित रहे। यह उन लोगों का समाज है। दूसरी चीज यह है कि अगर पति और पत्नी के बीच झगड़ा होता है तो पड़ोसी कहता है, 'देखो या तो ढंग से रहो या अलग हो जाओ, यह रोज की खटर-पटर कब तक चलेगी यहाँ?' लोग दबाव डालते हैं कि उनका तलाक हो जाए। शादी की है कुछ सुख के लिए। अगर शादी के बाद भी सुख-शान्ति न मिले, तो शादी का मतलब ही क्या है? उसका मतलब मुर्दा ढोए जाना अपने कंधों पर।

गोरे लोगों के देशों में एक और विशेषता है। वहाँ का समाज यह देखता है कि हमारे लोगों को ज्यादा से ज्यादा फायदा कैसे हो। इंग्लैण्ड के राजघराने की पुत्रवधू डायना की जब मृत्यु हुई, फूलों के गुलदस्ते बेचने वालों की आमदनी करोड़ों, खरबों रुपये हुई। एक बहुत बड़े संगीतज्ञ, एल्टन जॉन ने उस पर गाना गाया, 'कैंडल इन द विंड'। वह गाना इतना मशहूर हो गया कि तीन दिन के अन्दर खरबों रुपयों की कैसेट बिक गयीं। इंग्लैण्ड, फ्राँस, दुनियाभर में वह कैसेट हाथों-हाथ बिकी। यह पैसा एक दातव्य ट्रस्ट को जाएगा और उसी कार्य के लिए खर्च किया जाएगा, जिसके लिए वह खुद खर्च करती थी। कहते हैं उसका ट्रस्ट इस शताब्दी का सबसे बड़ा ट्रस्ट है।

वहाँ के लोग कहते हैं, जिसमें भी दूसरे की आमदनी हो, उसमें रोकटोक नहीं होनी चाहिए। आमदनी के साधन बढ़ाने चाहिए, ताकि सब कमा सकें। जब तुम कमाओगे, तभी तो तुम अपने पैरों पर खड़े रह सकोगे। जब तुम कमाओगे तब तुम्हारे अन्दर व्यक्तित्व जगेगा कि मैं भी कुछ हूँ, अपने बाप या खानदान के बिना भी जिन्दा रह सकता हूँ। अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। यह तब होगा जब हमारा समाज पैसा कमाने का जरिया निकालेगा। हमारे समाज की सबसे बड़ी कमी यही है कि पैसा कमाने के लिए यहाँ रास्ते नहीं

निकालते हैं। पैसा कमाना है तो रास्ता होना चाहिए, चाहे फूल बेचो, कागज बेचो, जूता बेचो, कुछ भी बेचो, ग्राहक तो मिल ही जाएगा।

स्वामी सत्संगी को कम्प्यूटर के प्रशिक्षण के लिए लन्दन भेजा था। उसे कहा कि टिकट तो यहाँ मिल ही जाएगा, लेकिन वहाँ रहने का खर्चा तुमको स्वयं करना होगा। तो वह तीस-चालीस सेट छत्तीसगढ़ी पन्नी के ले गयी, वह पन्नी जो किसान लोग काली मिट्‌टी के खेतों में जाने पर पहनते हैं। वहाँ वह पन्नियों को बेचने सड़क पर खड़ी हो जाती थी। जल्द ही सब पन्नियाँ बिक गयीं। यहाँ तक कि जो खुद पहनी थी, उसको भी उतारकर बेच दिया और नंगे पाँव घर वापस आयी। इस तरह से उसने अपना खर्चा चलाया, क्योंकि वहाँ के लोग सोचते हैं कि किसी की कोई चीज खरीद लें, तो उसमें उसका भला होगा। भले ही मुझे पन्नी की जरूरत नहीं है, लेकिन वह पन्नी बेचना चाहती है और मेरी जेब में पैसा है, तो मैं खरीद लूँगा। अर्थ-शास्त्र का यही नियम है, जब पैसा चलता है तब आदमी अमीर होता है और जब पैसा रुकता है, तब गरीब। और पैसा चलने के कारण ही आदमी का मन फिर आध्यात्मिकता की ओर जाता है।

भूखे भजन न होए गोपाला, ले लो अपनी कण्ठी माला।

पेट भरा हो, अच्छे बीबी-बच्चे हों, नौकरी की चिन्ता न हो, यहाँ नहीं तो वहाँ मिल ही जाएगी, यह घर नहीं तो दूसरा घर ले लेंगे, ऐसी परिस्थिति में मन आध्यात्मिकता की ओर जाता है। यहाँ जितने स्वामी लोग आते हैं, सब नौकरी छोड़कर आते हैं और जब लौटते हैं तो तीन दिन पहले किसी को फोन कर देते हैं कि हमारे लिए फ्लैट तैयार कर लेना और जाने पर चौबीस घण्टे के अन्दर घर मिल जाता है, नौकरी मिल जाती है, सब कुछ मिल जाता है। कुछ झंझट नहीं है।

अब ऐसा आदमी जिसको घर कभी भी, कहीं भी मिल जाए, नौकरी कभी भी मिल जाए, बीबी-बच्चों का झंझट नहीं, शादी का झंझट नहीं, वह आदमी अगर भगवान का भजन करेगा, तो उसका मन वहाँ लगेगा। वह सोचेगा, 'खाली समय में क्या करूँ? चलो रिखिया या मुंगेर चलते हैं, वहाँ से कुछ योग सीख आते हैं, या नेचुरोपैथी में चले जाते हैं या रामकृष्ण आश्रम में चले जाते हैं, आसन-प्राणायाम, ध्यान, वेद, उपनिषद्, सब सीख आते हैं।'

विदेशों में तो अन्त्येष्टि में भी कुछ नहीं किया जाता है। वहाँ जब कोई मर जाता है, तब बस एक जगह फोन करके सूचना दे देते हैं। वहीं से फिर पादरी, कफन वाले, फूल वाले, डॉक्टर, पुलिस, सबको फोन कर देते हैं। एक घण्टे के अन्दर वे आते हैं और ले जाकर अन्त्येष्टि कर देते हैं। कौन लाल कपड़ा, नारियल वगैरह खरीदे। वहाँ पैसा दे देते हैं, पाँच-छः हजार रुपये का बिल आता है, बस अन्त्येष्टि हो गयी। यहाँ तो कब्र खोदनी पड़ती है, पर वहाँ कब्र भी खुदी हुई मिल जाती है। संगमरमर में नाम लिख कर कब्र पर लगा दिया जाता है। उसके बाद वहाँ भोज की जरूरत नहीं। यह जो भोज की प्रथा है, गरीबों के लिए बहुत भारी पड़ जाती है, उन्हें बहुत कष्ट होता है।

अन्त्येष्टि हो या शादी, ऐसी बहुत सी चीजें हैं जो गरीबों के ऊपर लादी गयी हैं। अमीर हो या गरीब, शादी एक संस्कार है। पति और पत्नी मन्दिर में जाएँ, वहाँ धार्मिक रीति के अनुसार पण्डितजी मन्त्र पढ़ दें, अग्नि के चारों ओर फेरे करा दें, वरमाला पहना दें, कन्यादान कर दें, सिन्दूर लगा दें, बस छुट्टी। आर्यसमाज में तो ऐसे ही शादी होती है। यहाँ जो शादी होती है, वह वैदिक शादी नहीं, लौकिक शादी है। यह सब लोकाचार है। वेदों के अनुसार जो शादी होती है, उसमें केवल अग्नि के सामने शपथ, सप्तपदी, कन्यादान और पाणिग्रहण होना चाहिए। मैं तो यहाँ सबसे कहता हूँ, मन्दिर में जाकर शादी करो और घर आकर पूड़ी वगैरह खिला दो।

लड़की को जो दहेज दिया जाता है, वह बुरा नहीं है। लड़की का भी पिता की सम्पत्ति पर अधिकार है, वह लेती है, इसी को दहेज कहते हैं। दहेज देना ठीक है, लेकिन अब कोई कलेक्टर है, पैसे वाला है, फिर भी लाख-दो लाख मांग रहा है, यह गलत है। यह बहुत शर्म की बात है। करोड़पति के घर में लड़की आ रही है और पैसा ला रही है, यह गलत बात है। मगर ये चीजें मिटने वाली नहीं हैं। ये तब मिटेंगी जब यहाँ की शिक्षा का तरीका बदलेगा और मुसलमानों का जो प्रभाव बरसों से अपने ऊपर पड़ा है, वह हटेगा। हमारे यहाँ कई सौ साल तक मुसलमान समाज का प्रभाव पड़ा है, मुसलमान यहाँ राजा रहे हैं। उन्होंने अपने मुताबिक कहा कि यह करो, वह मत करो। फिर यूनानियों का भी प्रभाव रहा। हूणों ने हमला किया, फिर मलेच्छों ने और फिर गौरांग लोगों ने। जो भी राज करता है, वह अपनी सभ्यता समाज में छोड़कर जाता है। अँग्रेजों ने अँग्रेजी दी, मुसलमान आए तो उन्होंने उर्दू भाषा दी,

दाढ़ी-पर्दा वगैरह सिखाया। हर जगह, हर क्षेत्र में उनका प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि गाने में कव्वाली आयी। अब वह प्रभाव कम होना चाहिए।

वैदिक धर्म स्वतन्त्रता का अनुयायी है। यहाँ शिक्षा तो हमेशा रही है, वेद लिखे और पढ़े जाते थे। वशिष्ठ जैसे बड़े-बड़े ऋषि थे। अगस्त्य मुनि ने तो उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाकर, तमिल भाषा का व्याकरण बनाकर वहाँ तमिल भाषा शुरू की। स्त्रियों की पढ़ाई भी होती थी। केवल मुसलमानों के आने पर औरतों को बन्द कर दिया गया, क्योंकि मुसलमानों के समाज में उस समय जो प्रथा चल रही थी और जहाँ से वे लोग आए थे, वहाँ औरतें असुरक्षित रहती थीं। अपनी आबादी बढ़ाने के लिए हर राजा एक-डेढ़ सौ औरतें रखता था, उनसे बच्चे हो जाते थे। आबादी बढ़ाने के लिए औरतों की लूट होती थी। वही कानून उन्होंने यहाँ भी लागू किया।

यूनान का भी यही तरीका रहा। यूनान में तो आज भी अगर कोई विधवा बाहर निकल जाए और किसी आदमी से उसका सम्बन्ध हो जाए, तो गाँव के लोग उन दोनों को बाहर खड़ा करके पत्थर से तब तक मारते जाते हैं, जब तक दोनों मर न जाएँ! वही प्रभाव उन्होंने हमारे देश में भी छोड़ दिया, विधवा का दुबारा विवाह होना ही नहीं चाहिए। मगर सब लोगों ने इसे नहीं माना। कुमाऊँ में औरत सिर्फ चौबीस घण्टे विधवा रहती है। शोक के बाद उसके हाथ में चूड़ी पहना दी जाती है। कोई नहीं रहा तो पति का भाई ही पहना देता है, लेकिन उसे विधवा नहीं रहने देते। जिस समाज में विधवा होगी, उस समाज में गड़बड़ होगी। उसको कितना भी नजरबन्द रखो, कितना भी पहरा दो, कितना भी मारो-पीटो, कुछ भी करो, जब लड़की कुआंरी नहीं रहती, तो उसको क्या कहना? जिसने एक बार भोग का स्वाद लिया है, उसे कैसे रोकोगे? वह उसकी कमजोरी हो जाती है। इसलिए कुमाऊँ में यह नियम है कि जब लड़का मर जाता है, तो पहली बात सोची जाती है कि लड़की का क्या होगा। विधवा रहेगी तो सारे परिवार में गड़बड़ करेगी, तुरन्त परिवार के अन्दर उसकी व्यवस्था कर देते हैं। कुमाऊँ में ही नहीं, ऐसे और भी कई देश हैं जहाँ विधवाओं का पुनर्विवाह होता है, जैसे इन्डोनेशिया।

समय बदलने के साथ समाज को भी बदलना चाहिए। विधवा को बीच मैदान में पत्थर से मारना कोई सभ्यता है? जंगलीपन है। राजस्थान में विधवा को जला देते हैं, अभी भी। यह कोई सभ्यता है? शहरों में रहने वालों को इन सब छोटी-छोटी बातों के बारे में सोचकर समाज में इस पर चर्चा करनी

चाहिए। खुला विचार-विमर्श होना चाहिए। इसमें तेरह-चौदह साल की उम्र वालों से बड़े-बूढ़ों तक, समाज के सभी लोगों को भाग लेना चाहिए। जिस तरह स्नान स्नानघर में करते हैं, भोजन रसोईघर में बनाते हैं, हर कार्य को उसके कार्यस्थान में ही करते हैं, उसी प्रकार जिस स्थान से समाज में अस्वस्थ प्रवृत्तियों का जन्म होता है, उसको तुरन्त वहीं से बन्द कर देना चाहिए। अपनी लड़की हो या पुत्रवधू, विधवा होने पर उसके कपड़े नहीं बदलने चाहिए, शुभ कार्य में आने से उसे मना नहीं करना चाहिए। यह गलत बात है। और यदि ऐसा ही करना है, तो वही कानून मर्द के लिए भी होना चाहिए। जब विधवा स्त्री के लिए वह नियम है, तो आदमी के लिए नहीं होना चाहिए क्या? वह भी सफेद कपड़ा पहने, मूँछ मुड़ा कर रहे!

अपने समाज में ऐसी चीजें लानी चाहिए, जिनसे समाज में सुख-शान्ति हो, उन्नति हो, कोई गन्दगी न हो, रुपया-पैसा पास रहे। हमारे बाप-दादा का समय दूसरा था, हमारा समय दूसरा है। हमारे बाप-दादा के समय दीपक के तले अंधेरा होता था, अब तो दीपक के ऊपर अंधेरा होता है। हमारा बल्ब जलता है तो नीचे उजाला, ऊपर अंधेरा होता है। हमारे बाप-दादा के समय हम लोग तीस करोड़ थे और अब एक अरब होने वाले हैं। उस समय एक लंगोटी पहनकर पूरा गाँव घूम आते थे। अब लंगोटी पहन कर जाओ न देवघर, मार खाकर आओगे! इसलिए देश और काल के अनुसार हमारे समाज को बदलना चाहिए। यह हमसे नहीं होगा, तुमसे नहीं होगा, इसके लिए समाज में खुला विचार-विमर्श होना चाहिए और सब जातियों में होना चाहिए, क्योंकि पिछड़ी या अनुसूचित नाम की कोई जाति नहीं होती, सब एक हैं। होटल में सब एक साथ जाते हैं, नौकरी में सब एक साथ जाते हैं। ब्राह्मण बाटा और टाटा कम्पनियों में काम करते हैं। बाटा माने जूता बनाने वाला, टाटा माने लोहा बनाने वाला! चमार, लोहार, ये सब तो पेशे हैं, लेकिन जाति तो एक है और वह है मनुष्य।

किसी की बुद्धि ज्यादा होती है, किसी की कम। अब ब्राह्मण भगवान के मुख से तो जन्मे नहीं और न ही शूद्र पैर से पैदा हुए। दोनों के दोनों माता के गर्भ से नौ महीने में पैदा हुए हैं और एक ही कानून से पैदा हुए हैं। जिस कानून से तुम पैदा हुए हो, उसी कानून से सभी पैदा हुए हैं। क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, हिन्दू, मुसलमान, सभी एक हैं, एक नियम से पैदा हुए हैं। फिर जाति का भेद कहाँ से आ गया? यह हम लोगों ने बनाया है और यह रहेगा भी।

मगर अब कोई मानता नहीं है। मुसलमान की दुकान से सामान नहीं खरीदते हो क्या? तुमको मुसलमान या ईसाई के यहाँ अच्छी नौकरी मिल जाए तो नहीं करोगे क्या? तो फिर जात-पाँत क्या मानना, कोई जरूरत नहीं है। मनुष्य भी एक जात है। तुम्हारे-हमारे जन्म और मरण का एक ही नियम है। भोजन पाचन और विसर्जन का एक ही नियम है। कोई अन्तर नहीं है।

जहाँ ब्राह्मणों में वशिष्ठ जैसे विद्वान् हुए हैं, वहाँ शूद्रों में वाल्मीकि भी हुए हैं, जो आदि कवि हो गये। जहाँ राजघराने की मीराबाई भक्त हो गई, वहाँ शूद्रों के यहाँ भी कई महान् भक्त हो गये। सहजो बाई, चरणदास की शिष्या थी। रामदास तो मोची था, गोरा कुम्हार था, सघना कसाई था, गुरु नानक कायस्थ थे। हमको लगता है अब सबको मिलाना पड़ेगा, खिचड़ी बनानी पड़ेगी जाति की।

यह सब युवा लोगों के लिये कह रहा हूँ। उन लोगों को मेरी बात ठीक लगनी चाहिए, बड़ों को लगे या नहीं। एक लड़की थी, जर्मनी से पर्यटन के लिए भारत आयी थी। जयपुर का एक रिक्शावाला था, बहुत कम पढ़ा-लिखा था। वह उसको सारा दिन घुमाता-फिराता था। वह उसके व्यवहार से इतनी प्रभावित हुई कि उससे शादी कर ली। रिक्शेवाले के खानदान में हंगामा हो गया कि परायी जात में शादी हुई, हमारी लड़कियों का क्या होगा। लेकिन वह जर्मन लड़की समर्थ थी। आखिर में जब उसने देखा कि बहुत परेशानी हो रही है, बहुत तंग किया जा रहा है, तब वह उसको सीधा दिल्ली ले गयी, पासपोर्ट बनवाया और जर्मनी ले गयी। वहाँ उसे पढ़ाया और अब दोनों मजे में रहते हैं।

सवाल उठता है कि लड़की ने उस लड़के में क्या देखा? वह पढ़ा-लिखा था नहीं, न ही उसकी जात का था। लड़की गोरी थी, वह सांवला राजस्थानी रहा होगा। जब प्रेस वालों ने पूछा कि लड़के में क्या देखा, तो उसने कहा, मुझे उसका स्वभाव पसन्द आया। उसने पैसे के बारे में बात तक नहीं की। बोला, 'मैडम, आप चलिए, फिर आप जो चाहे दे दीजिएगा।' वह दिनभर उसको घुमाता रहा। कोई दूसरा रिक्शावाला होता तो कहता, 'मैडम, जो पैसा हुआ है, दे दो, मैं दिनभर तुम्हारे साथ घूमता नहीं रहूँगा।' लेकिन वह पूरे दिन घुमाता रहा और जब लड़की पैसा देने लगी, तो उसने कहा, 'मैडम, कल भी तो आपको घुमाना है न?' रिक्शेवाले ने उसको पूरे एक हफ्ते तक जयपुर के अगल-बगल की जगहें, राजमहल वगैरह सब दिखाया। आखिर में

जाते समय उसने कहा, 'जो आपको ठीक लगे दे दो।' तो लड़की ने उसे एक हजार डॉलर दिए! उस समय एक हजार डॉलर का दाम होता था बारह हजार रुपए। रिक्शेवाले ने सोचा, एक हफ्ते में बारह हजार रुपये, यह तो सम्पत्ति है। उसने कहा, 'नहीं, हम अपने दाम पर लेंगे।' उसने अपना दाम बताया और साढ़े सात सौ रुपये के आस-पास लिये। वह बड़ी प्रभावित हुई। उससे बातचीत की और कहा कि आज तक हम तुम्हारे रिक्शे में घूमते थे, अब तुम हमारे रिक्शे में घूमो। टैक्सी ली, घुमाया, मन्दिर गये, शादी कर ली। जब पुलिस पकड़ने लगी कि लड़के ने इसे फँसाया है, तब वह उसको दिल्ली ले गयी, उसका पासपोर्ट बनवाया और जर्मनी ले गयी।

कहने का मतलब यह कि जब तुम शादी करोगे, तब क्या देखोगे? जात देखोगे या स्वभाव? जिस लड़की या लड़के से तुम्हें शादी करनी है, देखो तो सही कि लायक है या नहीं। खाली पैसा देख लिया या उसका बाप बड़ा अफसर है, उसके बाप के पास जमीन-जायदाद, बंगला है, यह काफी नहीं है। शादी उससे करनी है, उसके बाप से तो नहीं। तुम्हारी शादी उस लड़के या लड़की से हो रही है। तुम देखो वह तुम्हारे लिये ठीक है या नहीं, ऐसा नहीं कि शादी के बाद अनबन हो जाए।

– 14 सितम्बर, 1997





अध्याय 6

हर एक समाज अपनी परिस्थितियों को देखते हुए चलता और नियम बनाता है। परिस्थितियों के अनुसार ही समाज, सभ्यता, राजनीति और धर्म का निर्माण होता है। धर्म को बनाने वाला ईश्वर नहीं, मनुष्य है। मनुष्यों में जो विद्वान् हैं, उन्होंने नियम बनाये हैं, जिसको धर्म कहते हैं। यह धर्म परिस्थितियों के अनुसार बनता है। लोग वैसे तो बात मानते नहीं हैं, इसलिए पहले जो भी कहा जाता था, धर्म के माध्यम से कहा जाता था। जैसे, सुबह स्नान करो, खड़े होकर पेशाब मत करो, टट्टी करके साफ करो, फिर हाथ धोओ, यह सब धार्मिक विधान में जोड़ा गया था, ताकि लोग उसका पालन करें, क्योंकि उस समय लोग धर्म को ज्यादा मानते थे। आज हम विज्ञान को ज्यादा मानते हैं, धर्म को नहीं। धर्म आज बाहर की चीज हो गयी है। आज विज्ञान का युग है।

अब मुश्किल यह है कि अगर आज धर्म को चुनौती देंगे, तो सारी परम्परा को चुनौती देनी पड़ेगी और हिन्दू धर्म या वैदिक धर्म के सिवा कोई धर्म चुनौती पसंद नहीं करता। हम लोग चुनौती इसलिए पसंद करते हैं कि हमको मालूम है कि हमारे पूर्वजों ने जो कहा, वह उस समय के लिए ठीक था, लेकिन जरूरी नहीं कि आज के लिए भी ठीक हो। आज आप धोती पहनकर फैक्ट्री में काम करोगे क्या? गर्म देश में जाओगे तो स्वेटर पहन कर जाओगे क्या? नहीं। जैसे मौसम के मुताबिक कपड़े बदलने पड़ते हैं, वैसे ही परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति को बदलना चाहिए। पहले के जमाने में नौ-दस साल की उम्र में लड़की की शादी कर देते थे, परिस्थिति ऐसी थी। पर आज तो परिस्थिति ऐसी नहीं है।

विज्ञान के मुताबिक शादी के लिए लड़की की सही उम्र बीस और पचीस के बीच है। बीस के पहले तो किसी भी हालत में नहीं, क्योंकि उसके प्रजनन हार्मोन्स और अंग बीस साल के बाद ही तैयार होते हैं। उसी तरह लड़के की पचीस साल के पहले शादी की उम्र नहीं है। विज्ञान की दृष्टि से पिता और पुत्र के बीच कम-से-कम पचीस साल का अन्तर होना जरूरी है। मान लो, एक लड़के की तेरह साल की उम्र में शादी हो गयी और उसको एक बच्चा हुआ। उसके और उसके बच्चे के बीच चौदह साल का ही फर्क रहा। बाप और बेटे के बीच अगर चौदह साल का फर्क रहेगा, तो दोनों की खोपड़ी समान ही रहेगी। इसलिए पिता और संतान के बीच कम-से-कम पचीस साल का अन्तर रहना अच्छा मानते हैं।

युग के मुताबिक शादी हो, अन्त्येष्टि हो। यहाँ अन्त्येष्टि लकड़ी से करते हैं, मगर आधुनिक देशों में अब तो गैस और बिजली से अन्त्येष्टि होती है। जापान में लकड़ी से अन्त्येष्टि कहीं नहीं होती, वहाँ केवल बिजली से अन्त्येष्टि होती है। परिस्थितियाँ तो बदलनी पड़ती हैं। हमारे पूर्वजों ने इसे धर्म से जोड़ा था, इसलिए लकड़ी, चन्दन, घी आदि की जरूरत पड़ती थी। डोम हंडिया, आग और न जाने क्या-क्या लाता था। चमार और डोम को दान दिया जाता था। उस समय वह ठीक था, लेकिन आज जब हम बिजली से अन्तिम संस्कार करते हैं, तब इन चीजों की जरूरत नहीं पड़ती। जो कुछ पूजा-पाठ करना है, बाहर बैठकर कर लो, बाद में शरीर को चेम्बर में डाल देते हैं और बटन दबा देते हैं। एक दरवाजे से शरीर जाता है, दूसरे दरवाजे से पुख्ता राख निकलती है। वह एकदम शुद्ध और असली होती है, जबकि हमारे पिताजी या दादाजी की जो अस्थि है, वह शुद्ध नहीं है, उसमें लकड़ी, भस्म, कोयला, आदि मिला रहता है। लेकिन यहाँ शुद्ध अस्थि मिलती है, उसको बोतल में नाम और नम्बर लिख कर दे देते हैं। सस्ता भी पड़ता है, दो-तीन सौ रुपये में काम हो जाता है। यहाँ तो लकड़ी ही बहुत लग जाती है।

अन्त्येष्टि को पहले धर्म से जोड़ा गया और आज हमने उसको व्यावहारिकता से जोड़ा है। आज अगर हम यह कहें कि अगर लकड़ी नहीं रही तो धुआँ नहीं होगा, तब फिर आत्मा का क्या होगा, तो यह सही नहीं है। अपने को वैज्ञानिक ढंग से समझना होगा। हमारा वैदिक धर्म हमेशा से समय और परिस्थिति के अनुसार अपने को बदलता आया है और इसीलिए शायद हजारों सालों के परिवर्तन के बावजूद अभी तक जिन्दा है।

किसी भी धर्म के भाग्य में दो चीजें होती हैं, अंत या निरंतरता। अंत का मतलब धर्म मर गया, खत्म हो गया। अब उसके बाद तुम दूसरा धर्म चालू करो। दूसरी चीज है निरंतरता। वही धर्म है, समय के अनुसार थोड़ा-सा तुम बदलते गये। उसकी मौलिक चीज को नहीं हटाया। एक छोटी-सी बात कहता हूँ। शादीशुदा लड़कियाँ जो लाल टीका लगाती हैं, वह धर्म में लिखा है क्या? आजकल की शादीशुदा लड़कियाँ जो इंग्लैंड या अमरीका में रहती हैं, ऑफिस जाती हैं, वे इसे पसन्द नहीं करतीं। हम कहते हैं, कोई हर्ज नहीं है। सुहागन सिन्दूर लगाए या नहीं लगाए, मंगल सूत्र पहने या नहीं पहने, अंगूठी पहने या नहीं पहने, वह सुहागन ही है। बाहर के देशों में लोगों को बताने की क्या जरूरत है कि मैं सुहागन हूँ। टीका लगाकर यह प्रदर्शन क्यों किया जाए? ऐसी चीजों को हम वैदिक धर्म में अनिवार्य नहीं मानते। पर्दा प्रथा अनिवार्य नहीं है। आजकल लड़कियाँ बाल कटाकर छोटा करा लेती हैं, क्या इससे धर्म पर कोई आघात पहुँचता है? धर्म मूलत: कुछ और चीज है। क्षमा, दया, सहनशीलता, संयम – असली धर्म यही है, बाकी सब आचार है। बच्चा पैदा हो तो उसको कैसे रखो, क्या खिलाओ, नामकरण कैसे करना चाहिए, शादी हो तो लड़की दायें बैठेगी या बायें, ये सब बातें विशेष मतलब नहीं रखतीं।

क्या पुराने जमाने में तलाक की प्रथा थी?

प्राचीन काल में तलाक की प्रथा नहीं थी। एक उदाहरण देते हैं। रामजी ने सीताजी को तलाक नहीं दिया था, उन्होंने सीताजी का परित्याग किया था। इसका मतलब सीताजी के पुत्रों का रामजी के सिंहासन पर अधिकार बनता था। अगर सीताजी को तलाक दिया जाता, तो रामजी के सिंहासन पर कौन बैठता? हर युग में अलग-अलग परम्पराएँ रही हैं – पितृप्रधान और मातृप्रधान। पितृप्रधान समाज में सन्तान पिता की मानी जाती है, मातृप्रधान समाज में माता की। जब माता का त्याग किया, तो उसकी सन्तान का भी त्याग किया, वह सन्तान गद्‌दी पर नहीं बैठ सकती, यह मातृप्रधान परम्परा है।

हमारा समाज अब मातृप्रधान नहीं रहा। महाभारत के बाद पितृप्रधान होने लगा। रामजी किसके बेटे थे? कौशल्या के। उन्हें कौशल्या का बेटा कहा गया, कृष्ण जी को यशोदा का बेटा कहा गया, भरत को कैकेयीनन्दन कहा गया। पहले भारतीय वैदिक समाज में माता को परिवार का सबसे श्रेष्ठ सदस्य

माना जाता था। इसलिए आदिवासी भूमि मातृप्रधान है। अभी तो मातृभूमि का मतलब स्वदेश से लगाते हैं। लेकिन उस समय मतलब रहता था कि यह भूमि माता की है। भाषा के साथ भी यही बात थी, मातृभाषा माने माँ की भाषा। मेरी मातृभाषा हिन्दी नहीं, नेपाली है, क्योंकि वह मेरी माँ की जबान है। इसी तरह माँ की जमीन और माँ का बेटा। मेरी माँ कौन है? मेरी माँ भूमि है। *'पुत्रोऽहं पृथिव्याः'* लिखा भी है। तो उस समय माँ की ही प्रधानता थी।

धीरे-धीरे समाज बदलता गया। आज यूनानियों, यवनों और इस्लाम के सैकड़ों सालों के इतिहास में बहुत कुछ बदला है। ग्रीक आये, फिर मुगल आये, फिर मलेच्छ आये, परम्परा बदली, धीरे-धीरे औरतों को घर के अन्दर घुसाते गये, घुसाना पड़ा। जो चीज चोरी होती है, उसको सम्हाल कर रखा जाता है। क्या तुम अपना टी.वी. या और कोई मूल्यवान् चीज बाहर रखोगे? नहीं, अन्दर रखना पड़ता है। लेकिन जब से यह यूरोपियन सभ्यता आयी है, तब से फिर परिस्थिति बदलती जा रही है, क्योंकि इनकी सभ्यता न मातृप्रधान है, न पितृप्रधान। यह सन्तुलित है, माँ और बाप का अधिकार बराबर है। सन्तान, सम्पत्ति, राष्ट्र और समाज में लड़की और लड़के की भागीदारी बराबर है। यह सन्तुलित विचार उन लोगों ने अपनाया है, जो हम लोगों को पसन्द आया है।

हम समझते हैं कि यह जो विचारधारा आयी है, इसका मुख्य कारण यूरोप के लोग भी नहीं, बल्कि औद्योगिक क्रान्ति है। औद्योगिक क्रान्ति से जो सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उसके कारण लोग घर छोड़ कर भागने लगे, पति चला गया कलकत्ता, तो बीबी बैठी है गाँव में। ऐसी अवस्था में लोगों ने नये समाज का निर्माण किया, जिसको हम कहते हैं आधुनिक सभ्यता। इसको पाश्चात्य सभ्यता कहना भी गलत होगा, क्योंकि इंग्लैण्ड, अमेरिका में भी वही सभ्यता थी, जिसका मैंने जिक्र किया। वहाँ पितृप्रधान सभ्यता थी, मातृप्रधान नहीं। अब लोगों ने उसे बदल दिया। और मेरी समझ में यह सभ्यता युग के अनुरूप है। यहाँ पर कुछ हद तक हम लोगों के विचार भी गलत रहे हैं। लेकिन ये विचार हमारे नहीं हैं, ये हमारे समाज और सभ्यता पर मध्ययुग में होने वाले आक्रमणों और अत्याचारों के परिणाम हैं, ये विभिन्न बाहरी सभ्यताओं के प्रभाव हैं। चीनी आये, तुर्की आये, मंगोल आये, ये सब उनके प्रभाव हैं, जिनको हम अपना समझ कर स्वीकार कर रहे हैं।

वैदिक सभ्यता एक मुक्त सभ्यता थी। मुक्त सभ्यता का मतलब होता है कि सिर्फ एक चीज ठीक है, ऐसा नहीं। *'नेति नेति'*, यह भी नहीं, यह भी नहीं। हमारे पूर्वजों ने ईश्वर के बारे में चर्चा की है। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ, और परस्पर विरोधी बातें भी हुईं। विवाह के बारे में भी इसने कहा यह ठीक है, उसने कहा वह ठीक है, किसी ने कहा यह गलत है, तो किसी ने कहा वह सही है। सब ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने विचार दिये। किसी ने वैदिक विवाह को, किसी ने गंधर्व विवाह को, किसी ने ब्राह्मण विवाह को, किसी ने प्रजापति विवाह को तो किसी ने राक्षस विवाह को श्रेष्ठता दी। राक्षस लोग कहते हैं कि जब तक तुम औरत को जीतकर नहीं लाये, तब तक शादी कैसी? बलपूर्वक जीतकर लाओ, तब मानें तुमको। केवल अग्नि के चारों ओर सात फेरे लगा लिये तो क्या शादी हो गयी? तुम भी कपटी और वह भी कपटी! अपने बाहुबल से जीत कर लाओ उसको। वेदों में इसकी अनेक जगह चर्चा हुई है।

अब आया उत्तराधिकार का सवाल। बाप मर जाए, तो सम्पत्ति किसकी होगी? माँ मर गयी, तो सम्पत्ति किसकी होगी? पुत्र और पुत्री की परिभाषा क्या है? और जब परिभाषा करने लगे तो एक ने कहा, उस स्त्री का उस मर्द से सम्बन्ध है, तो वह उसका पति हुआ। दूसरे ने कहा, नहीं, वह उसका पति नहीं है। अगर वह पति नहीं है, तो पुत्र भी उसका नहीं हुआ। वैदिक सभ्यता में इन सब विषयों पर खुलेआम चर्चा की गयी है, ताकि हम बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल सकें।

अगर किसी लड़की-लड़के का आपसी प्रेम हो जाए, वे शादी कर लें और तुम उसे अस्वीकार कर दो, तो उनकी कानूनी स्थिति क्या होगी? उनकी सामाजिक हैसियत क्या होगी? एक लड़का किसी लड़की का अपहरण करके ले जाता है और उससे शादी कर लेता है, तो उसकी सामाजिक स्थिति क्या होगी? यह सब चर्चा वैदिक शास्त्रों में हुई है। उनमें चौबीस प्रकार के पुत्रों का वर्णन आता है। पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध से जो जीव उत्पन्न होता है, उसकी चौबीस प्रकार की स्थितियाँ मानी गयी हैं। उनमें सबसे बढ़कर औरस पुत्र हुआ। औरस पुत्र का कानूनी अधिकार सबसे ऊँचा है, क्योंकि युग की प्रचलित सामाजिक विचारधारा के अनुसार नियम से विवाह किया गया, चाहे उस समय ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, जो भी धर्म रहा हो। अब दुष्यन्त-पुत्र भरत की क्या परिस्थिति थी? वह वैध था या अवैध? उसके माता-पिता का



गंधर्व विवाह हुआ था। अगर गंधर्व विवाह नहीं हुआ होता तो भरत राजगद्दी पर नहीं बैठ सकता था। अत: शादी के साथ ये सब चीजें बहुत जरूरी हैं। शादी का सम्पत्ति, उत्तराधिकार, समाज और देश से इतना सम्बन्ध है कि हमारे ऋषियों ने इस पर बहुत गहरा चिन्तन किया है।

शादी केवल दो शरीरों या व्यक्तियों का सम्बन्ध नहीं है। न ही यह केवल भावनात्मक या सामाजिक सम्बन्ध है। यह दो जीन्स का मेल है, एक अनुवांशिक मिश्रण है, क्योंकि पति और पत्नी के जीन्स अलग-अलग समूह के होते हैं। वैज्ञानिक अब तक ऐसे दो अरब जीन्स की पहचान कर चुके हैं। अनुवांशिक

विज्ञान तो बहुत हाल का है, पुराना नहीं है। जब जीन्स ठीक से मिलते हैं, तब ठीक सन्तान पैदा होती है, नहीं तो बीमार, अपंग या पागल सन्तान पैदा होती है। डॉक्टरों से भले ही इलाज कराते जाओ, पर वे लोग जीवनभर बीमार ही रहते हैं। कैंसर या टी.बी. ही नहीं, जो भी बीमारी होती है, अक्सर अनुवांशिक ही होती है।

गोत्र का सम्बन्ध जीन्स से है?

असली चीज तो वही है, गोत्र जीन्स से जुड़ा हुआ है, पर वैज्ञानिक परिभाषाएँ नहीं होने से बीच में लोग उसको नहीं मानते थे। किन्तु अब लोग विज्ञान पढ़ चुके हैं और संहिता भी पढ़ चुके हैं। शादी का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन से है। अब उस अपराधबोध को दूर करने के लिए लोगों ने शादी का रूप अपना लिया, एक नियम, एक व्यवस्था बना दी। पण्डितजी, माता-पिता, सिन्दूर इत्यादि को बीच में ले आये। परन्तु फिर अपराधबोध आ जाता है। प्रजनन किसका? यह सवाल उठता है। आखिर समाज पर इसका असर पड़ेगा, सम्पत्ति पर इसका असर पड़ेगा, बहुत चीजों पर इसका असर पड़ेगा। शादी को एक प्रकार से संहिताबद्ध किया गया है। शादी का मतलब होता है, तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के बीच सम्बन्धों की आचारसंहिता।

शादी का मुख्य प्रयोजन है प्रजनन। मध्य युग में, आज से कई सौ साल पहले लोग जब डकैती करते थे, औरतों को भगा कर ले जाते थे। औरतों की डकैती का भी युग हुआ है। हम लोगों ने पढ़ा है इतिहास में। दो-दो सौ औरतों की डकैती करते थे और ऐसा करने वाले की जय-जयकार होती थी। औरतों को जीत कर लाते थे, क्यों? इसलिए कि अपने वंश को बढ़ाना है। अगर दो-चार सौ औरतें हो जायेंगी, तो साल में दो-तीन सौ बच्चे तो हो ही जायेंगे।

अब उस प्रजनन में गलती क्या हो जाती है? हम समझते हैं दोनों जीन्स का विपरीत होना जरूरी है। हम लोगों ने वैदिक धर्म में गोत्र का ध्यान रखा। ये गोत्र ऋषियों के नाम से आते हैं, जैसे, कश्यप गोत्र है, गर्ग गोत्र है। अब कौन जाने यह गोत्र सच में किसी ऋषि का नाम था या किसी जीन का नाम था या यह कोई जेनेटिक कोड था। एक पुरुष और स्त्री की शादी के लिये जाति की समानता देखना आवश्यक नहीं, काला-गोरा पर जोर देने की जरूरत नहीं, अमीर घर की है या गरीब घर की, वह भी सोचने की जरूरत नहीं है। केवल यही सोचना और समझना है कि दोनों का सम्बन्ध एक उत्तम सन्तान

को जन्म देगा या नहीं, जो बुद्धिमान्, बलवान् और नीरोग हो। यही तो आवश्यक है। अब पैदा होते ही मोतियाबिन्द है या जन्म से ही खाँसता रहता है, जिन्दगीभर दवाई देते जाओ, इसका मतलब अनुवांशिक बीमारी है।

इस अनुवांशिक बीमारी को दूर करने के लिए किसी भी सभ्यता में, किसी विज्ञान ने उपाय नहीं बताया। केवल वेदों में इस पर बहुत चर्चा हुई है और आधुनिक वैज्ञानिक अब इस पर चिन्तन कर रहे हैं। इस्लाम में कुछ नहीं कहा है। यूरोप में तो किसी भी लड़की या लड़के के साथ शादी कर लेते हैं। मुसलमान होगा तो मस्जिद जाएगा, ईसाई होगा तो चर्च जाएगा, यही उसकी पहचान है। मगर आधुनिक विज्ञान इस पर विचार कर रहा है। भारत में तो कुण्डली मिलाते हैं, जातियाँ मिलाते हैं, गोत्र मिलाते हैं। लेकिन इन सब ने भी काम नहीं किया है, क्योंकि भारत में जब हम लोगों का स्वास्थ्य देखते हैं या उनकी बीमारियाँ देखते हैं तो लगता है कि कहीं न कहीं पर गलती जरूर हो रही है।

सबसे बड़ी चीज है कि वैज्ञानिक सामने आयें तो लोगों को समझा सकते हैं। पर आज के युग में दुनियाभर में, माने पढ़े-लिखे समाज में खासकर जो प्रथा चल रही है, वह है प्रेम, मुहब्बत। अगर किसी का किसी से प्रेम हो जाता है, वहीं शादी का निर्णय हो जाता है। कुछ वर्ष पहले राजस्थान में एक जर्मन लड़की आयी थी, पर्यटन के लिए। एक रिक्शे वाले से उसका प्रेम हो गया और उसने उससे शादी कर ली। वहाँ के लोगों ने बहुत विरोध किया, पुलिस ने भी पकड़ा। दोनों छूट भी गये, क्योंकि दोनों बालिग थे। संविधान में तो लिखा ही है कि किसी से भी शादी का अधिकार है। वह लड़का विदेश चला गया उसके साथ।

विदेशी कहते हैं कि जब दो व्यक्तियों का हृदय मिल गया तो यही शादी का निर्णायक तत्त्व है। विदेशों में लड़का-लड़की जीवनभर साथ रहते हैं, मगर शादी नहीं करते, जब तक कि एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट न हों। नहीं तो उसको दोस्ती कहते हैं, उनमें केवल मित्रता का भाव रहता है, पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं रहता। प्रेम भाव यदि आ जाता है, तो शादी कर लेते हैं। आजकल सब जगह यही चलता है। वहाँ जाति, राष्ट्रीयता और मजहब नहीं देखते। फ्रान्स में तो कितने ईसाई हैं, जिन्होंने मुसलमानों से शादी की है। उनका आधा नाम ईसाई का और आधा नाम मुसलमान का रहता है। और कई धर्म ऐसे भी हैं, जो दूसरे धर्म में शादी करने की इजाजत नहीं देते हैं। यहूदी लोगों में यहूदी पण्डित कहता है कि हम शादी नहीं करायेंगे, क्योंकि

तुम दूसरे धर्म के हो। कई लोग आर्य समाज में धर्म की दीक्षा ले लेते हैं या ईसाई बन जाते हैं और शादी कर लेते हैं।

ऐसे ही अन्त्येष्टि में भी होता है। एक पारसी औरत थी, उसने किसी हिन्दुस्तानी से शादी की थी। उसके बाद पारसी रीति-रिवाज और कर्म-काण्ड उसको नहीं मिलते थे, क्योंकि उसने धर्म का नियम तोड़ दिया था। तो उसने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया, उसको हिन्दू धर्म का प्रमाण पत्र मिल गया। मरने पर जब उसे पारसियों के मौन बुर्ज में स्थान नहीं मिला, तब उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। ऐसा बहुत होता है दुनिया में। वैदिक धर्म में तो इसकी पूरी छूट है। तुम्हारी लड़की ईसाई से शादी करे और कहे कि उसे कब्र में दफनाया जाए, तो कहेंगे, ठीक है, चलेगा।

जो इन्डो-यूरोपियन जातियाँ हैं, उनका खून भारतीय खून से मेल खाता है। ईसाई धर्म के अनुसार जब शादी होती है, तब उसका धर्म स्वत: बदल जाता है। ईसाई धर्म में शादी को धर्म की दीक्षा माना जाता है। ऐसा मुसलमानों में नहीं है।

आजकल बिहार राज्य में बहुत अराजकता है। इसका क्या समाधान है?

योगदण्ड हो या राजदण्ड, कोई आदमी को ठीक नहीं कर सकता। क्यों ठीक नहीं कर सकता? शास्त्र ने इसका जवाब दिया है। भगवान ने, ब्रह्मा ने, ईश्वर ने, खुदा ने या गॉड ने जब दुनिया को पैदा किया, तब उन्होंने तीन तत्त्वों को लिया – सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण, और इन तीनों गुणों का संयोग किया। इन्हीं तीन तत्त्वों के विभिन्न मिश्रणों से यह सृष्टि पैदा हुई। इसका मतलब तुममें भी तीनों गुण हैं, हममें भी तीनों गुण हैं। अब शास्त्र कहते हैं कि ये तीन गुण प्रकृति के विकार हैं। जैसे दही दूध का विकार है, उसी तरह ये गुण प्रकृति के विकार हैं। और प्रकृति ही इस सृष्टि को पैदा करती है, भगवान नहीं। भगवान केवल हरी झण्डी दिखाते हैं।

शास्त्र कहते हैं कि दुनिया को बनाने वाली प्रकृति माया है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इसलिए दुनिया में तुमको तीनों गुण वाले आदमी मिलेंगे। सतोगुणी माने अच्छे लोग, रजोगुणी का मतलब लोभी-लालची, तमोगुणी का मतलब, चोर-डकैत। बिहार में भी तीनों गुणों के लोग हैं, लेकिन बिहार में गरीबी भी बहुत है।

– 15 सितम्बर, 1997



अध्याय 7

सुखी होने, शान्ति पाने, भगवान को पाने और यौगिक शक्ति को जगाने के एक नहीं, लाखों रास्ते हैं। परन्तु सबसे सरल रास्ता, जो हमारे गुरुजी ने बताया, जो रामचरितमानस भी कहती है, जो विवेकानन्दजी, गाँधीजी, विनोबाजी, ईसामसीह और मुहम्मद साहब भी बोलते थे, वह है सेवा का। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – यह पतंजलि का अष्टाँग योग है। स्वामी शिवानन्द जी का अष्टाँग योग है – सेवा करो, प्रेम दो, दान दो, अपने हृदय को शुद्ध करो, फिर भगवान् का ध्यान करो, साक्षात्कार करो, अच्छा बनो और अच्छा करो।

भोग का अधिकार किसी को नहीं

भगवान का एक सिद्धान्त है, लक्ष्मी जी का एक नियम है, 'जो कुछ तुम्हारे पास है, वह केवल तुम्हारा नहीं, किसी गरीब का भी है। जो कुछ तुम्हें मिला है, अगर तुम समझते हो कि वह सिर्फ तुम्हारा है, तो हम चेक देना बन्द कर देंगे। फिर उतना ही देंगे, जितना जरूरी है। कुछ ज्यादा ले लोगे, तो हम दूसरे तरीके से वापस ले लेंगे। किसी को कैंसर कर देंगे, किसी को मधुमेह कर देंगे, किसी को टी.बी. कर देंगे, किसी के घर चोरी हो जाएगी। हम किसी तरह वापस ले लेंगे।' भगवान यही सब तो कर रहे हैं। जितने पैसे वाले हैं, परेशान नहीं होते हैं क्या? इधर से दस हजार मारते हैं, उधर से दस हजार जाता है, बल्कि ज्यादा ही जाता है। हमें मालूम है। इसलिए हम अपने संन्यासियों पर भी कड़ी नजर रखते हैं। संन्यासियों को तो भोग का अधिकार है ही नहीं। भोग का अधिकार तो गृहस्थों को भी नहीं है, पर थोड़ी अनुमति मिली हुई है।

जिस दिन तुमने संन्यास का संकल्प लिया, उस दिन एक और संकल्प ले लिया कि आज से मैं न्यासी हूँ। संन्यास का सबसे बड़ा अर्थ त्याग नहीं होता है। संन्यास का अर्थ 'न्यास' होता है। न्यास का अर्थ होता है, विश्वास। लोग देखते हैं कि स्वामीजी के पास कुछ नहीं है, न जोरू, न बच्चा, न घर-गृहस्थी और वे अपने ऊपर खर्चा भी ज्यादा नहीं करते हैं, क्यों न उनके माध्यम से कुछ अच्छा काम करें। अच्छा काम तो सभी करना चाहते हैं, परन्तु मालूम नहीं कैसे करें। संन्यासी अच्छा काम करने के लिये माध्यम बनता है। तुम अच्छा काम करना चाहते हो, तुमको अवसर नहीं मिलता, रास्ता नहीं मिलता, तरीका नहीं मालूम। इसलिये तुमने विवेकानन्दजी, गाँधीजी, विनोबाजी आदि के माध्यम से काम किया। आखिर लाखों लोग मदर टेरेसा के पीछे पागल क्यों थे? इसलिए कि वह एक माध्यम बन गई। हिन्दुस्तान के लोगों की आजाद होने की भावना को प्रकट करने के लिए गाँधीजी माध्यम बन गये। तुम लोगों के अच्छे संकल्प के लिए हम माध्यम बनेंगे। तुम खुद को ही देखो, रास्ते में कोई बीमार पड़ा हुआ हो, तो तुमको तकलीफ नहीं होगी क्या? पर कर क्या सकते हो? तुमको दफ्तर जाना है, परिवार की देखभाल करनी है, पढ़ाई करनी है। इसलिये तुमको एक माध्यम चाहिए।

मदर टेरेसा एक माध्यम थी और उसने अपना कर्त्तव्य बहुत अच्छे से पूरा किया। इसलिये उसने भारत का सम्मान पाया। भारत में महात्मा गाँधी के बाद अगर किसी को आदर दिया गया, तो वह है मदर टेरेसा। वह तो हमारे धर्म की भी नहीं है। धर्म में क्या रखा है, वह तो एक सामाजिक पहचान हो गया है। धर्म, जाति, वर्ण, ये तो सामाजिक चिह्न हैं। मदर टेरेसा कैथोलिक थी, पोप उस धर्म का जगत् गुरु है। ईसाई धर्म के इतिहास में आज तक पोप ने किसी साधु की अन्त्येष्टि में अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा। जब भी कोई ईसाई साधु मरता है, पोप संदेश भेज देता है, मगर अपना प्रतिनिधि नहीं भेजता। इस नियम का एकमात्र अपवाद है मदर टेरेसा।

मनुष्य को अपने सब कर्मों को समाप्त करके भगवान का माध्यम बनना चाहिए। जो भी व्यक्ति दूसरों का भला करता है, वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। हमारे ऊपर किसका बन्धन है? न औरत का, न बेटे का, न भाई का, न भतीजे का, न सास का, न ससुर का, किसी का बन्धन नहीं है। जो भी बन्धन है, वह हमारे मन का है और हमने अपने मन से कह दिया है, 'बेटा, सम्भल कर रहो।' चेलों की भी कोई माँग नहीं है। स्वामी सत्यानन्द का चेला

माँग करे, असम्भव है। मैं तो लात मारकर निकाल देता हूँ। सब मेरे से डरते हैं, इसके लिए प्रसिद्ध हूँ। यद्यपि बूढ़ा हो गया हूँ, फिर भी वे मेरे से डरते हैं। पहले तो मैं पिटाई तक कर देता था। पान सड़ा क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, चेला बिगड़ा क्यों? इसलिए कि फेरा नहीं गया। चेलों को फेरना पड़ता है। इतने साल हो गए, हमने कभी घड़ी नहीं पहनी। सामने घड़ी टंगी हुई है, उसी में देख लेता हूँ समय। ऐसी बात नहीं कि घड़ी जरूरी नहीं है, लेकिन लोगों को घड़ी की एक लालसा हो जाती है कि स्विस घड़ी ही चाहिए। घड़ी एक छोटी सी चीज है, लेकिन छोटी-छोटी चीजों में हम लोगों की वृत्ति चली जाती है।

हम लोगों के साधु-महात्मा जो आश्रमों में रहते हैं, उनका खाना-पीना सरल होता है। ऋषिकेश में हमको काली कमलीवाले के यहाँ से चार रोटियाँ मिल जाती थीं, पंजाब-सिंध क्षेत्र से चावल मिल जाता था। प्रतिदिन हम लोग भिक्षा माँगने के लिए चले जाते थे। क्यों? इसलिए कि यह हमारी प्रथा है। गृहस्थ साधुओं को खाना देते हैं, कहते हैं, जाओ, तुम भजन करो। ऋषिकेश में हमारे यहाँ दो क्षेत्र थे। क्षेत्र का मतलब जहाँ अन्न मिलता है। काली कमलीवाले मनीराम थे, उनको बहुत दया आयी, तो उन्होंने क्षेत्र खोल दिया। दूसरा पंजाब-सिंध क्षेत्र, जिसे पंजाबियों और सिंधियों ने मिलकर खोला। काली कमलीवाले के यहाँ चार रोटी और साबूत मूँग का तड़का दस बजे होता था। वहाँ से चार रोटी और तड़का खप्पर में डाल देते थे और फिर हम लोग पंजाब-सिंध क्षेत्र चले जाते थे, क्योंकि चार रोटी से तो आदमी का काम चलता नहीं। वहाँ मिलती थी रोटी और थोड़ा चावल-दाल। कभी-कभी भण्डारा होता था तो हलवा भी मिल जाता था और कभी-कभी कपड़ा भी मिल जाता था। कभी-कभी कोई दानी आ जाता था, तो कम्बल और रुपया भी मिल जाता था।

अपने यहाँ समष्टि भण्डारा होता है। समष्टि माने कोई भी आदमी आकर बैठ जाता है और खाता है। ऋषिकेश, हरिद्वार, बनारस में तो साधुओं का ऐसा ही नियम रहा है। कहते हैं वाराणसी में कोई भूखा नहीं रह सकता। किसी भी क्षेत्र में चले जाओ, तुमको खाना जरूर मिल जाएगा। क्यों? इसलिए कि कहते हैं – हे साधु! तुमको दो रोटी और चावल-दाल देते हैं, खाओ और भगवान का भजन करो। हमारे समाज ने साधु-संन्यासियों को आदिकाल से पाला है। राजा-महाराजा पालते थे, यहाँ तक कि मुसलमानों के समय में भी पाले जाते थे। मन्दिरों में अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब के

समय के लिखे हुए ताम्र-पत्र मिलते हैं। कबीर चौरा में पट्टा है, पट्टा माने इकरारनामा। उसमें लिखा है कि यह कबीर चौरा की चार एकड़ जमीन बिना लगान के मुगले-आजम की ओर से दान में दी गयी। यह पत्र कबीर चौरा के सभी आश्रमों में है। बनारस में ज्ञान गुदड़ी बहुत बड़ी संस्था है, वहाँ बहुत पुराना ग्रंथालय है। अकबर के समय में उनको वह जमीन पट्टे पर मिली। हिन्दुओं के समय को तो छोड़ दो, बौद्धों के समय पर बौद्धमत को जमीन मिली, मदद मिली। जैनों के समय पर जैन विहारों को मदद मिली। दक्षिण भारत जाओ, उत्तर भारत जाओ, कहीं भी देखो, साधु-महात्माओं को हमेशा से पाला गया है। उन साधु-महात्माओं में भले ही सभी साधु-महात्मा बनने के लायक नहीं थे, मगर बहुत बन गये।

अगर हम सौ विधवाओं को रामनाम की मजूरी देकर पालें, और उसमें एक भी असाधारण निकल जाए, तो समाज कल्याण करेगी। यह कोई नयी चीज नहीं है, मगर हम इसको नया रूप दे रहे हैं। रसीद में लिखा होगा कि शिवानन्द मठ में आठ घण्टे रामनाम जप करने के लिये चौबीस रुपया प्राप्त किया, नीचे अपना नाम लिखकर वह दस्तखत करेगी। हमने केवल इसको आधुनिक रूप दिया है। हम सदा साधु-संन्यासियों से कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर समाज का बहुत बड़ा ऋण है। संन्यासी को जो कर्त्तव्य करने हैं, वे निश्चित हैं। भगवान के नाम का, भगवद् भक्ति का प्रचार, यह उसका पहला कर्त्तव्य है। दूसरा कर्त्तव्य है, परोपकार। संन्यासी के ये दो धर्म बतलाए गए हैं, तीसरा नहीं है। इसके अलावा वह कितना तीर्थाटन करता है, कितनी पूजा करता है, कौन सी तपस्या करता है, कितना मन्त्र जप करता है, कैसा तिलक लगाता है, कैसा कपड़ा पहनता है, वह सब उसका धर्म नहीं है। उसके लिये वह स्वतन्त्र है, वह सब मजहब के अनुसार करे। उसका सम्प्रदाय वैरागी है तो वैरागी की तरह रहे, उदासी है तो उदासी की तरह रहे, संन्यासी है तो संन्यासी की तरह रहे, वह तो सम्प्रदाय का नियम है। ऋषि-मुनियों ने हमेशा भगवान के नाम का आदेश दिया है। जिस जमाने में अद्वैत वेदान्त को मानते थे, उस समय उपनिषद् लिख दिये। जब साकार की उपासना हुई, तब श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भागवत लिख दिये। आज हिन्दुस्तान भर में रामायण और श्रीमद्भागवत की कथा सब जगह होती है।

हमारे गुरुजी हमसे बहुत खुश रहते थे। आश्रम में जब भी आम आते थे या मिठाई आती थी, तो स्वामीजी पूछते थे, 'किसको देना है?' हम कहते थे,

'सबसे पहले हम कोढ़ियों को दे आयेंगे, फिर जो बचेगा, वह हम खायेंगे।' किसी दूसरे से पूछते तो वह कहता, 'हम पहले आश्रम में सबको देंगे, जो बचेगा वह वहाँ दे देंगे।' स्वामीजी कहते थे, 'तुम्हारा दृष्टिकोण सही है। तुम्हारे मन में ऐसा विचार कैसे आया? तुम तो बड़े घर के हो, बड़े घर के लोगों को ऐसे विचार तो नहीं आने चाहिए।'

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव

हमारे भारतीय समाज पर पाश्चात्य सभ्यता का कुछ प्रभाव आया है। पाश्चात्य सभ्यता के लिए वे तौर-तरीके स्वाभाविक हैं, प्राकृतिक हैं। उनको वह शोभा देता है, वहाँ जाकर देखो, सब ठीक लगता है। मगर वही जब यहाँ आ जाता है, तब अजीब लगता है, क्योंकि वह बाहर से लायी गयी संस्कृति है। अब इस बाहरी संस्कृति को रोकने का तरीका क्या है? तालिबान या औरंगजेब की तरह कानून बनाओगे? नहीं, नकारात्मकता पर सकारात्मकता हमेशा विजयी होती है। अगर एक छोटी लाइन को मिटाना है, तो उसके आगे एक बड़ी लाइन खींच दो। आपके पास सकारात्मक शक्ति तो है ही। रामायण की कथा है, हनुमानजी की कथा है, कृष्णजी की कथा है, देवी-देवताओं की कथा है, महापुरुषों की कहानियाँ हैं। उन पर टी.वी. कार्यक्रम हैं, गाने हैं। इनसे पाश्चात्य सभ्यता का जो नकारात्मक प्रभाव है, वह खत्म तो नहीं होगा, लेकिन व्यवस्थित अवश्य हो जाएगा।

दूसरी सभ्यताओं में भी कोई खराबी नहीं है। जैसे दूध से बनी कई मिठाइयाँ होती हैं, बंगाली को रसगुल्ला अच्छा लगता है, देवघर वाले को पेड़ा अच्छा लगता है, तो दूसरे को रसमलाई अच्छी लगती है – है तो तीनों में दूध। अगर तुम को वह मिठाई पसन्द नहीं है, तो यह मिठाई ले लो।

पाश्चात्य सभ्यता और हमारी भारतीय सभ्यता में मूल अन्तर इतना ही है कि प्राचीन सभ्यता में, चाहे वह हमारी हो, मुसलमानों की हो, बौद्धों की हो अथवा चीन या जापान वालों की हो, उसमें जीवन, समाज एवं खुद को सुधारने पर जोर है, और भगवान हमारे जीवन का लक्ष्य है। अगले जन्म का भी कुछ ख्याल करना चाहिए। आज की ही बात नहीं, कई बार ऐसा हुआ कि हमें किसी काम के लिए पैसा देने के लिये विवश किया गया, जैसे कि आज की प्रथा है। हमने नहीं दिया, कई बार हमारा काम भी नहीं हुआ। हमने कहा कि नहीं, हमको अगले जन्म का ख्याल रखना है। हमने पूर्व

जन्म में अच्छा काम किया था, इसलिए आज भगवान ने हम पर इतनी कृपा की। उन्होंने कहा, 'सत्यानन्द, तू कभी बीमार नहीं होगा। तू कोई गलती भी करेगा, तो भी लोग तुझे मानेंगे।' अब इस जन्म में एक टेलिफोन तार के लिए, मकान के लिए या अपने किसी भी काम के लिए, पैसा देने के लिए विवश किया जाता है। लेकिन हम कहते हैं, काम हो या न हो, अपना जन्म मत बिगाड़ो। यह पाश्चात्य सभ्यता में नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता में है कि काम होना चाहिए। भले ही पाँच हजार रुपये दे दो और काम करा लो। यह क्यों? इसलिए कि उनकी सभ्यता में पुनर्जन्म नाम की कोई चीज नहीं है। उनका सब कुछ कब्र में खत्म हो जाता है, लेकिन हमारा कब्र में सिर्फ एक अध्याय खत्म होता है, किताब खत्म नहीं होती। श्मशान हमारे लिए अध्याय का अन्त है, पुस्तक या ग्रन्थ का अन्त नहीं। अनेक जन्म होते हैं। हम जानते हैं इसलिए कहते हैं, किताबों से पढ़कर नहीं कहते हैं।

जब भी हम विदेश जाते थे और इस बारे में बात होती थी, तब हम उनसे भी यही कहते थे। एक बार हमने वहाँ किसी से कहा कि कहीं कोई पुराना मकान है, उसको खरीद लो। उसने कहा, नहीं स्वामीजी, वहाँ भूत रहता है। हमने कहा, जब पुनर्जन्म नहीं मानते तो भूत कहाँ से आ गया! जब तुमने भूत माना, तो तुमने पुनर्जन्म भी मान लिया कि नहीं? पहले ईसाइयों में भी पुनर्जन्म माना जाता था। किन्तु छठी या सातवीं शताब्दी में इस्तान्बुल में पादरियों की एक बड़ी सभा हुई। उस सभा में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि ईसाई धर्म की मान्यताओं से पुनर्जन्म को हटा दिया जाए। प्रस्ताव पारित करके पुनर्जन्म को हटा दिया, कितनी अजीब बात लगती है। भगवान को भी हटा दो न! पुनर्जन्म का अनुभव तो सबको है। भूत से तो तुम डरते हो न? मानते हो या नहीं मानते? जब भूत को माना तो पुनर्जन्म को मान लिया। दूसरों से क्या, तुम अपने से पूछो पुनर्जन्म होता है या नहीं? जवाब अन्दर से मिले, हाँ, तो पुनर्जन्म को मान लो। मतलब यह कि हम किसी ऐसी चीज को मानते हैं, जो जीवन समाप्त होने के बाद भी जीवित रहती है।

अलबेली सरकार

इस सृष्टि में कोई है जो सबकी देखभाल करता है। सब कुछ अपने आप ही नहीं हो रहा है। चीजों का विकास अपने आप नहीं होता है। तुम्हारे बच्चे का जन्म अपने आप नहीं हुआ है। वह किसी आकस्मिक घटना का परिणाम

नहीं है, न तुम, न मैं, और न ही कोई अन्य। कोई शक्ति है, कोई देवता है, जो यह सब करता है। जैसे भारत देश की सरकार है, वैसे ही इस पूरे ब्रह्माण्ड में कोई सरकार है जो सब विभागों की देखभाल करती है। एक बहुत बड़ी सरकार, जिसको कहते हैं अलबेली सरकार। अंग्रेजी में इसे कहते हैं 'कॉस्मिक गवर्नमेन्ट' और उपनिषदों में कहते हैं अक्षर प्रशासन। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा– *एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत*– हे गार्गी, इस अलबेली सरकार में चाँद और सूरज अलग-अलग स्थान में रहते हैं, कभी एक-दूसरे से टकराते नहीं। अपना-अपना रास्ता अपने ढंग से चलते हैं। नदियाँ ऊपर से नीचे की ओर ही बहती हैं। इस तरह की और भी बहुत सी बातें लिखी हैं इस उपनिषद् में कि यह सरकार कैसे सबका ख्याल रखती है।

सारी सृष्टि भ्रम में है। तुम सोचते हो कि तुम्हारा जन्म हुआ, तुम्हारी माँ और दादी का जन्म हुआ, फिर उनकी मृत्यु हुई, फिर तुम युवा हुए, बुजुर्ग बने। उसी प्रकार प्रकृति के अन्य जीव और तत्त्व भी बदलते प्रतीत होते हैं। पर यह सब अपने आप नहीं हो रहा है। सभी का नियंत्रण विभिन्न शक्तियाँ करती हैं, जिन्हें देवता कहते हैं। हर स्थान का एक स्थान देवता होता है, जो उस जगह का ख्याल रखता है। जब मैंने पड़ोस की जमीन खरीदी, तब उस स्थान के पुराने देवता को भगा दिया, क्योंकि उसने जमीन की ठीक से देखभाल नहीं की, उसने जमीन के विकास के लिये मालिक की मदद नहीं की।

जब मैंने तपोवन लिया, तब वहाँ भूमि पूजन किया। एक महीना सीताजी के विवाह का जो कार्यक्रम हुआ, वह इसीलिए हुआ था। वह भूमि पूजन का बहाना था, क्योंकि सीताजी भूपुत्री हैं, भूदेवी हैं, वे जनकजी की कन्या नहीं थीं। वह तो कानूनी ढंग से कहना पड़ता है, पर वास्तव में वे भूमि की पुत्री थीं। उनके बारे में तो बहुत कहानियाँ हैं। हमने उस स्थान देवता को कहा, 'तुम जाओ, तुमने इस स्थान को ठीक से नहीं रखा है। तुमने पीछे से गड्ढा बना दिया है, जमीन कटवा दी है।'

हर भूमि का देवता होता है, इसलिए भूमि की पूजा होती है। भूमि एक जीवित तत्त्व है। जितने सजीव हम हैं, उतनी वह है, बल्कि भूमि ज्यादा सजीव तत्त्व है। पृथ्वी को देवी कहते हैं, उसके प्रति ऋण चुकाना पड़ता है। तुम भगवान के ऋणी हो, जो तुम्हारे घर, परिवार, व्यापार, गाय, कुत्ते,

आदि की देखभाल करता है। एक प्रतीक होता है, जिसमें देवता का वास होता है। ग्रीस में बेसिलिका होती है, हिन्दुओं में तुलसी और पीपल होते हैं। हम तो प्रतिदिन सुबह और शाम तुलसी और पीपल की पूजा करते हैं, अगरबत्ती और दिया जलाते हैं। मैं इस भगवान को क्यों न मानूँ? इसमें क्या नुकसान है। भगवान को तुम देख नहीं सकते, इसलिये कह दिया कि वह निराकार है! नहीं, भगवान का रूप होता है, जिसे मैं देख नहीं पाता हूँ। इसलिए उनका एक प्रतीक रख दिया।

कलियुग के देवता

कलियुग में केवल दो चीजें महत्त्वपूर्ण हैं। अच्छी तरह से रहो, अच्छे घर में रहो, अच्छा कपड़ा पहनो, अच्छी बात करो, यह गणेशजी का तरीका है। गणेशजी शिवजी की तरह लंगोटी वगैरह धारण करके साँप-बिच्छू के साथ नहीं बैठते हैं। वे तो बढ़िया रेशम का कपड़ा पहनते हैं, पाउडर-क्रीम लगाते हैं, लड्डू खाते हैं। खूब बढ़िया मोटा पेट है उनका! वे बड़े विद्वान् हैं, पढ़े-लिखे हैं, बुद्धिजीवी हैं। यह है आज का युग। शिवजी पढ़े-लिखे नहीं हैं, पर गणेशजी को पढ़ना और चर्चा करना पसन्द है। सारी महाभारत उन्होंने लिख डाली। व्यासदेव जी लिखाते जाते थे, वे लिखते जाते थे। और दूसरी हैं देवी जी। पैसा-पैसा-पैसा, आज का आदमी केवल अर्थ संचय करता है। इसलिए शास्त्रों में लिखा है – *कलौ चण्डीविनायकौ*, कलियुग में इन दो देवताओं का पूजन जरूरी है, क्योंकि आज के युग की आवश्यकता यही है।

आज आदमी दो ही चीजें चाहता है। अच्छी तरह से रहना और बैंक में पैसा। तुम पढ़े-लिखे बन सको, कोई नौकरी मिल जाए, दो-चार आदमियों के बीच बातचीत कर सको, यही तो सब चाहते हैं न? वेतन भी अच्छा होना चाहिए, मकान भी अच्छा होना चाहिए, शादी हो तो अच्छे घर में हो, बीमार पड़े तो दवाई भी अच्छी होनी चाहिए। यह गणेश जी का तरीका है, शिवजी जैसा नहीं। शिवजी तो कहीं भी सो जायेंगे, तुम्हारी गोशाला में भी सो जायेंगे। वे कहते हैं, क्या फर्क पड़ता है, सोना ही तो है। लेकिन आज का आदमी कहता है, टॉयलेट या ड्राइंग रूम में नहीं सोयेंगे, सोना है तो बेडरूम में ही सोयेंगे, और वह भी बढ़िया होना चाहिए। यह आज के आदमी की मांग है। और दूसरा, पैसा होना चाहिए। बैंक में थोड़ा जमा होना चाहिए,

बीमा योजना में थोड़ा जमा होना चाहिए। शास्त्रों में जो लिखा है, *कलौ चण्डीविनायकौ*, ये देवता हमारी मन:स्थिति को दर्शाते हैं।

दक्षिण अमेरिका में हमारे गणेशजी से सुगन्ध भी आती है।

मैं बाहरी चीजों के बारे में बात नहीं कर रहा हूँ। जब मैं गणेश, लक्ष्मी या चण्डी के बारे में चर्चा करता हूँ, वे सब बहुत गूढ़ बातें हैं। यह एक रहस्यमय विषय है, लेकिन मैं इस तरह से बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि तुम लोग उसको समझ सको, अपना सको। अगर मैं कहूँ कि भगवान निराकार हैं, तो तुम क्या करोगे? कुछ नहीं कर सकते। लेकिन जब मैं कहता हूँ कि भगवान का रूप है, उनका शरीर है, उनकी सूँड है या उनकी पूँछ है, तब तुम उनको समझ सकते हो। हो सकता है तुम्हें उनका आशीर्वाद भी मिल जाए या कम से कम वे तुम्हारी श्रद्धा के केन्द्र हो जाएँ।

मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है श्रद्धा और विश्वास। विवेकानन्दजी कहते थे कि जिसकी श्रद्धा और विश्वास बहुत मजबूत होगा, वह कुछ भी कर सकता है। ईसामसीह और मुहम्मद साहब भी यही कहते थे। श्रद्धा और विश्वास बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं। यह श्रद्धा और विश्वास किसी का भी, किसी भी हालत में टूटना नहीं चाहिए। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो देवी-देवताओं के चित्र काट-कूट कर फेंक देते हैं। नहीं, श्रद्धा और विश्वास मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी है।

मुझे धर्म प्रचार से उतना मतलब नहीं। मेरा सबसे बड़ा प्रयोजन है कि हर एक व्यक्ति को साकार भगवान की अनुभूति होनी चाहिए। जब सारी सृष्टि साकार है, तब भगवान निराकार कैसे हो गये? कोई चीज आँख से नहीं दिखती, इसलिए वह निराकार है, यह तो नहीं कह सकते। हवा तो आँख से नहीं दिखती है, लेकिन निराकार थोड़े ही है। अब हम बोल रहे हैं और तुम अच्छी तरह से कान बन्द कर दो, तो हमारी आवाज सुनायी नहीं देगी। उसका मतलब क्या हम बोल ही नहीं रहे हैं? क्या हमारे शब्दों का उच्चारण नहीं हो रहा है? क्या हमारे मुँह से ध्वनि तरंगें नहीं निकल रही हैं? केवल तुम सुन नहीं रहे हो। शब्द के लिए कान, रूप के लिए आँख, सुगंध के लिए नाक, स्वाद के लिए जिह्वा, स्पर्श के लिए चमड़ी, विचार के लिए मन और भगवान के लिए श्रद्धा। श्रद्धा से भगवान को देखा जा सकता है। भगवान को सूँघ भी सकते हो, उनको चख भी सकते हो, उनको सुन भी सकते हो,

उनको स्पर्श भी कर सकते हो। मगर उसके लिए श्रद्धा का होना बहुत जरूरी है। भगवान की साकार अनुभूति अवश्य होती है। वह अनुभूति तुलसीदासजी की तरह भी हो सकती है –

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

वह एक आकाशवाणी, माने अन्तर्ध्वनि के रूप में भी हो सकती है। भगवान का कोई एक रूप तो है नहीं, उनका दर्शन अनेक रूपों में हो सकता है। शब्द के रूप में, स्पर्श के रूप में, रस के रूप में, गंध के रूप में, देवी के रूप में, कुण्डलिनी के रूप में।

भगवान को पहचानेंगे कैसे?

रसगुल्ले को कैसे पहचानते हो? जब भगवान आते हैं, तब स्पष्ट पता चलता है कि भगवान हैं। उसमें कोई भ्रम नहीं होगा कि रसगुल्ला है या जलेबी! मिठाई मिठाई है, और भगवान भगवान हैं। और यह जरूरी नहीं है कि जब भगवान आयें, तब संसार गायब हो जाए। हाँ, यह भी सत्य है कि जब भगवान आते हैं, तब सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है और कुछ जानने योग्य बचता नहीं, संसार शून्य हो जाता है। परन्तु चलते-फिरते जो प्रभु का दर्शन होता है, उसमें संसार शून्य नहीं होता। जब तुलसीदासजी प्रभु के मस्तक पर चन्दन लगा रहे थे, तब उन्हें भगवान का अनुभव हुआ, परन्तु साथ ही उन्हें अपना भी अनुभव था। वे सजग थे कि वे चिदाकाश में हैं, और आस-पास दूसरे भी लोग हैं।

ईश्वर के ज्ञान में जगत् का भी ज्ञान रहता है, यहाँ पर हम लोग कभी-कभी गलती कर देते हैं। ईश्वर की झलक कभी-कभी ही लोगों को मिलती है, लेकिन वे फिर दुबारा चाहते हैं। नहीं, दुबारा नहीं मिलती है, क्योंकि वह अनुभव तुम्हारे लिये एक सन्देश लेकर आता है कि इस मार्ग पर चलो। इसलिए जब भी कोई अनुभव हो, तब अपनी जीवनचर्या बदलो या अपने विचार में परिवर्तन लाओ, क्योंकि वह अनुभव या तो तुम्हें प्रेरणा देने के लिये, सन्देश देने के लिये या फिर कोई आदेश देने के लिये आया है। मान लो, तुम्हारा घर अच्छा न हो और मैं तुम्हें मोनालिसा की एक कीमती तस्वीर उपहारस्वरूप दूँ, तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं तुम्हारे लिए एक अच्छे

मकान की कामना करता हूँ। अब तुम्हारी छोटी-सी झोपड़ी है, यहाँ टूटी है, वहाँ टूटी है, पानी चू रहा है, तो छः लाख की मोनालिसा की तस्वीर कहाँ लगाओगे? पहले मकान तैयार करो, फिर मैं दुबारा आऊँगा। इसी तरह भगवान का दर्शन जो होता है, वह लाक्षणिक होता है। भगवान का अनुभव जीवन में सबको होता है, अब चाहे इसे दिव्य अनुभव कहो या आध्यात्मिक अनुभव या ईश्वर की झलक। लेकिन वह दुबारा नहीं आता।

उसका पता चलता है स्वामीजी?

हाँ, अवश्य। किसी को प्रकाश के रूप में होता है, किसी को गन्ध के रूप में, किसी को एक रूप में आता है, किसी को दूसरे रूप में।

लेकिन हम लोग उपेक्षा कर जाते हैं, नहीं तो सब का जीवन बदल जाता।

उपेक्षा क्या करते हैं, हम अपनी बात कहें। सन् 1963 में हम त्र्यम्बकेश्वर गये। हम पूरी तरह से टूट चुके थे, क्योंकि कहीं भी हमारा काम चालू नहीं हो रहा था। हमारे गुरुजी कहते थे, तुम योग को स्थापित कर सकते हो, पर यहाँ तो कुछ नहीं हो रहा था। लोग पैसा नहीं देते थे, मदद नहीं करते थे। वे आसन-प्राणायाम सीखते थे और केवल यात्रा का खर्चा देते थे। बहुत कठिनाई थी। मैंने त्र्यम्बकेश्वर में अपने इष्ट देवता से प्रार्थना की कि अपने गुरु के आदेश के अनुसार योग को प्रतिष्ठित करने के लिये बीस वर्षों तक मेरी मदद करें। उसके बाद मैंने योग को प्रतिष्ठित किया, उसको एक सम्मानजनक शैक्षणिक दर्जा दिलाया।

प्रार्थना के साथ-साथ मैंने भगवान से वादा किया था कि सफल होने के पश्चात् मैं सब कुछ छोड़ दूँगा। उस प्रार्थना के बाद मुझे बेहद सफलता मिली, परन्तु सफलता मिलने के बाद मैं अपना वचन भूल गया। इसलिये मेरी दुर्घटना हो गयी और मेरे बचने की मात्र तीस प्रतिशत उम्मीद थी। जब मैं व्हील-चेयर पर त्र्यम्बकेश्वर आया और भगवान के सामने अपना सिर झुकाया, त्यों ही मुझे अपना वादा याद आ गया। मैंने मुंगेर छोड़ने का निर्णय लिया और 1983 में अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया। अन्ततः 1988 में मैंने मुंगेर भी छोड़ दिया। अपना वादा भूल जाना कितना आसान है!

– 16 सितम्बर, 1997



अध्याय 8

समाज सेवा के दो पक्ष हैं– एक यह कि तुम दूसरों की भलाई करते हो, दूसरा कि तुम अन्य लोगों के लिए नहीं, बल्कि अपनी शुद्धि के लिए सेवा करते हो। दूसरों के लिए तुम जो भी करते हो, अन्ततः वह भगवान को प्राप्त होने वाला है। तुम उसे भगवान को अर्पित करते हो, इंसान को नहीं। तुम केवल माध्यम हो, प्राप्त करने वाला एकमात्र ईश्वर है। हिन्दू, ईसाई और मुसलमान, सबका यही दर्शन है, सभी यही बात कहते हैं।

सामाजिक उत्तरदायित्व

एक गृहस्थ, जिसे जीवन में केवल पत्नी, बच्चों आदि में रुचि होती है, वह भी सेवा का माध्यम बन सकता है। परन्तु जिसने अपना घर छोड़ दिया और जिसे पत्नी, बच्चों या परिवार से कुछ लेना-देना नहीं है, जीवन में उसकी क्या रुचि होनी चाहिए? यदि उसे खाने की चिन्ता नहीं, साबुन, दंतमंजन या कम्बल की चिन्ता नहीं, कोई भी चिन्ता या आवश्यकता नहीं, तब उसे सभी के लिए एक माध्यम बन जाना चाहिए। यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। लोगों की केवल पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं होती, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी भी होती है। मैं केवल अपनी संस्था के प्रति जिम्मेदार नहीं हूँ, मेरी सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी हैं।

हमें उस सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह या तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ईश्वर का माध्यम बन कर करना चाहिए या फिर दूसरों की भलाई के लिए अपनी सम्पत्ति का उपयोग करके। यह तुम्हारे अपने विश्वास पर निर्भर करता है। जो लोग आध्यात्मिक होते हैं, वे पहले दृष्टिकोण के अनुसार सोचते

हैं और जो आधुनिक लोग हैं, वे सोचते हैं कि ठीक है, मेरी आय का कुछ हिस्सा दूसरों की भलाई के लिए जाएगा। परन्तु यह केवल गृहस्थ लोगों के लिए ठीक है, क्योंकि उनको सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच एक सन्तुलन कायम रखने की आवश्यकता है। एक संन्यासी की कोई पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं होती। उसका कोई यार-दोस्त नहीं होना चाहिए, उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। उसे केवल दूसरों की चिन्ता होनी चाहिए, विशेषकर उनकी जिनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। एक जवान व्यक्ति अपनी देखभाल खुद कर सकता है, लेकिन एक बीमार, बूढ़ा व्यक्ति अपनी देखभाल नहीं कर सकता। ऐसे लोगों से ही सामाजिक जिम्मेदारी शुरू होनी चाहिए।

यह जरूरी है, क्योंकि हम लोगों के ऊपर एक सामाजिक दायित्व है, जिसको प्राचीन भाषा में ऋण कहते थे। देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, भूत ऋण और मनुष्य ऋण, ये जो पाँच ऋण हम पर चढ़े हुए हैं, उनको आधुनिक भाषा में कहते हैं सामाजिक दायित्व और इससे तुम कभी मुक्त नहीं हो सकोगे। हर एक व्यक्ति समाज के प्रति ऋणी है। अगर समाज न हो, तुम सुरक्षित नहीं रह सकते। समाज के प्रति तुमको अपना ऋण चुकाना पड़ेगा। पर क्या करोगे, कैसे करोगे? कोई तो रास्ता होना चाहिए, कोई माध्यम होना चाहिए। महात्मा, महापुरुष, साधु लोग इसके माध्यम होते हैं। परन्तु हम रास्ता भूल गये हैं आजकल। साधु लोग भी रास्ता भूल गये हैं, क्योंकि आप ही लोग तो साधु बनते हैं, ऊपर से तो कोई टपकता है नहीं। साधु माध्यम है आपके सामाजिक दायित्व को पूरा करने के लिए। मैं बैठा हूँ यहाँ। अगर आप दो बैल देना चाहेंगे, तो किसको देंगे? मुझे मालूम है किसको देना है। किसी को साइकिल देनी हो तो किसको देंगे? आपको तो मालूम नहीं है, मगर मुझे मालूम है किस लड़की को साइकिल देनी है। हम जब से यहाँ आए हैं, सब लड़कियाँ पढ़ने लग गयी हैं। लड़कियों में इतना जोश आया है।

चित्त की शुद्धि

सबसे बड़ी गलती हम लोगों के समाज में यह है कि मन्दिर में पाँच सौ लीटर दूध चढ़ाया जाएगा, लेकिन बीमार आदमी को पाँच लीटर दूध कोई नहीं देगा, क्योंकि आदमी सोचता है कि उसे दूध देने से मुझे आशीर्वाद मिलने वाला नहीं। लेकिन शिवजी को पाँच सौ लीटर देंगे तो वे खुश हो जाएँगे,

कम-से-कम हमारा मुकदमा तो खारिज हो जाएगा कोर्ट से। यह उसकी श्रद्धा है! लोगों की श्रद्धा पथभ्रष्ट हो गयी है। श्रद्धा को भी तो मार्गदर्शन दिया जाता है। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्दजी कहा करते थे कि दूसरों की मदद करने का मतलब यह नहीं कि तुम उनको दवा या कपड़ा दे रहे हो। दूसरों की मदद करने का मतलब है कि तुम अपने को साफ कर रहे हो। जब तुम किसी की मदद करते हो, तब घटना कहाँ घटती है? अन्दर में चित्त तो तुम्हारा शुद्ध हो रहा है। और जब तुम्हारा चित्त शुद्ध होगा, जब तुम्हारा आईना साफ होगा, तब तुमको अपनी सूरत दिखाई देगी।

जिसको तुम मन्दिर में, पत्थर में, कागज में पूज रहे हो, वह तो तुम हो। लेकिन तुम अपने को नहीं भूल पाते हो कि तुम एक बुढ़िया हो, एक दुकानदार हो, एक व्यापारी हो, एक उद्योगपति हो या एक कर्मचारी हो। तुम तो अपने आपको भगवान समझ नहीं सकोगे, क्योंकि विश्वास हो गया है कि हम बुढ़िया हैं। इसीलिए तुम शिवजी को पूजते हो, क्योंकि विश्वास हो गया है कि वे भगवान हैं। किन्तु जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाता है, तब एक आईना चमकता है जो कहता है कि उस शिला का देव मिथ्या है, सत्य जो है, वह तुम ही हो।

गीता में, वेदों में, उपनिषदों में, कितने ही ग्रन्थों में, आदि से अन्त तक यही लिखा हुआ है। हमारा धर्म तो यही कहता है। हाँ, हम साकार का खण्डन नहीं करते, क्योंकि वह भी एक रास्ता है। देवी-देवता, आसन-प्राणायाम, ध्यान-त्राटक, आत्म-संयम, जो भी करो, वह एक रास्ता है। रास्ते की हम निन्दा नहीं करते। मगर वह रास्ता है, लक्ष्य नहीं। वह साधन है, साध्य नहीं। जब हम शिवजी, रामजी, गणेशजी या देवीजी की पूजा करते हैं, तब उसे साधन नहीं, साध्य मान कर करते हैं, करना पड़ता है। उसी को लक्ष्य मान कर करते-करते यह होता है। मगर सत्य दिखता तो है नहीं। क्यों नहीं दिखता? स्नेह, प्रेम, दया और भक्ति न होने के कारण। स्नेह जैसे भाई-बहन का होता है, प्रेम जैसे स्त्री-पुरुष के बीच होता है, दया जैसे समर्थ व्यक्ति को दु:खी व्यक्ति के प्रति होती है और भक्ति जो हमको भगवान की शक्ति के प्रति होती है। स्नेह, प्रेम, दया और भक्ति – इन चारों से प्राण कोमल होते हैं। जैसे लोहे को गर्म करते हैं तो तरल हो जाता है, फिर उसे जैसा आकार देना चाहें, दे सकते हैं, वैसे ही इस कठोर हृदय को तरल करने के लिए, कोमल करने के लिए इन चारों की आवश्यकता होती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है – 'स्नेह, प्रेम, करुणा, भक्ति से कोमल करो प्राण।' प्राण का मतलब यहाँ श्वास नहीं है, प्राण का मतलब है पूरा जीवन। अब प्राण तुम्हारे कोमल हैं ही नहीं, जीवन तो कोमल है ही नहीं। तुम्हारे बच्चे, घरवाली या निकट सम्बन्धी को तकलीफ हो, तो तुमको चिन्ता नहीं होती है क्या? पर वही चिन्ता पड़ोस वाले के लिए नहीं होती। हाँ, मालूम पड़ता है तो कहते हो, 'डॉक्टर को बुला दूँ क्या, टेलिफोन कर दूँ क्या?' पैसा भी दे सकते हो, गाड़ी वगैरह भी दे सकते हो, सब कुछ हो सकता है, मगर वह भाव नहीं होता जो तुमको अपने बीबी-बच्चों के लिए आता है।

सब प्राणियों को अपने में देखना, उसको वेदान्त में कहते हैं, आत्मभाव। ईशावास्य उपनिषद् में, कठोपनिषद् में, सभी उपनिषदों में आत्मभाव समझाया गया है। गीता में भी लिखा है –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥6.29॥

योग में युक्त समद्रष्टा व्यक्ति, सब प्राणियों को अपने में और सब प्राणियों में अपने को देखता है। आत्मभाव के लिए यह तरीका है, मगर बहुत मुश्किल है। दूसरों के प्रति हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, वह न मेरी बीबी है, न मेरा बेटा है, न मेरा भाई है, न मेरी जात का है, न मेरे धर्म का है, न मेरे गाँव का है, उससे मेरा कोई मतलब नहीं है, मगर फिर भी उसके दुःख को देखकर कातर हो जाएँ, यह तो भई कोई महापुरुष ही कर सकता है। दिल हिल जाता है उन लोगों का – *संत हृदय नवनीत समाना।* लेकिन हमारा दिल किसके लिए हिलता है? जिसको हम जानते हैं, जिसके साथ हमारा प्रेम का सम्बन्ध होता है या दस-बीस साल की दोस्ती होती है। किसी ने हम पर कोई उपकार किया हो या कभी पैसा दिया हो, तो उसके प्रति चिन्ता होना तो स्वाभाविक है। पर जो तुम्हारा है ही नहीं, उसके प्रति जब यह भावना होती है, तो वह परोपकार है और वही आत्मशुद्धि का साधन भी है।

तुलसी

इष्ट देवी या देवता कोई भी सात्त्विक शक्ति हो सकती है, तामसिक या जादू-टोने वाली शक्ति नहीं। जब हम रिखिया आए, तब हमने तुलसी को इस स्थान की इष्ट देवी बनाने का निर्णय लिया। मैंने यहाँ तुलसी के पौधे

की स्थापना की। वह इस स्थान की अधिष्ठात्री देवी हैं। जैसे स्त्री का पति हो तो वह केवल अपने पति से सम्बन्ध नहीं रखती, बल्कि परिवार के दूसरे पुरुषों से भी सम्बन्ध रखती है, कोई उसका भाई होता है तो कोई भतीजा। वैसे ही तुलसी मेरे लिए देवी माँ है। मेरा गुरु मन्त्र अलग है, जो मेरे गुरु ने मुझे दिया है और पसन्द मैं रामजी को करता हूँ। कहने का मतलब यह कि मैं सभी की पूजा करता हूँ, मुझे कोई समस्या नहीं। मैं बहुत ज्यादा नहीं सोचता हूँ, मेरे पास ज्यादा बुद्धि भी नहीं है। तुलसी यहाँ की देवी माँ है, क्योंकि सीधी-सी बात है कि मैं स्वस्थ रहना चाहता हूँ।

अपने जीवन में मैं कभी बीमार नहीं हुआ, मुझे कभी सर्दी, खाँसी या बुखार नहीं हुआ। मैंने कभी कोई दवाई नहीं ली, जबकि मैं सभी दवाइयों के बारे में जानता हूँ। यहाँ मैं एक दिन के लिए भी अपनी साधना को छोड़ना नहीं चाहता हूँ। अगर मुझे सर्दी-खाँसी होगी, तो मैं अपनी साधना नहीं कर पाऊँगा और मेरा अनुष्ठान भंग हो जाएगा। मैं पिछले सात वर्षों से यहाँ हूँ, पर एक भी दिन मेरा अनुष्ठान भंग नहीं हुआ है, क्योंकि तुलसी स्वास्थ्य की प्रतीक है। वह सभी ओषधियों की माँ है। मैं उनसे केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे स्वस्थ रखें। अगर मैं मर भी जाऊँ, तो मुझे परवाह नहीं है, लेकिन हमेशा बीमार रहना, डॉक्टर को बुलाना, दवाई लेते रहना, संन्यासी के लिये यह ठीक नहीं है। यह उसकी शान के खिलाफ है। मरने का हमें जरा भी डर नहीं है, मरना तो है ही एक दिन सबको, उससे कोई बच नहीं सकता। मरण निश्चित है, मगर बीमारी निश्चित नहीं है। हमको बीमार होना ही है, यह कोई अनिवार्य नहीं है।

अब सवाल यह उठता है कि तुम भले ही एक बार खाना खाओ, सात्त्विक भोजन करो, समय पर उठो-नहाओ, तो भी बीमार पड़ते हो। हमने ऐसे-ऐसे सात्त्विक लोगों को देखा है जो न केवल बीमार पड़े, बल्कि कैंसर से मरे। भले ही वे मिर्च नहीं खाते, आचार नहीं खाते, कॉफी-चाय नहीं पीते, फिर भी बीमार पड़ते हैं, जिन्दगीभर दवाई खाते हैं। तो हमने सोचा, तुम्हारे सात्त्विक जीवन से तब तक कोई फर्क नहीं पड़ेगा, जब तक तुमको आशीर्वाद नहीं मिलेगा। केवल सात्त्विक जीवन से तुम स्वस्थ रहोगे, इसकी कोई गारण्टी नहीं। इसलिए इस स्थान को जब हमने बनाया, तो तुलसी को यहाँ की इष्ट देवी बना कर प्रतिष्ठित किया और नियम से उनका पूजन शुरू किया।

अब तुलसी प्रभावशाली है या नहीं, यह भी जानना पड़ता है। यह तो हमारी श्रद्धा पर निर्भर है। तुलसी के साथ शालीग्राम होना आवश्यक है और शालीग्राम हमारे पास था नहीं। हमने कहा, ठीक है, तुलसीजी को ले आयेंगे, शालीग्राम अपने आप आ जायेंगे। और हमारे यहाँ शालीग्रामों का बण्डल आ गया! किसी अपरिचित ने नेपाल से भेज दिया, पूरा झोला भर कर रखा है। तब समझ गये कि तुलसीजी का जो हमारा संकल्प था, वह ठीक था।

हमारे सामने एक ही समस्या थी कि एक भी दिन अनुष्ठान टूटना नहीं चाहिए। अनुष्ठान का नियम है कि इतनी देर तक प्रतिदिन हम इतना जप करेंगे। हमने पाँच वर्षों का संकल्प लिया था। और साधना क्या थी? सामने अग्नि, पीछे अग्नि, दायें अग्नि, बायें अग्नि और ऊपर सूर्य! परम्परा में इसे पंचाग्नि साधना कहते हैं। यह साधना मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति तक, साल में छ: महीने की जाती है। और यह अनुष्ठान हर परमहंस को करना पड़ता है, क्योंकि हम लोग तो पढ़े-लिखे हैं, संस्था में रहे हैं, समाज में रहे हैं, देश-विदेश में गये हैं, पैसा देखा है, जमीन देखी है, सम्पत्ति देखी है, अधिकार देखे हैं, तो कुछ कर्म बने न? कर्म का प्रायश्चित पंचाग्नि है। वह पुरानी जीवनशैली ही खत्म कर देनी होगी। राजा-महाराजाओं के साथ, महारानियों के साथ जो रहे हैं, पाँच सितारा होटलों में जो रहे हैं, सब तोड़ना पड़ता है, उसके लिए पंचाग्नि है।

अब यह पंचाग्नि ऐसी है कि 14 जनवरी को तो अच्छी लगती है, क्योंकि ठण्ढ रहती है। मगर जब वैशाख का महीना आता है, तब तापमान 45, 50, 60, एक दिन तो 90 डिग्री तक पहुँच गया! यहाँ भी आग, वहाँ भी आग, ऊपर से सूर्य भगवान थे। उसमें निर्जलन की सम्भावना रहती है और निर्जलन हुआ तो आप जानते ही हैं क्या हो सकता है। मगर हमको कुछ नहीं हुआ। वैसे तो भगवान की मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा है, फिर भी मुझे लगता है मेरे माता-पिता का अनुवांशिक ढाँचा बड़ा अच्छा रहा है। मैं उनका बहुत ही अच्छा अनुवांशिक उत्पाद हूँ। मैं कभी बीमार नहीं पड़ा। मैंने बीमारी पर किताबें बहुत लिखी हैं, सब दवाइयों के बारे में जानता हूँ, मगर मुझे बीमारी का अनुभव नहीं है। पहले अगर बीमार पड़ता भी, तो कोई फर्क नहीं पड़ता, दस दिन सो जाता, डॉक्टर आता, दवाई वगैरह खा लेता, ठीक-ठाक हो जाता। लेकिन यहाँ साधना के दौरान बीमार नहीं हो सकता था।

इसलिए हमने तुलसी देवी का वरण किया। गणेशजी का भी कर सकते थे, चण्डी का, शिवजी का, किसी भी देवी-देवता का कर सकते थे। मगर हमारे लिए सबसे जरूरी है, एक दिन भी खाँसी, सर्दी, सरदर्द कुछ न हो और इस पैंसठ-सत्तर साल की अवस्था में कितनी मुश्किल होती है। जीवनभर जिस आदमी ने पाँच सितारा जीवन बिताया हो, उसको तो और भी दिक्कत होनी चाहिए। मेरा कमरा वातानुकूलित था, ऑटोमेटिक तापमान नियंत्रित होता था। मुझे गर्मी बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होती, 25 डिग्री के ऊपर गर्मी सहन नहीं होती थी। लेकिन पंचाग्नि में मुझे कुछ भी नहीं हुआ, न निर्जलन, न बुखार, न अतिसार, बहुत ही अच्छी नींद आती थी। भगवान की कृपा से मेरे पास सीमेन्ट का एक चबूतरा था, जिस पर खुले में मैं सोता था। मुझे उत्तम स्वास्थ्य चाहिए था और तुलसी परम स्वास्थ्य की प्रतीक है। सब ओषधियों की रानी तुलसी है। सवेरे सूर्य उदय होने के पहले और संध्या को सूर्य अस्त होने के पहले तुलसी का पूजन कर लिया और शंख ध्वनि कर लेता था।

शंख ध्वनि



शंख ध्वनि पर अनुसंधान हुआ है। शंख की ध्वनि बहुत बड़े क्षेत्र में रोग के कीटाणुओं का नाश करती है। मैं इसे सत्य मानता हूँ। कोई भी चीज केवल गैस या डी.डी.टी. से नहीं मरती, आवाज से भी मर सकती है। शंख से जो आवाज निकलती है या आपके, हमारे मुँह से जो आवाज निकलती है, वह शब्द तरंग है। शब्द तरंग में एक विद्युत क्रिया होती है। आपके अन्दर जो विचार उत्पन्न होते हैं, अच्छे या बुरे, वे भी विद्युत क्रियाएँ हैं। यह तो मापा गया है। हम लोग इसे ई.ई.जी. में मापते

हैं। हमारे दिमाग में चार प्रकार की तरंगें मिलती हैं, अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा। ये चार प्रकार की विद्युत-धाराएँ हैं। जब भी ध्वनि पैदा की जाती है, चाहे शंख से की जाए, तुतरी से की जाए या मन्त्र जप से, उस ध्वनि से विद्युत क्रियाएँ होती हैं। ये विद्युत क्रियाएँ आस-पास के वातावरण को कीटाणुरहित कर सकती हैं। दस साल पहले यह बहुत बड़ी खोज हुई है। हम तो तीन बार सुबह, तीन बार शाम को शंख बजा देते हैं और तुलसी पर जल चढ़ा देते हैं। साल में तीन बार उनका कलेवर बदल देते हैं और एक बार विवाह कर देते हैं, जो अभी आने वाला है।

कलेवर कब-कब बदलते हैं?

एक तो अभी बदला है, जब बरसात शुरू हुई। एक दिसम्बर के बाद बदलेंगे। फिर जब विवाह होता है, उसके थोड़े दिन पहले। अब कार्तिक पूर्णिमा के आस-पास दीपावली के पहले बदल देंगे। उसके नियम हैं, पंचांग में लिखा रहता है, उस मुताबिक करते हैं। इसमें कोई अन्ध-विश्वास की बात नहीं है। कई धर्मों के लोग तो इन चीजों को बड़ा अटपटा मानते हैं। मगर हम अटपटा नहीं मानते, क्योंकि इसको हम वैज्ञानिक ढंग से समझते हैं। मेरी श्रद्धा का आधार मेरी वैज्ञानिक सोच और समझ है। इसलिए मैं अन्ध-विश्वास की तरह नहीं करता हूँ। मूर्त्ति पूजा को भी मैं अन्ध-विश्वास की तरह नहीं करता हूँ। मैंने इसके कारण को समझा है और उसका अनुभव भी किया है। इसलिए यह बात कहता हूँ।

हर एक घर में तुलसी होनी चाहिए। तुलसी तो हमारे धर्म का मुख्य तत्त्व है। जैसे ब्राह्मण की मुख्य पहचान चुटिया और जनेऊ है, वैसे ही हमारे धर्म की पहचान है तुलसी और गाय। भगवान का आशीर्वाद मिले तो काम सफल हो, यह विश्वास अपने मन में रखना चाहिए। इससे अहंकार नहीं होता। मैं कभी बीमार नहीं होता, यह कहना अहंकार है। मैंने भगवती से प्रार्थना की, मुझे पाँच साल तक बीमार न करना, इसके बाद मुझे ले भी जाओगे तो चलेगा। इसका मतलब हमने सारा काम भगवान के ऊपर छोड़ दिया, सिर से बोझ हटा दिया। स्वामी निरंजन हमारे लिए बहुत चिन्तित रहता था। वह रोज हमें पचास-साठ नारियल भेजता था। मुंगेर में बहुत होता है, वह सब ट्रक भर कर भेजता था। अगर मुंगेर में नहीं होता था, तो वह कलकत्ता से मंगा लेता था। रोज हम तीन-तीन गिलास डाब का पानी पीते थे, मकर संक्रान्ति से कर्क

संक्रान्ति तक। फिर कर्क संक्रान्ति से मकर संक्रान्ति तक दूसरा अनुष्ठान था, एक करोड़ आठ लाख जप प्रतिवर्ष। एक करोड़ आठ लाख मन्त्र जप का मतलब होता है तीन सौ दिन, दस घण्टे के हिसाब से। दस घण्टे माने पूरा दिन ही समझ लो और मौन। इसलिए तुम लोगों से कहता था कि मत आओ। बहुत लोगों को बुरा लगता था, मगर यह सब साधना के लिए जरूरी था।

ईश्वर का आशीष

जीवन में किसी भी कार्य को सम्पन्न करना हो, किसी भी बड़े काम को साधना हो, तो ईश्वर की सहायता लेना, भगवान का आशीर्वाद प्राप्त करना। चाहे गणेशजी के रूप में, तुलसीजी के रूप में, या किसी भी रूप में, लेकिन उनका आशीर्वाद लेना मैं पुरुषार्थ से अधिक उत्तम समझता हूँ। उसमें काम बहुत कम करना पड़ता है, आधा काम तो वही कर लेते हैं! तब हमें क्या करना है, थोड़ा-सा अपना हाथ चला लेते हैं, बस, हो गया। पिछले साल जब एक महीने तक राम-नाम-आराधना का कार्यक्रम चल रहा था, तब किसी से पता चला कि एक बहुत बड़ा तूफान बंगाल की खाड़ी से आ रहा है। मैंने शाम को बी.बी.सी. लगाया, बी.बी.सी. ने भी यही कहा कि यह शताब्दी का सबसे बड़ा तूफान है और उत्तर की तरफ बढ़ रहा है। मैंने सोचा कि राम-नाम-आराधना का कार्यक्रम तो चौपट हो जाएगा। इतनी जोरदार बारिश होगी, दुनियाभर से इतने लोग आए हैं, कहाँ रहेंगे, कहाँ खायेंगे। अंत में सोचा, छोड़ो।

इसी बीच हम पंचांग देख रहे थे और पंचांग में पढ़ा कि फलानी तारीख को विवाह पंचमी है, सीताजी का विवाह है। उसने हमें उपाय दे दिया, मेरे को मेरी मिसाइल मिल गयी! मैंने कहा, अब की बार सीताजी का विवाह करेंगे। हमने कह दिया कि दहेज में इतनी साड़ियाँ, इतनी चूड़ियाँ, इतना सोना-चाँदी जाएगा, और सबको खबर कर दी। अब सीताजी का विवाह है, तो रामजी की भी जरूरत है। बिना रामजी के सीताजी का विवाह होगा नहीं। जिस दिन पंचांग देख रहे थे उसी दिन रामजी आ गये। कोई जयपुर से ले आया। हमने कहा, अकेले रामजी अच्छे नहीं लगते, उनका विवाह करेंगे। जिस दिन हमने संकल्प लिया, उसी रात को तूफान उत्तर के बदले पूर्व की ओर जाने लगा! फिर दक्षिण की ओर मुड़ गया। हमने बी.बी.सी. में देखा, तूफान कभी उत्तर जाता, कभी पश्चिम तो कभी पूर्व। मतलब रास्ता ही

गड़बड़ा गया, उसको पता ही नहीं कहाँ जाएँ, मानो सारा स्टेयरिंग चौपट हो गया! आखिर में वह मद्रास के पास जाकर टूटा और यहाँ सीताजी का विवाह हो गया, बहुत अच्छी तरह से शादी हुई। कहने का मतलब यह कि भगवान की शक्ति सब विघ्न-बाधाओं को दूर करती है, अगर तुम्हारी श्रद्धा सात्त्विक है तो।

सीता-राम विवाह

प्रत्येक वर्ष हम सीताजी का विवाह करते हैं। इस वर्ष यह चार दिसम्बर को होगा और सभी जगहों से हजारों लोग आएँगे। उस दिन हम दहेज देते हैं, क्योंकि भारत में जब लड़की का विवाह होता है, तब दहेज देना आवश्यक है। मेरी बेटी अच्छी मोटी-ताजी है। उसे बहुत सारी बेहतरीन साड़ियाँ, धन, सोने-चाँदी के गहने, हीरे-जवाहरात, सब मिलेंगे। गाँव के लोगों की इसमें बहुत रुचि है। उस वक्त पुण्यानन्दजी और निखिलात्मानन्दजी जैसे महात्माओं का प्रवचन भी हो जाएगा। नहीं तो गाँव के लोगों को महात्माओं का प्रवचन सुनने का मौका मिलता नहीं है। इनके पास न तो कोई साधन है, न ही कोई व्यवस्था। गरीब लोग हैं, शहर जा नहीं सकते, तो क्या करेंगे बेचारे। दिन में नौकरी करके शाम को घर आ जाते हैं। गाँव के लोगों को यह मौका नहीं मिल पाता। यहाँ नौटंकी आ जाती है, मगर साधु लोग नहीं आ पाते। मगर पिछले कुछ सालों से यह अवसर प्राप्त हो रहा है। अब यहाँ लोग रामचरितमानस भी पढ़ लेते हैं, हनुमान चालीसा भी पढ़ लेते हैं। स्कूल के बच्चे भी रामचरितमानस पढ़ लेते हैं।

यहाँ जो कार्यक्रम होगा, वह यहाँ के स्तर के मुताबिक होगा। हर जगह का एक स्तर होता है। कहीं पर बौद्धिक लोग होते हैं तो कहीं पर भावुक। बहुत से लोग तो कहानियाँ पसन्द करते हैं। यहाँ के लोग रामजी के दर्शन, विचारों या रहन-सहन के तरीकों को सुनना पसन्द नहीं करते। रामजी मर्यादा पुरुषोत्तम थे, यह सब उनकी समझ में नहीं आता है। यहाँ रामकथा का महत्त्व है। शिवजी ने पार्वतीजी से कहा था– *सकल लोक जग पावनी गंगा, पूछेहूँ रघुपति कथा प्रसंगा।* कथा प्रसंगा, यही यहाँ के लोगों को पसन्द है, पार्वती जी की भी इसी में रुचि थी। जो यह कथा कहे, उसको ही हम यहाँ बुलाते हैं, बाकी लोगों को नहीं। उसमें गाँव के लोग बहुत बड़ी संख्या में आते हैं, सड़कें वगैरह सब भर जाती हैं।

पिछले साल यहाँ सरदारजी लोग पहुँचे थे, अपने पूरे दल-बल के साथ। गुरु ग्रन्थ साहिब लाए, उसे तीन दिन मंच पर आसीन रखा गया। अखण्ड पाठ हुआ, चँवर डुलाते थे, तीन लोग शबद कीर्तन करते थे। अन्त में कढ़ा-प्रसाद वितरित करते थे, जिसे वे लोग खुद बनाते थे। घी, आटा, बरतन, सब अपने साथ लाए थे और हजारों व्यक्तियों को दिया, हाथों-हाथ। कोई अव्यवस्था नहीं। जितनी देर प्रसाद बँटता था, सब शान्ति से बैठे रहते थे। गाँव के लोगों को अच्छा संस्कार मिला। गरीब लोग हैं, मजदूर, किसान, बढ़ई, मोची, चमार, जो भी हैं, आखिर उनको भी कथा सुनने का मौका मिलना चाहिए। पुरुषोत्तम जलोटा भी आए थे। उन्हें यहाँ आकर बहुत खुशी हुई।

जैसा हमने पहले कहा, इस विवाह उत्सव का एक और महत्त्व है, इसमें हम दहेज देते हैं सीताजी को। दहेज में नव वधू को जितनी चीजों की जरूरत पड़ती है, वह सब चढ़ता है। मिठाई-बताशा नहीं, चढ़ता वही है, जो एक नव वधू को दिया जाता है। उसका बण्डल बना कर रखते हैं। इस क्षेत्र में जो भी वधू द्विरागमन में जाती है, उसको दिया जाता है। यह नियम है। उसको एक सुहाग पेटी दी जाती है और उस पेटी की कीमत कम-से-कम पचास-साठ हजार रुपये होती है। गहना, कपड़ा, लड़के के लिए सूट, घड़ी इत्यादि सोलह श्रृंगार का जितना सामान होता है, वह सब देते हैं। हम तो सोलह नहीं, सत्रह श्रृंगार देते हैं। वह है सेनेटरी टॉवल, जो गाँव की औरतों के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। गन्दा कपड़ा उपयोग करती हैं, बच्चा पैदा होता है, और उसी से बीमारी पैदा होती है। आखिर मेरी माँ है, बेटी है, स्वस्थ रहेगी उससे। यह हम पहले भी करते थे, लेकिन अभी सीताजी के विवाह से जोड़ दिया है। जो भी सीताजी को चढ़ेगा, उस पर इन लोगों का अधिकार है। वह यहाँ का कन्याधन है। जो भी इस गाँव और आस-पास के गाँव की कन्या होती है, उसे देते हैं। मदद के लिए जो बन पाता है, दे दिया जाता है। केवल यही नहीं, पति अगर ग्वाला है, तो गाय भी दे देंगे उसको। अच्छा किसान है, तो दो बैल भी दे देंगे। यदि वह दवाइयाँ बाँटता है, कम्पाउण्डर टाइप का है, तो एक स्कूटर भी दे देंगे। अगर वह लड़की शादी के बाद भी पढ़ेगी तो साइकिल दे देंगे। हम जब से यहाँ आए हैं, सब लड़कियाँ पढ़ने लग गयी हैं। लड़कियों में इतना जोश आया है।

हम चौबीस घण्टे कहते हैं, माता तो प्रथम गुरु है, इसलिए माँ का पिता से ज्यादा जानकार होना, समझदार होना और अनुभवी होना बहुत जरूरी

है। पर जब मेरा गुरु ही पढ़ा-लिखा नहीं है, बेवकूफ, गधा और जाहिल है, तब मैं पढ़ा-लिखा कैसे हो सकता हूँ? कम-से-कम सात साल तक तो माँ का असर सन्तान पर पड़ता ही है और इन सात सालों में बच्चा क्या सीखता है माँ से? उसे कुछ मालूम हो तो सीखे। उसके सिर में तो केवल जूँ है, बेटा-बेटी वही सीखते हैं। इसलिए माँ का विदूषी होना, पढ़ा-लिखा होना बहुत जरूरी है। वह नौकरी करे, यह कोई जरूरी नहीं है। लेकिन उसको रामायण पढ़नी चाहिए, नियम से पूजा-पाठ करना चाहिए।

पूजा सात्त्विक देवी-देवताओं की करनी चाहिए, तामसिक देवताओं की नहीं। भूत-प्रेत, पिशाच, मन्त्र-तन्त्र, कुछ नहीं। यह तो ऐसे हुआ कि किसी गुण्डे को अपने घर में रक्षा के लिए बुलाओ और कल वह तुम्हीं पर हमला कर दे। रामजी, शिवजी, गणेशजी, दत्तात्रेय, तुलसी, पीपल, गंगा, यमुना, हिमालय, रामायण या श्रीमद्भागवत को पूजो, ये सात्त्विक देवता हैं। कोई जादू की देवी है, कोई घर को जलानेवाली देवी है, कोई बेटे को बीमार करने वाली देवी है, कोई देवी मारने वाली है, यह सब होता है न गाँव में। नहीं, यह सब नहीं करना, क्योंकि यह सब तुम्हारे ऊपर पड़ेगा। सबसे बड़ी चीज तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारा भाव, तुम्हारा रिश्ता है, जो सात्त्विक होना चाहिए।

– 17 सितम्बर, 1997





अध्याय 9

शिवलिंग

शिवलिंग कहीं पर भी, कितनी भी संख्या में हो सकते हैं, लेकिन ज्योतिर्लिंगों में केवल बारह की पहचान की गई है। शिवलिंग केवल भारत में ही नहीं होते। प्राचीन काल में, रोमन सभ्यता से भी पहले शिवलिंग की पूजा होती थी। हमने संग्रहालयों में प्राचीन शिवलिंग देखे हैं। इनमें स्फटिक के शिवलिंग भी थे, जो बहुत पुरानी चट्टानों से निकलते हैं। केवल हिन्दुओं ने इस परम्परा को अविच्छिन्न बनाये रखा है।

ज्योतिर्लिंग और सामान्य शिवलिंग में अन्तर यह है कि जब कोई लिंग किसी स्थान पर प्रकट होता है और उसे वहाँ से हटाया नहीं जाता बल्कि वहीं शिवालय या मन्दिर बना दिया जाता है, तब उसे ज्योतिर्लिंग या स्वयंभूलिंग कहते हैं। लेकिन जब एक स्थान से लाकर दूसरे स्थान पर लिंग स्थापित किया जाता है, तब वह शिवलिंग कहलाता है। शिवलिंग मध्य भारत की नर्मदा नदी में या फिर गोमती नदी में पाये जाते हैं। ये दो स्थान हैं जहाँ के पत्थर शिवलिंग के आकार के होते हैं।

भगवान शिव की पूजा बहुत ही प्राचीन है। वास्तव में इतिहास में बहुत लम्बे अरसे तक कई जनजातियों ने शिव को स्वीकार नहीं किया था। आखिर श्मशान भूमि उनका निवास-स्थान है। पहली पत्नी के देहावसान पर उन्होंने दूसरी शादी कर ली। वे गाँजा और हशीश का नशा करते हैं, शरीर पर जले हुए शव की भस्म लगाते हैं, साँप और बिच्छुओं को आभूषण की तरह धारण करते हैं, और बहुत क्रोध करते हैं। प्राय: वे दुष्ट लोगों की रक्षा करते हैं। रावण जैसे अनेक राक्षसों को वरदान उन्होंने ही दिये थे न! दूसरों के लिए

कितनी समस्याएँ खड़ी हो गयी थीं! इसीलिए दीर्घ काल तक शिवजी को बहुत लोगों ने स्वीकार नहीं किया।

वैष्णव लोग शैवों को अपने मन्दिरों में नहीं आने देते थे। लगभग आठ सौ साल पहले दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध तिरुपति मन्दिर में स्वामी शिवानन्द के एक पूर्वज, अप्पय दीक्षितार को प्रवेश नहीं करने दिया गया क्योंकि वे शैव थे। परन्तु बाद में परिस्थितियाँ बदल गईं। भगवान शिव के उपासक बड़े ही खुले दिल के होते हैं। शिवजी के मन्दिर में तुम राम, कृष्ण, देवी, किसी को भी रख सकते हो। शिवजी को अपने भक्त के व्यक्तिगत जीवन से, उसके रीति-रिवाजों और विचार-मान्यताओं से कोई मतलब नहीं। वे कहते हैं, 'मुझे तुम जो कुछ भी दोगे, उसे हजारगुना वापस दूँगा।' शिवजी के उपासक के लिए शाकाहारी होना, पुण्यात्मा होना, उच्च जाति का होना, धनी होना, शुद्ध-पवित्र होना आवश्यक नहीं। वह किसी भी जाति का हो सकता है, एक वेश्या, चोर या व्याध भी हो सकता है, कोई फर्क नहीं पड़ता। उसमें केवल श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए।

पुराणों में एक कहानी आती है। एक शिकारी जंगल में शिकार के लिए गया, लेकिन सूर्यास्त तक उसके हाथ कोई शिकार नहीं लगा। रात हो चुकी थी, इसलिए वह घर नहीं लौट सका। जंगल में शेर-चीते का खतरा था, इसलिए रात बिताने के लिए वह शिकारी एक वृक्ष पर चढ़ गया। लेकिन उसे यह भय सता रहा था कि अगर नींद आ गई तो वह पेड़ से नीचे गिर जाएगा। नींद से बचने के लिए वह एक-एक करके पेड़ के पत्ते तोड़ने लगा और नीचे गिराने लगा। सूर्योदय से पहले भगवान शिव ने उसके सामने प्रकट होकर कहा, 'क्या इच्छा है तुम्हारी?' शिकारी बोला, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं तो केवल नींद भगाने की कोशिश कर रहा था।' भगवान शिव ने कहा, 'पर अब मैं आ गया हूँ तो तुम्हें कुछ माँगना होगा।'

उस मूर्ख शिकारी को भक्ति, मोक्ष, धन-सम्पत्ति, गाड़ी-बंगला वगैरह कुछ नहीं चाहिए था। उसने कहा, 'मुझे एक हिरन दे दीजिये, नहीं तो मैं अपने बच्चों को क्या खिलाऊँगा?' और भगवान शिव ने कहा, 'तथास्तु।' जब वह शिकारी नीचे आया तो उसने देखा कि वहाँ एक काले रंग का लिंगाकार पत्थर था और जिस पेड़ पर वह बैठा था, वह बेल का वृक्ष था। वह रात भर बेल-पत्र तोड़कर शिवलिंग पर चढ़ा रहा था! लोग कहते हैं कि भगवान शिव पर एक बेल-पत्र चढ़ाना भी पर्याप्त है। उन्हें प्रसन्न करना बहुत

आसान है। लेकिन किसी वैष्णव देवता को प्रसन्न करने में बहुत झंझट है। तुम्हें शाकाहारी होना पड़ेगा, नहा-धोकर पूजा-पाठ करना होगा, लहसुन-प्याज से परहेज करना होगा, शुद्धता का ख्याल रखना पड़ेगा, बहुत सारी चीजों का ध्यान रखना होगा।

श्रद्धा और विश्वास ही भगवान को पाने का एकमात्र मार्ग है। मन्दिर या गिरजाघर में होने वाला पूजा-पाठ अपनी जगह ठीक है, लेकिन अगर तुममें केवल श्रद्धा है तो वही पर्याप्त है। तब तुम्हें भगवान की बाहरी पूजा-अर्चना करने की आवश्यकता नहीं।

बैद्यनाथ धाम के शिवलिंग का अनोखा इतिहास है। रावण इसे अपनी राजधानी में स्थापित करने के लिए कैलाश से लेकर आया था। लेकिन शर्त यह थी कि इस शिवलिंग को जमीन पर नहीं उतारना है, हाथ पर ही रखना है। यहाँ से गुजरते हुए रावण को पेशाब लगी। एक ब्राह्मण-बालक को शिवलिंग पकड़ाकर वह पेशाब करने लगा। और करता ही रहा। वह ब्राह्मण कुमार शिवलिंग पकड़े-पकड़े थक गया और अंत में उसने वह लिंग जमीन पर रख दिया, जहाँ से फिर वह हिला नहीं। यही इस शिवलिंग की कहानी है।

सांख्य दर्शन

घर छोड़ने के बाद भगवान बुद्ध गंगा किनारे आये थे, जहाँ उनकी मुलाकात अपने गुरु से हुई थी। वे सांख्य योगी थे। उनसे बुद्ध ने सांख्य योग सीखा। लेकिन बुद्ध अपने अध्ययन से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सोचा, 'ज्ञान और अनुभव में अन्तर है। ज्ञान का मतलब है किसी चीज को जानना, लेकिन उस चीज को वास्तविक रूप से अनुभव करना कहीं अधिक महत्त्व रखता है।' बुद्ध तत्त्व-ज्ञान को मात्र जानना ही नहीं, अनुभव करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने तपस्या का मार्ग चुना। और अन्ततः बोधगया में उन्हें साक्षात्कार हुआ।

सांख्य मूलतः नास्तिक दर्शन है। इसमें ईश्वर का कहीं उल्लेख नहीं। सांख्य दर्शन के प्रणेता देवहुति के पुत्र, कपिल मुनि थे। सांख्य दर्शन में द्वैतवाद का प्रतिपादन हुआ है। अद्वैत दर्शन में एक तत्त्व होता है, सांख्य दर्शन में दो – अद्वैतवाद और द्वैतवाद में यही अन्तर होता है। राम-सीता, शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण – ये सारे युगल जो आज तुम देखते हो, इनका आधार द्वैतवाद है, जो सांख्य दर्शन से मिलता-जुलता है। सांख्य दर्शन में अन्तर केवल इतना है कि इसमें ईश्वर को नहीं माना गया है। शैव और



वैष्णव, दोनों सम्प्रदायों में भगवद्-भक्ति का जो दृष्टिकोण और दर्शन है, वह सांख्य दर्शन से प्रभावित है। सांख्य के मुख्य तत्त्व प्रकृति और पुरुष हैं। ये दोनों अनादि हैं और इन्हीं दोनों के कारण सृष्टि चलती है। गीता के तेरहवें अध्याय में कहा भी गया है –

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥13.19॥

पुरुष निर्दोष है, निर्विकार है– *निर्दोषं हि समं ब्रह्म*– जबकि प्रकृति के आठ चरण हैं– पंचतत्त्व, अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी, तथा मन, बुद्धि और अहंकार। यही अष्टधा प्रकृति है जिसके बारे में श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥7.4॥

आगे श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं– *अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्*– इस अपरा प्रकृति के ऊपर मेरी परा प्रकृति है। अपरा प्रकृति का तात्पर्य सूरज, चाँद, तारे आदि से है जबकि परा प्रकृति अनुभवातीत है। परा प्रकृति की यह अवधारणा सांख्य दर्शन में नहीं है।

जो चीज आँख से दिखती है, जिसका नाक या कान से पता चलता है, वह परोक्ष है। जिस चीज का मन से पता चलता है, वह भी परोक्ष है। इन्द्रिय-जनित ज्ञान परोक्ष ज्ञान होता है। इन्द्रियों के बिना जो दिखायी दे, वही अपरोक्ष ज्ञान है। उसी को दर्शन कहते हैं। ज्ञान एक चीज है। किताब पढ़ लिये, सब समझ में आ गया। लेकिन अनुभव दूसरी चीज है। हमने तुम्हें रसगुल्ले पर किताब दे दी। तुमने किताब में पढ़ लिया कि रसगुल्ला बहुत अच्छा होता है, मीठा होता है, छेना से बनता है। मगर जब तक तुम रसगुल्ला खाओगे नहीं, तुम्हें उसके स्वाद का अनुभव होगा कैसे? कबीरदास जी कहते हैं– *तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखन देखी।* ज्ञान और अनुभव में यही अंतर है।

सांख्य को समझने के लिए सबसे अच्छी पुस्तक है रामचरितमानस। इसमे श्रीराम परम पुरुष के, सीता महामाया की और रावण दस इन्द्रियों के प्रतीक हैं। हर इन्द्रिय के नकारात्मक और सकारात्मक पक्ष होते हैं। देखा जाए तो सबसे बड़ा आंतकवादी इन्द्रियों का समूह ही है। इनके आतंक से हम सब परेशान हैं। रावण इन्हीं आतंकवादी इन्द्रियों का प्रतीक है।

वास्तव में सारा संसार तत्त्वतः एक ही है। राधा कृष्ण है और कृष्ण राधा। गोपियाँ इन्द्रियाँ हैं और रासलीला सृष्टि का नृत्य है। जो सांख्य दर्शन की गूढ़ता और सुन्दरता देखना चाहते हैं, उन्हें श्रीमद्‌भागवत और रामायण जरूर पढ़ने चाहिए।

– 18 सितम्बर, 1997



अध्याय 10

जितने भी महत्त्वपूर्ण मन्दिर हैं, वे दुर्गम स्थानों में क्यों बनाए गए? ऐसे स्थानों में क्यों नहीं बनाए गए जहाँ सुविधा से सब जा सकें?

आखिर जब भगवान हमारी पहुँच से दूर हैं, तो उनके मन्दिर भी हमारी पहुँच से दूर होने चाहिए, नहीं क्या! हिन्दुस्तान में मन्दिरों को ऐसे स्थानों पर बनाने के पीछे एक कारण यह है कि कोई भी मन्दिर केवल पैसे से नहीं बनता। तुम्हारे पास पाँच-दस लाख रुपये हैं, जमीन भी है, इसलिए सोचा कि चलो मन्दिर बना दें। नहीं, मन्दिर ऐसे नहीं बनता। जहाँ मन्दिर बनते हैं, वहाँ कोई चुम्बकीय शक्ति होनी चाहिए, कोई ईश्वरीय शक्ति होनी चाहिए। मूर्ति में जो पत्थर होता है, वह भगवान नहीं होता। मूर्ति के अन्दर कोई शक्ति होती है। जो भी मूर्ति हो, शिवजी, काली माँ या गणेशजी की, उसके अन्दर एक शक्ति होती है। अगर शक्ति है, तो मन्दिर बनाओ। यह मन्दिर बनाने का पहला नियम है।

इस पृथ्वी पर बहुत-सी जगहें ऐसी हैं, जहाँ पर किसी कारण से शक्ति है। हो सकता है किसी जमाने में किसी महात्मा की समाधि रही हो या हो सकता है कभी किसी ने कोई तपस्या की हो या जब भगवान ने अवतार लिया, उस स्थान पर कुछ किया हो। कोई कारण होता है जिस वजह से किसी भूमि में दूसरी भूमि की अपेक्षा कुछ अधिक शक्ति होती है। जैसे इन्सान-इन्सान में फर्क मालूम पड़ता है, कोई बहुत बुद्धिमान् होता है तो कोई बहुत बुद्धू होता है, वैसे ही कोई भूमि साधारण होती है और कोई भूमि विशेष। ऐसे स्थानों पर मन्दिर बनाए जाते हैं। किसी को उसका अनुभव होता है और उसको आदेश दिया जाता है कि मन्दिर बनाओ। मुख्यत: तो यह कारण है। एक

बात और है, कोई महात्मा रहा, कुछ पूजा करता था, वह मर गया। अब जिस देवी-देवता की वह पूजा करता था, वहाँ उनका मन्दिर बन गया। यह एक और कारण है। तो ये मन्दिर बनाने के कारण हुए। उसके बाद होता है ठाकुरबाड़ी। वह कोई भी बना सकता है। उसके लिए कुछ जरूरी नहीं, बस अपने घर में छोटा-सा मन्दिर बना दिया, रोज पूजा-पाठ कर लिया।

मन्दिर एक विशेष स्थान होता है, पर वह व्यक्तिगत नहीं होता। हमारे ही धर्म में नहीं, बल्कि ईसाइयों के चर्च और मुसलमानों के मस्जिद की भी परिभाषा है कि वह व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक स्थान है। उनके यहाँ भी कई गिरजाघर और मस्जिदें ऐसी हैं, जो किसी सन्त या फकीर के रहने के स्थान पर बनी हैं, जैसे दिल्ली में निजामुद्दीन औलिया की है। बिहार शरीफ में ऐसी कई जगहें हैं जहाँ महात्मा रहे, वहाँ मस्जिद बन गई, लोग नमाज अदा करने लगे। अपने यहाँ जो प्रमुख मन्दिर और आध्यात्मिक केन्द्र हैं, मुख्यत: वे शक्ति के केन्द्र हैं। देवीजी के चौंसठ केन्द्र हुए, शिवजी के बारह केन्द्र। इसके अलावा वैष्णव सम्प्रदाय के अपने स्थान हुए, जैसे द्वारिकाधीश, जहाँ मीराबाई ज्योति में समा गई थी या जहाँ चैतन्य महाप्रभु ज्योति में समा गए। इसलिए मन्दिर एक तो पूजा की जगह है, दूसरा शक्ति को अनुभव करने की जगह भी।

अब सवाल यह कि ये सब मन्दिर दुर्गम स्थानों में क्यों हैं। लेकिन गौर करो तो कठिनाई कहाँ है? ऋषिकेश से सुबह चलो तो शाम को यमुनोत्री पहुँच जाते हो। आधे दिन का तो सफर है। कहाँ कठिनाई है? आधा दिन तो तुमको यहाँ से कलकत्ता जाने में लग जाता है। और अगर कहते हो कि यह आज की बात है, पुराने जमाने में बात दूसरी थी, तो उस जमाने में यहाँ से कलकत्ता जाना भी उतना ही दुष्कर था। वहाँ पहाड़ चढ़ना पड़ता था तो यहाँ गंगाजी को नाव से पार कर जाना पड़ता था। कठिनाई तो सभी के लिए थी। कलकत्ता वालों के लिए बिहार जाना और बिहार वालों के लिए कलकत्ता जाना उतना ही कठिन था, जितना ऋषिकेश वालों के लिए यमुनोत्री जाना। चाहे रामेश्वरम् जाओ, गंगोत्री जाओ, कलकत्ता जाओ, कठिनाई तो सब जगह थी। और आज सुविधा भी वैसी है। ऋषिकेश से सुबह चार बजे टैक्सी पकड़ो, शाम को छ: बजे यमुनोत्री पहुँचो, या गणेश चट्टी में रुक जाओ, दूसरे दिन सुबह यमुनोत्री जाओ, दर्शन करके लौटो, और शाम तक ऋषिकेश पहुँच जाओ। दो दिन में यमुनोत्री की यात्रा। ये चारों

धाम पाँच दिन में किए जा सकते हैं फटाफट। तब कैसे कह सकते हैं यह कठिन है।

उस जमाने में कठिनाई तो सब जगह थी, केवल यमुनोत्री में नहीं। मध्यप्रदेश के लोग सोमनाथ जाते थे। मीराबाई कहाँ चित्तौड़ से मथुरा-वृन्दावन गई। कितना दूर, कितना कठिन, कितने दिन लगे होंगे उसको, रास्ते में क्या खाया होगा, क्या पिया होगा, कहाँ सोई होगी। पाँच सौ साल पहले की बात है। एक जवान लड़की, राजपरिवार की कुलवधू कैसे पहुँची होगी? कुछ तो कठिनाई हुई होगी न? चित्तौड़ से जरा दूरी नाप के देखो न। चित्तौड़ से वृन्दावन आने के लिए कौन-सा रास्ता है, कितना लम्बा है, कितने दिन लगे होंगे? रेगिस्तान का रास्ता है, ऊँट पर चढ़ कर आना पड़ता है, पैदल चलना पड़ता है, चढ़ाई पर रुकना पड़ता है। कई प्रकार के लोग मिलते हैं। उसके बाद वृन्दावन छोड़ कर द्वारिका आई, वह तो और भी दूर है। चित्तौड़ से वृन्दावन, फिर वहाँ से द्वारिका, तब बोली– *'गुंजनवन छाड़ी रे, कहाँ जाऊँ घनश्याम।'* क्या परिस्थिति हुई कि उसे वृन्दावन छोड़ना पड़ा? इतिहास तो कहता ही नहीं है। इतिहास तो केवल अच्छी-अच्छी, मीठी-मीठी बातें कहता है मीरा के बारे में। मीरा की क्या परिस्थिति थी राजमहल में, क्या परिस्थिति थी वृन्दावन में? *गुंजनवन छाड़ी रे, कहाँ जाऊँ घनश्याम*–एक थकी हुई, निराश नारी कह रही है कि हे घनश्याम! कहाँ जाऊँ?

यही नहीं, मीराबाई जब सौराष्ट्र में गई, तब उसने सौराष्ट्र की भाषा में भजन गाया। गुजरात में गुजराती भाषा में भजन गाती थी। मीराबाई कई भाषाएँ जानती थी। इतिहास में यह सब थोड़े न आता है। मैं जानता हूँ, वह हिन्दी, ब्रज, अवधी, पंजाबी, गुजराती, सब जानती थी। मारवाड़ी तो जानती ही थी, उस तरफ की सभी भाषाएँ भी जानती थी। उसने सभी भाषाओं में भजन लिखे हैं–

चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दर्शन पासूं।
वृन्दावन की कुंज गलिन में तेरी लीला गासूं, मोहे चाकर राखोजी॥

कठिनाई तो उसको भी आयी। चैतन्य महाप्रभु को कितनी कठिनाई आयी, उनके समय में किसी भी तीर्थ तक पहुँचने के लिए कितनी कठिनाई थी। जो आदमी कठिनाई न चाहे, वह कहीं जा ही नहीं सकता। सफलता का

मार्ग पहाड़ चढ़ने जैसा होता है, सफलता जेब में नहीं रहती है। संघर्ष तो सबको करना पड़ता है।

केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि जो तीर्थ हैं, ये एक समय बहुत प्रसिद्ध थे। वहाँ राजा-महाराजा, साधु-महात्मा, बहुत लोग रहा करते थे। कुमाऊँ और गढ़वाल, केवल ये दोनों उत्तराखण्ड में आते हैं, क्योंकि यहाँ के लोगों का कलेजा दूसरा है और आज भी जितने लोग साधना के लिए, संन्यास के लिए जाते हैं, सब उत्तराखण्ड ही जाते हैं। संन्यास के लिए यहाँ से कोई दक्षिण भारत जाता है क्या? गुजरात या मध्यप्रदेश जाता है क्या? जब भी तुमको संन्यास लेना होगा, क्या सोचोगे? हरिद्वार या ऋषिकेश। जब कभी तीर्थ करने की इच्छा होगी, तुम वहीं जाओगे, क्योंकि गंगाजी जो हैं वहाँ।

गंगा भारत की सुषुम्ना नाड़ी है। ऋषि-मुनियों ने जितने पुराण लिखे, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र या अन्य ग्रन्थ लिखे, सब गंगा के किनारे बैठकर लिखे। शंकराचार्य ने तो साफ लिखा है – *भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहम्* – हे देवी, हे माता, तेरे किनारे बैठ कर, तेरा पानी पीकर, मैं आशीर्वाद लेता हूँ। गंगा में वह शक्ति है कि बुद्धि अच्छी हो जाती है, ब्रह्मसूत्र के विचार, भगवान राम के विचार मन में उत्पन्न होने लगते हैं। वह तो पवित्र भूमि है। वहाँ के राजा लोग साधु-महात्माओं को आश्रय देते थे। आश्रय देने का मतलब यह थोड़े न कि उनकी कन्याओं का शादी-ब्याह करते थे। दिन में दस बजे चार रोटी दे दो, बस काफी है। जब हम गंगोत्री जाते थे, खप्पर लेकर जाते थे। किसी के भी दरवाजे पर चले गये, घरवाले दो रोटी और सब्जी दे देते थे, कहीं बैठकर खा लेते थे। बहुत सुन्दर स्थान था वह। यह नहीं कहना चाहिए कि वह दुर्गम स्थान है। कोई चीज दुर्गम नहीं है।

हिमालय एक समय में हरा-भरा और सम्पन्न तो था ही, वह जनसंकुलित राज्य भी था। उसके राजा कौन थे? पार्वती के पिता। पार्वती के पिता का नाम हिमालय था। उनका पिता कोई पहाड़ नहीं था। पहले के जमाने में ऐसे ही होता था, जितने भी देश और सरोवर होते थे, उनका एक-एक प्रभारी होता था, जैसे आजकल सिंचाई वगैरह विभागों के प्रभारी होते हैं। अब अगर कहीं वर्णन आता है कि मध्यप्रदेश से एक सरोवर आया, गुजरात से तीन सरोवर आये और मद्रास से तीन पहाड़ आये तो ये सब पहाड़ या सरोवर नहीं, असल में उनके राजा आये। रामजी ने समुद्र को बुलाया। कौन था समुद्र? आखिर कोई आदमी था जो उस समय समुद्र पर राज करता था। जब उसने



आने से मना किया तो रामजी ने उसपर गुस्सा किया। तब जाकर वह आया। उसका मतलब यह थोड़े ही है कि पानी के अन्दर से कोई आदमी निकला। थोड़े अच्छे ढंग से सोचो।

पार्वती जी वहीं हिमालय पहाड़ पर पैदा हुई थीं। हमारे यहाँ कुमाऊँ में एक स्थान है, जहाँ पार्वती जी जन्मी थीं। उनके जन्मस्थान को कहते हैं गौरा गाँव। इसलिए हम लोग कहते हैं कि पार्वती जी कुमाऊँ की थीं। कनखल, जो हरिद्वार के बगल में है, वहीं राजा दक्ष ने यज्ञ किया था, जहाँ सतीजी ने अपने को योगाग्नि में भस्म किया था। तो यह तो बहुत जनसंकुलित भूमि रही है। आजकल गाँवों के लोग नौकरी के लिए धीरे-धीरे उतरने लगे हैं, बरेली

वगैरह शहरों में जाने लगे हैं। बहुत लोग नीचे आने लगे तो गाँवों में केवल बूढ़े रह गये। वह तो सब जगह होता है। जब जनता बदलती है तब सारे का सारा सामाजिक तंत्र बदलता है।

इतने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, जिन्होंने इतने बड़े-बड़े शास्त्र लिखे, आखिर उनका कोई पालने वाला तो रहा होगा न। और यह तो पक्की बात है कि जितने बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे गए हैं, उन पर जो टीकाएँ और भाष्य लिखे गए हैं, वे सब हिमालय में लिखे गए। व्यासदेव जी ने बद्रीनाथ में अपनी कृतियों की रचना की। बद्रीनाथ से थोड़ा आगे सरस्वती के ऊपर शंकराचार्य जी की गुफा है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के गुरुकुल कहाँ थे? हिमालय में। ऋषिकेश से सोलह किलोमीटर आगे गंगा किनारे वशिष्ठ गुफा है, वहाँ वशिष्ठ जी रहते थे। शत्रुघ्न जी मुनि की रेती में रहते थे, शिवानन्द आश्रम के बगल में। भरत जी ऋषिकेश में रहते थे, जहाँ आज शहर है। लक्ष्मण जी रहते थे नदी के उस पार, लक्ष्मण झूले के उस पार। ये सभी राजकुमार अलग-अलग जगहों पर रहते थे। उनकी समुचित व्यवस्था थी, वे पढ़ने के लिए जाते थे। उस जमाने में वहाँ बड़े-बड़े गुरुकुल थे। यह आज की बात तो है नहीं। त्रेतायुग की, कई हजार साल पहले की बात है। यह कहना कि उस वक्त का मकान आज क्यों नहीं है, यह तर्कसंगत नहीं है।

वशिष्ठ गुफा में हम एक रात रहे हैं। हम वहाँ अनुभव के लिए नहीं गए थे, केवल देखने के लिए गए थे। रात को वहाँ शेर आता है, बाघ आता है। बाहर आग लगाई, वहीं गंगाजी में स्नान कर लिया। वहीं वशिष्ठजी रहते थे। स्वामी रामतीर्थ उसके आगे ब्रह्मपुरी की गुफा में रहते थे। बिल्कुल गंगा किनारे गुफा है वहाँ। पहले उनका नाम तीर्थराम था, संन्यास के बाद रामतीर्थ हो गया। संन्यास तो गृहस्थी का उल्टा है ही। वे दूसरी तरह के व्यक्ति थे, वेदान्ती थे, लेकिन बहुत भावुक और संवेदनशील। वे सीधे-सादे थे, चतुर नहीं थे।

जो चीज जितनी नजदीक होती है, उसका मूल्य उतना कम होता है। जो चीज दूर होती है, उसका मूल्य बढ़ जाता है। अगर बद्रीनाथ बगल में होता तो हम उसके बारे में सोचते तक नहीं। बहुत दूर है, इसलिए बात कर रहे हैं। *अति परिचयादवज्ञा* – जो चीज अपने पास रहती है, उसका मूल्य कम रहता है, इसलिए दूर रहे तो अच्छा है।

– 19 सितम्बर, 1997



अध्याय 11

जब तुम दूसरों की भलाई करते हो, तब वास्तव में तुम अपनी ही भलाई करते हो। अगर मैं तुमको गाली देता हूँ, तो इसका मतलब मैं अपने को ही गाली देता हूँ। अगर मैं तुमसे घृणा करता हूँ, तो अपने आप से घृणा करता हूँ। अगर मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तो अपने आप से प्रेम करता हूँ। अगर मैं तुम्हारी मदद करता हूँ, तो अपनी ही मदद करता हूँ। ईसाई, हिन्दू तथा अन्य सभी धर्मों और आधुनिक मनोविज्ञान में भी यही सिद्धान्त है। जो तुम दूसरों के लिए करते हो, वह वास्तव में स्वयं के लिए करते हो।

जब तुम गाँवों में सेवा कार्य करते हो, तब यह मत सोचना कि तुम कोई सामाजिक सेवा कर रहे हो। तुमको सोचना चाहिए कि तुम आध्यात्मिक साधना कर रहे हो। यही सचाई है। और जब तुम ऐसे सेवा कार्यों के दौरान विभिन्न लोगों के सम्पर्क में आओगे, तब तुम दूसरी संस्कृतियों के हजारों वर्षों के इतिहास को जान और समझ पाओगे।

इतिहास के सच्चे प्रतिनिधि

आधुनिक लोग पुरातन इतिहास के सच्चे प्रतिनिधि नहीं रहे। पर गाँव-देहात के लोग, जो आज की सभ्यता से अछूते हैं, मानव सभ्यता की विकास-यात्रा के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। इन्हीं लोगों ने मानवता के आनुवांशिक ढाँचे और मत-मान्यताओं का सम्पूर्ण इतिहास सुरक्षित रखा है। ये लोग किसी न किसी उच्च, अदृश्य शक्ति पर अवश्य विश्वास करते हैं, भले ही ये जप, योग या अन्य कोई आध्यात्मिक साधना नहीं करते। ये लोग सवेरे उठते हैं, घर के जरूरी काम करते हैं, जैसे गौशाला की सफाई, गाय दुहना, बर्त्तन

माँजना, बच्चे को नहलाना, और उसके बाद मजदूर, बढ़ई, मेहतर वगैरह का काम करने के लिए बाहर निकल जाते हैं। शाम को वापस आते हैं, खाना खाते हैं और सो जाते हैं। ये कोई आध्यात्मिक साधना नहीं जानते। परन्तु कभी-कभार जब इनके पर्व-त्योहार होते हैं, तब ये दिनभर पूजा-पाठ करते और आनन्द मनाते हैं, काम पर बिल्कुल नहीं जाते।

ये लोग कम सन्तान रखने में विश्वास नहीं रखते। अधिक बच्चे होने से औरतें खुश होती हैं। परिवार को उन औरतों पर गर्व होता है, जिनके ज्यादा बच्चे होते हैं। बच्चों की जब शादी होती है, तब परिवार के लिए यह सबसे बड़ी खुशी की बात होती है। जब उनको पता चलता है कि कोई औरत गर्भवती है, तब वे उत्सव मनाते हैं। और किसी के मरने पर दस-पन्द्रह दिन और एक साल बाद भी कुछ-न-कुछ श्राद्ध कर्म करते हैं। भारत में श्राद्ध के पन्द्रह दिनों में सभी लोग दिवंगत आत्माओं के लिए श्राद्ध, पूजा वगैरह करते हैं। माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी, जो लोग किसी लड़ाई में मर गए, जो लापता हैं, सभी के लिए करते हैं। सभी परिवारों में यह होता है, कोई इसे बदल नहीं सकता है। जो लोग अमेरिका, यूरोप चले गये हैं, वहीं शिक्षा हुई, वहीं नौकरी कर रहे हैं, वहीं बस गये, वे लोग भी इसमें भाग लेते हैं।

बचपन का जीवन

जीवन की दौड़-भाग में मेरा पदार्पण आठ साल की उम्र में हुआ। मेरे पिताजी पुलिस की नौकरी में थे और माँ गाँधीजी के आन्दोलन में व्यस्त रहती थी। मैं ही घर में सबसे बड़ा था, और हमारी जमीन-जायदाद कोई कम नहीं थी। पन्द्रह सौ एकड़ खेती की भूमि थी और हजार एकड़ जंगल की जमीन थी। हमारी जमीन में से दो नदियाँ बहती थीं, वह भी हमको देखना पड़ता था। यह जमीन हमारे पूर्वजों को ईनाम में मिली थी। हमारे पूर्वज तो लड़ने वाले लोग थे, लड़ाई में जाते थे, मर जाते थे, तब इस तरह की जमीन ईनाम में मिल जाती थी। इस ईनाम वाली जमीन को बेचना मना है। यह हस्तान्तरित नहीं हो सकती, बँट नहीं सकती। वह जमीन अभी भी मेरे नाम की होगी, जब तक कचहरी में यह न बोला जाए कि यह मर गया है। जब हम मर जायेंगे तब दूसरे भाई को उसका अधिकार मिलेगा। वह नहीं तो उसके बड़े बेटे को मिलेगा।

घर में कोई कुछ करता नहीं था। तब आठ साल की उम्र में हमने काम शुरू किया। शनिवार को स्कूल की छुट्टी होती थी, हम गाँव चले जाते थे। वहाँ हमारी नानी आ गई थी। वह थी तो अगूँठाछाप, मगर जमीन-जायदाद के बारे में बहुत समझती और हमको समझाती थी। खेती थी, पचास-साठ बैल थे, पचीस-तीस गायें थीं, घोड़े थे, ढाई सौ भेड़ें थीं, जो जंगलों में ही रहती थीं। फिर हमारे जंगलों में चीड़ के पेड़ों से गोंद निकालने का ठेका रहता था। देखना पड़ता था कि ठीक पेड़ से ठेका ले रहा है या नहीं। बदमाश लोग तो हर जगह होते हैं। दो नम्बर तरीके से पेड़ कट तो नहीं रहे, सब देखना पड़ता था। हम राइफल चढ़ा लेते थे, बूट पहन लेते थे और यहाँ-वहाँ सबसे काम कराते जाते थे। चाहे मकान बनाना हो या खेती का काम हो या कोई और काम हो। तभी से हमने राज करना सीखा।

प्रथम विश्व यात्रा

आश्रम बनाने का हमको कभी सपना तक नहीं आया। न ही कभी एक पल के लिए भी विदेश जाने का ख्याल आया। सब अपने आप होता गया। बम्बई में हमारा एक बड़ा कार्यक्रम था, जिसका वहाँ के राज्यपाल ने उद्घाटन किया। वहाँ टाटा कम्पनी के एक वरिष्ठ अधिकारी भी थे, वे चाहते थे कि मैं द्वारिका के निकट बनी टाटा की नयी फर्टीलाइज़र फैक्ट्री का उद्घाटन करूँ। उन्होंने मेरे लिए टाटा के निजी विमान का प्रबन्ध भी कर दिया था।

हम हवाई जहाज में पायलट की बगल वाली सीट पर बैठे थे। वैसे हमने युवावस्था में लखनऊ के फ्लाईंग क्लब से हवाई जहाज चलाना सीखा था। पूरा कोर्स नहीं किया था, जवानी के जोश में दो-तीन महीने ही सीखा था। थोड़ी देर बाद बगल में बैठे पायलट से मैंने उसका नाम पूछा। उस नाम को मैं फ्लाईंग क्लब से ही जानता था। मैंने अपने पूर्वाश्रम का नाम बताते हुए पूछा, 'क्या तुम इस नाम के व्यक्ति को जानते थे?' उसने कहा, 'हाँ।' मैंने कहा, 'मैं वही हूँ!' तब उसने कहा, 'फिर आप ही स्टेयरिंग सम्भालिए!' मैंने कहा, 'नहीं, मैं सब भूल गया हूँ।' लेकिन उसने स्टेयरिंग छोड़ दिया और कहा कि अब आप ही इसे सम्भालिए।

जैसे ही मैंने स्टेयरिंग पर हाथ रखा, अचानक ही मुझे भविष्य की एक स्पष्ट झलक दिखाई दी। मेरा पश्चिम के लिए उड़ान भरना, वहाँ अनेक लोगों से मिलना, जगह-जगह व्याख्यान देना, सारा का सारा दृश्य

मेरी आँखों के सामने से गुजर गया! और उसी समय मैंने विदेश जाने का निर्णय ले लिया।

मैं उसी दिन बम्बई लौटा और अपने एक परिचित व्यक्ति से पासपोर्ट बनाने के लिए कहा। उसने चौबीस घण्टे में पासपोर्ट बनवा दिया और फिर जल्द ही हवाई जहाज के दो वर्ल्ड टिकट भी बनवा दिये। मेरे साथ मेरी सचिव भी थी। पन्द्रह दिनों में हमने भारत से प्रस्थान किया! इसे भगवत्कृपा नहीं तो और क्या कहोगे? हमने तो कोई पुरुषार्थ ही नहीं किया। पन्द्रह दिनों के अन्दर हम सिंगापुर में थे, उसके बाद ऑस्ट्रेलिया, फिलीपीन्स, जापान, अमरीका, यूरोप, सब जगह गए, और दस महीनों में लौट आए।

पहली विदेश यात्रा पर जब हम निकले तो हमारी सचिव को कुछ पता नहीं था, वीसा क्या होता है, कहाँ जाते हैं, कैसे जाते हैं। हम दोनों अनाड़ी के अनाड़ी गए थे। हमने कभी विदेश जाने का सोचा होता, तब न जानकारी होती। उस समय बहुत तरह के प्रतिबन्ध भी थे, जैसे यहाँ से विदेशी मुद्रा नहीं ले जा सकते थे। मगर वीसा के नियम कम थे। ऑस्ट्रेलिया बिना वीसा के जा सकते थे और जर्मनी में तो पासपोर्ट भी दिखाने की जरूरत नहीं होती थी। उस वक्त पाश्चात्य देशों पर विदेशी प्रवासियों का इतना ज्यादा दबाव नहीं था। अब बढ़ गया है। मुसलमान देशों में भी ज्यादा प्रतिबन्ध नहीं था। रूस जैसे समाजवादी और साम्यवादी देशों में ज्यादा प्रतिबन्ध थे।

बहुत-से लोग जो हिन्दुस्तान से बाहर के देशों में जाते हैं, वहाँ से लौटकर आना नहीं चाहते, क्योंकि वे समझते हैं कि वहाँ सुविधा बहुत है। मगर हमारे दिमाग में कभी इस तरह का विचार नहीं आया। हम हिन्दुस्तान से बाहर जब भी गए, कभी घर जैसा नहीं लगा। हमने कभी नहीं सोचा कि बाहर रहेंगे और वहीं बस जाएँगे। हमको कई लोग बोलते भी थे, पर हम केवल हँस देते थे। पश्चिम की जीवनशैली हमको जँचती नहीं, क्योंकि हमको अपने ढंग से रहना पसन्द है। वहाँ अपने ढंग से नहीं रह सकते, वहाँ उनके ढंग से रहना, खाना और बोलना पड़ेगा। यहाँ हम अपने ढंग से रह सकते हैं।

ईश्वर की इच्छा

मैंने अपने जीवन में जो कुछ किया और पाया है, उसके बारे में कभी सोचा नहीं था। मैंने घर-बार सिर्फ एक उद्देश्य के लिए छोड़ा था। एक तांत्रिक

योगिनी से मेरी भेंट हुई थी, उसने मेरे को शक्तिपात का अनुभव कराया था, मैं उन्हीं अनुभवों को दुबारा पाना चाहता था। मैं कर्मयोग करने नहीं आया था, किताबें लिखना, उनको टाइप करना, यह सब कभी मेरे दिमाग में था ही नहीं। मैं तो बस कहीं पर बैठकर साधना करना चाहता था, किसी ऐसे गुरु से सीखकर जो मुझे सब कुछ दिखला दे। लेकिन अब मैं जान गया हूँ कि यह सम्भव नहीं है। आध्यात्मिक मार्ग इतना सरल नहीं।

आदमी को जो मिलने का होता है, वह उसके सोचे बिना मिलता है। जो उसके भाग्य में होगा, वह उसको मिलेगा ही, चाहे वह कुछ करे या न करे। लोग बहुत ज्यादा हाथ-पैर तो मारते ही हैं, चिन्ता और फिक्र भी बहुत करते हैं। बहुत परेशान हो जाते हैं। जितना बड़ा तुम्हारा पात्र होगा, उतना ही पानी भरेगा न, उससे ज्यादा भरने वाला तो है नहीं।

हम बाहर के देशों में जो गए, हमको भगवान द्वारा भेजा गया, हम अपनी इच्छा से नहीं गए। हमारे मन में कभी पैसा कमाने की इच्छा नहीं रही। हर एक का अपना स्वभाव होता है। हमारा पैसा कमाने का स्वभाव नहीं रहा। हमको एकदम विश्वास है कि अगर हमें पैसा चाहिए, तो आ जाएगा। कभी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि हमारे पास अगर पैसा नहीं रहेगा, तो क्या करेंगे। जब गंगादर्शन की योजना तैयार हुई, तब हमने कहा पैसा आएगा, चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। गुरुजी ने आश्रम से निकलते समय जो एक सौ आठ रुपये दिये थे, वे अभी भी रखे हैं। हम केवल उस एक सौ आठ के अन्त में शून्य जोड़ते गए!

धन दो, विद्या दो या कुछ और दो, हमको ऐसी चीजों के लिए भगवान की पूजा नहीं करनी है। भगवान से क्यों याचना करना? हमने भगवान से केवल एक बार प्रार्थना की थी, और उन्होंने हमारी याचना पूरी भी की। उस समय हम बहुत हताश हो गये थे, नहीं तो भगवान से प्रार्थना क्यों करना? वे तो सब जानते हैं। उनको हमारी तकलीफ मालूम है, वे तो सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ से क्या प्रार्थना करना? प्रार्थना उसके सामने करनी चाहिए जो सर्वज्ञ नहीं है। हो सकता है भगवान ही हमारे अन्दर बैठ कर सोच रहे हों, वही बोल भी रहे हों, बड़ा मुश्किल है कहना।

हालाँकि मेरे मन में कभी पैसे का विचार नहीं आया, लेकिन फिर भी मेरे हाथ में पैसा रहा है। जब हमने घर छोड़ा, हमें लगान वगैरह का अपना अधिकार-पत्र पिता को देना था। उसके साथ पोस्ट ऑफिस की पासबुक

पकड़ायी, जिसमें दस हजार रुपये जमा थे! उन्होंने उसको देखकर कहा, 'कहीं लूटपाट की है क्या?' हमने कहा, 'लूटपाट नहीं, काम किया है।' उस समय के दस हजार रुपये आज के कई लाख रुपये हो जाते हैं। एक रुपये में सात सेर चीनी मिलती थी और अब दस रुपये में एक किलो मिलती है।

जब ऋषिकेश गये, वहाँ भी यही हाल था। उस समय रोज तीन हजार रुपये की कमाई होती थी। सन् 1944-45 की बात कह रहा हूँ। ऋषिकेश में लोग बहुत जलते थे। मेरी जन्म-कुण्डली जिन पण्डितजी ने बनायी थी, उन्होंने कहा था कि यह कंगाल, कुल का नाश करने वाला और लोफर होगा। तीनों बातें सच हुईं, लेकिन उनको मालूम नहीं था कि लोहे को जब पारस छूता है, तब वह सोना हो जाता है।

गुरु की संगत, गुरु का स्पर्श होने से आदमी की तकदीर वही रहती है, लेकिन मतलब बदल जाता है। कंगाल तो आज भी हैं, कहीं बैंक में खाता खुला नहीं, कभी किसी चेक पर दस्तखत किया नहीं, कभी पैसा हाथ में गिना नहीं, कंगाल ही तो हुए न? कुल का नाश भी किया है। जब शादी ही नहीं की, तो बच्चे कहाँ से होंगे? और लोफर भी रहे, कभी ऋषिकेश, तो कभी कहीं और, किसी एक जगह तो रहे नहीं। यहाँ से भी कहीं चला जाऊँ, कुछ कह नहीं सकते। आखिर छोड़ने में क्या रखा है? जोड़ने में तकलीफ होती है, परिश्रम करना पड़ता है, बहुत पसीना बहाना पड़ता है। लेकिन छोड़ने में कुछ नहीं करना पड़ता, केवल निश्चय करना और छोड़ना है। लंगोटी पकड़ो और बाहर निकलो। लेकिन लोगों को वही मुश्किल लगता है, जोड़ने में मजा जो आता है।

अब हम बातचीत कर लेते हैं, लेकिन आध्यात्मिक मार्गदर्शन किसी को नहीं देते, क्योंकि परमहंस साधना के नियम होते हैं। किन्तु इतना तुमको बतला देते हैं कि किसी भी मनुष्य के जीवन में जो उछलकूद है, चाहे वह भोग या सम्पत्ति अर्जन के लिए हो अथवा योग, ज्ञान या मोक्ष के लिए, केवल अपने अधैर्य और बेसब्री के कारण है, क्योंकि जो कुछ हो रहा है, वह अपने आप हो रहा है। हमारे जीवन का यही अनुभव है। इसलिए यदि भगवान, साधना, मोक्ष या और कुछ भी चाहिए, तो प्रयत्न कितना भी करो, मगर चिन्ता, परेशानी और उछलकूद छोड़ दो, क्योंकि आध्यात्मिक जीवन में ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता, चाहे लाख उपाय करो। कहते हैं कि आदमी कितने भी उपाय करे, पर बिना राम-कृपा के राम-कृपा प्राप्त नहीं होती।



आध्यात्मिक मार्ग का एक ही रहस्य मुझे मिला है कि सब उछलकूद छोड़कर भगवान से जो मिला है उससे खुश रहो। सवेरे उठो, कुछ भगवान का ध्यान, भजन और सत्संग करो, मनुष्य जीवन में करना ही पड़ता है। लेकिन जो चीज तुम आध्यात्मिक मार्ग में चाहते हो, वह किसी पुरुषार्थ से नहीं मिलेगी। चाहे वह तीर्थ पुरुषार्थ हो, योग पुरुषार्थ हो या प्राणायाम पुरुषार्थ हो। किसी भी तरह की मेहनत करने से वह चीज नहीं मिलेगी। वह चीज केवल उनकी इच्छा से ही मिलेगी। उनका मन करेगा तो तुमको मिल जाएगी। उनका मन नहीं करेगा, तो नहीं मिलेगी। उस पर किसी का वश नहीं है, किसी का हक नहीं है। कोई जानता भी नहीं कि ईश्वर की कृपा क्या होती है। अगर वह चाहेगा तो दर्शन, अनुभव और आध्यात्मिक जीवन दे देगा। नहीं तो हाथ-पैर मारते रहो, कुछ होने का नहीं है।

यदि कोई बीमारी हो जाती है तो उसके के लिए योग करना, या कुछ और उपाय करना, क्या उसमें ईश्वर की इच्छा नहीं है?

वह सब अपनी जगह पर ठीक है। भौतिक चीजों के लिए पुरुषार्थ जरूरी है। बीमारी, दुःख, मानसिक कष्ट, संतान, विवाह, ये सब भौतिक चीजें हैं। पर आध्यात्मिक चीज क्या है? भगवान की कृपा प्राप्त करना, भगवद् शक्ति का

अनुभव करना या भगवान का दर्शन प्राप्त करना। इसका नियम दूसरा है, योग से बाकी सब चीजें मिलती हैं।

हम लोग कैसे जानें कि यह भगवान की ही कृपा है?

यह पूछने की चीज नहीं है, जब होती है तब पता लग जाता है। किसी आदमी को यह नहीं बताना पड़ता कि नीम कड़वा होता है। तुमको कड़वेपन का ज्ञान कैसे हुआ, मीठेपन का ज्ञान कैसे हुआ, मिर्ची चरपरी होती है, यह ज्ञान कैसे हुआ? अपने आप तुरन्त पता चल जाता है।

उसी तरह ईश्वर की इच्छा स्पष्ट होती है और यदि मन में संशय हो कि क्या पता यह ईश्वर की इच्छा है या मेरी, तो समझना कि यह अपनी इच्छा है, ईश्वर की नहीं।

कभी-कभी ऐसा क्यों होता है कि घर में हम किसी से बहुत प्रेम करते हैं, लेकिन किसी घटना के कारण राग-प्रेम कम हो जाता है?

राग और द्वेष एक सिक्के के दो पहलू हैं। जो राग करता है, वह द्वेष भी करता है। माँ और बच्चे के बीच, पति-पत्नी के बीच राग और द्वेष का सम्बन्ध होता है। जो कमजोर मन वाले हैं, उनके लिए यह सम्बन्ध तो निश्चित है।

अगर तुम किसी व्यक्ति से प्रेम करते हो और बाद में राग कम हो जाता है, तो इसमें आखिर हर्ज क्या है? राग का कम होना तो अच्छा है। मुक्ति तो हुई। प्रेम तो फँसाने वाला जाल है। जैसे मछली फँसती है न, वैसे ही प्रेम वह कांटा है जो फँसाता है। यह प्रेम कुछ देर के लिए कम हो जाय तो समझो अच्छा है। कम-से-कम थोड़ी देर तो मुक्त रहा आदमी। प्रेम का अभाव मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के लिए अच्छा है, इसलिए बहुत-से लोग कहते भी हैं कि प्रेम बंधन है। अब किसी को इसके बिना रहने की आदत ही नहीं तो बात दूसरी है।

संघर्ष से प्रगति

जो लोग महत्त्वाकांक्षी नहीं होते, जिनके अरमान नहीं होते कि कुछ करना है, वे लोग संघर्ष भी नहीं करते। उन्हें बस दो रोटी मिल जाए, खाकर सो गये। बहुत-से लोग बदमाश भी होते हैं, उनको जरूरत हो या न हो, फिर भी दूसरे का मकान लूट लेते हैं, दुकान लूट लेते हैं, उनकी आदत होती है।

इस तरह के लोग दुनिया में देखने को बहुत मिलते हैं, वे एक देश से दूसरे देश आये हैं। जहाँ तक सभ्यता का सवाल है, जहाँ-जहाँ गर्मी रही, पानी के लिए नदियाँ रहीं, वहाँ जीवन बहुत सरल रहा। कोई दिक्कत नहीं, संघर्ष नहीं। मगर जहाँ पानी नहीं, जहाँ बहुत गर्मी या ठण्ढी है, वहाँ के लोगों को संघर्ष करना पड़ा है। यूरोप के लोगों को संघर्ष करना पड़ता है, नहीं तो एक ही रात में निमोनिया हो जाएगा, इतनी ठण्ढ होती है वहाँ!

ग्रीनलैण्ड में जो ऊपर का इलाका है, वहाँ मकान बनाने के लिए पत्थर की जरूरत नहीं पड़ती। बर्फ को ही काट-काटकर उसके खम्भे बनाते हैं और उन पर बड़े-बड़े मकान बनाते हैं, जो कभी गलते ही नहीं। बर्फ इतनी मजबूत होती है मानो चट्टान का मकान हो। वहाँ बहुत बड़ी-बड़ी सील मछलियाँ होती हैं, उनको मारकर छत पर डाल देते हैं। वह सड़ती ही नहीं है, मानो फ्रिज में पड़ी हो। जब जितनी आवश्यकता होती है, काट कर ले आते हैं, आग जलती रहती है, उस पर भूनते जाते हैं, खाते जाते हैं और शराब पीते जाते हैं। वहाँ कपड़े भी बहुत पहनने पड़ते हैं। स्नान क्या चीज है, यह उनको मालूम नहीं। वहाँ आदमी रोज नहाएगा तो मर जाएगा, इतनी ठण्ढ है।

ठण्ढे देश में नहाने के लिए गर्म पानी चाहिए, और न केवल नहाने के लिए, बल्कि उसके बाद भी गर्मी चाहिए, नहीं तो निमोनिया पकड़ लेगा। नहाने का रिवाज पहले यूरोप में भी नहीं था। तिब्बत के लोग साल में एक बार नहाते हैं। मैं सामान्य लोगों की बात कर रहा हूँ, जिनके पास बड़ा मकान है, हीटर है, उनकी बात नहीं कहता हूँ। गाँव में जो सामान्य लोग रहते हैं, वे कपड़े नहीं बदलते। हमको तो अपना बचपन याद है, वही कपड़ा पहनकर सोते थे, सुबह वही कपड़ा पहनकर स्कूल जाते थे, उसी कपड़े में खेलने भी जाते थे। जाड़ा खत्म होने पर, बसन्त पंचमी के बाद, सब कपड़े साफ करके धूप में सुखाकर रख देते थे।

जिन लोगों ने संघर्ष किया है, उन्हीं लोगों ने दिग्विजय की है। वे लोग गर्मी, चारागाहों, खेतों और जंगलों की खोज में दूर-दूर तक गए। वहाँ पहले से रहने वालों के साथ उनका संघर्ष हुआ। अगर वहाँ के लोग मजबूत होते तो वहाँ टिक पाते, नहीं तो उन्हें वहाँ से भागना पड़ता। जंगलों में रहने वाले लोगों को तो एक मुर्गी ही मिल जाए तो काफी है, बाकी से उनको कोई मतलब नहीं। कौन रोटी, दाल, कढ़ी, पकौड़ी बनाने का झंझट करेगा। जंगल में रहने वालों का जीवन बड़ा सरल था। जिन लोगों का जीवन सरल

होता है, वे स्वभाव से परिश्रमी नहीं होते, इसलिए पिछड़े रहते हैं। जितने भी आदिवासी दुनिया में हैं, वे सब पिछड़े हैं। जंगलों में रहते हैं, नाम के लिए खेती करते हैं।

परन्तु जो लोग कठिन जीवन परिस्थितियों से आए, वे सारे के सारे लोग परिश्रम करते थे। मंगोलिया में जाओ, इतना ठण्ढा है, वहाँ नहा नहीं सकते, कपड़े बदल नहीं सकते, मोटे कपड़े पहनने पड़ते हैं। मंगोलिया और अफगानिस्तान से लोग आए और यहाँ हिन्दुस्तान में आराम से बस गए। यहाँ तो लुंगी पहनकर भी काम चल जाता है। यही कारण है कि इस देश में संघर्ष कम है। जहाँ लोगों को संघर्ष करना पड़ा, वे लोग आगे बढ़ गए। यूरोप में बिजली खत्म हो जाए तो वे लोग कुल्ला भी नहीं कर सकेंगे, घर के बाहर नहीं जा सकेंगे। इंग्लैण्ड या पेरिस जाओ, वहाँ महीने में पचीस दिन बारिश होती है, तीन-चार दिन मौसम खुलता है, वह भी आधे दिन के लिए। उस समय सब लोग दफ्तर वगैरह छोड़कर बाहर आ जाते हैं, मजा उठाते हैं।

हिन्दुस्तान के आगे नहीं बढ़ने का यही कारण है कि यहाँ के लोगों को संघर्ष करने की जरूरत ही नहीं है। खेती करने के बाद शाम को इधर-उधर से छोटी लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेते हैं, उससे आग जलाते हैं, खाना बन जाता है। इतना ही तो चाहिए। गाँव के लोग खाना बाहर ही बनाते हैं, केवल बरसात के दो महीनों को छोड़कर। हिन्दुस्तान में इतना ही संघर्ष है। लेकिन बाहरी लोगों ने उन्नति की है, वे हिन्दुस्तान आये, सारी दुनिया में फैल गये।

व्यक्ति में इच्छा और महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए। कुछ लोग अपने में ही सन्तुष्ट रहते हैं, वे केवल खाना और सोना चाहते हैं। पुराने लोग उसी तरह के हैं। मध्यप्रदेश, असम, त्रिपुरा, नागालैण्ड, कहीं भी जाओ, वे लोग प्रगतिशील नहीं हैं। वे अपने ही ढंग से कपड़ा पहनेंगे, खायेंगे, मकान रखेंगे, और उन्हें इसका बहुत गर्व होता है। पर यह किसी भी संस्कृति के लिए ठीक नहीं है। जो अपने ही ढंग से रहे, उसकी सीमाएँ बन जाती हैं। इसके विपरीत आन्ध्र, तमिलनाडु, केरल, गुजरात या पंजाब के लोग बहुत प्रगतिशील हैं।

हर संस्कृति को अपने रीति-रिवाजों से बाहर जाकर देखना होगा कि ऐसा भी कपड़ा पहना जाता है, यह भी खाना खाया जा सकता है, इस

प्रकार भी शादी हो सकती है। असम, मेघालय, मिजोरम या त्रिपुरा की तरफ जब खेती का मौसम होता है, तब गाँव के सभी तीस-चालीस आदमी मिलकर एक तरफ से खेत में काम करते चलते हैं। यह तुम्हारा खेत, यह हमारा खेत, ऐसा नहीं कहते। पूरे गाँव में एक साथ हल चला दिया, बीज बो दिया, सब काम कर लिया। बस जब काटने का समय आता है, तब सब अपना-अपना काटते हैं। मतलब मेहनत सामूहिक है, कटनी व्यक्तिगत। सबका खेत लिखा हुआ है।

सारे के सारे नागालैण्ड का यही हाल है। और मेघालय में दुकानों पर औरतें बैठती हैं। मर्द लोग ताश खेलते हैं और बच्चों को देखते हैं, जैसे यहाँ औरतें करती हैं। मेघालय में छोटी-छोटी जातें हैं जिनको खुण्डा कहते हैं। पाँच-दस हजार आदमी रहते हैं। खासी, तुर्रा, ऐसी कई जातियाँ होती हैं। उनके यहाँ जब शादी, देवी-देवताओं की पूजा, खेती आदि होती है, तब वे उत्सव मनाते हैं। मतलब जीवन में आनन्द लेने वाले हैं वे लोग। संस्था, ऑफिस या फैक्ट्री खोलना, बी.ए.,एम.ए. जैसी डिग्रियाँ लेना, हाई कोर्ट-सुप्रीम कोर्ट जाना, यह सब उनके दिमाग से एकदम बाहर है। लेकिन एक बात है कि लड़के-लड़कियों के मामले में वे यूरोप की तरह हैं। स्त्रियाँ वहाँ बहुत सक्रिय रहती हैं। जब असम की तरफ जाते हैं, वहाँ मातृप्रधान समाज मालूम पड़ता है, पितृप्रधान नहीं। स्त्रियाँ सब शक्तिशाली लगती हैं, मर्द कोई खास काम नहीं करते। मर्द का काम औरत करती है और औरत का काम मर्द।

दुनिया की अधिकतर जनजातियाँ अपने ही समाज में रहती हैं, वे बाहर नहीं जाना चाहतीं। बिहार, बंगाल, पंजाब, गुजरात, हिमाचल प्रदेश या तमिलनाडु में कहीं भी जाकर व्यापार खोल सकते हो, मकान बना सकते हो, कहीं कोई समस्या नहीं। लेकिन असम-मेघालय इत्यादि में ऐसा नहीं है, वहाँ बंगाली या मारवाड़ी जाकर व्यापार करेगा तो कहेंगे कि विदेशी हमारा व्यापार करते हैं। ईर्ष्या उन लोगों में बहुत ज्यादा है। नागालैण्ड, त्रिपुरा कहीं भी चले जाओ, सबका यही हाल है। बहुत संकीर्ण समाज है। ऐसा हिन्दुस्तान में, सिवाय कश्मीर के, और कहीं नहीं मिलेगा। हिन्दुस्तान में कहीं भी मकान बना सकते हो, कोई भी व्यापार कर सकते हो।

– 20 सितम्बर, 1997



अध्याय 12

सती ने जब अपना शरीर योग अग्नि में भस्म कर दिया था, तब शिवजी कैसे उनका शरीर लेकर घूमे?

क्यों, जलने के बाद तो आदमी का शरीर रहता है न। हिन्दुस्तान में यह सती प्रथा बहुत पहले से थी। जब पाण्डु मरे तो माद्री सती हुई। जब दशरथ मरे तो तीनों रानियों को सती होना चाहिए था, लेकिन भरत ने उनको रोका। यह प्रथा ज्यादातर समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में, बड़े घरानों में हुआ करती थी। सामान्य जनता में ऐसा नहीं था। जैसे किसान हैं, मजदूर हैं, बढ़ई हैं, इन लोगों में सती का होना नहीं सुना गया। ब्राह्मणों में भी नहीं सुना गया है। क्षत्रियों में ज्यादा होता था, क्योंकि क्षत्रिय ज्यादा मरते थे। और वैश्यों में भी होता था। अगर बनिया आदमी मर गया और औरत दूसरी शादी कर लेगी तो सारी संपत्ति वह ले जाएगी! इन सब चीजों के पीछे असली कारण धर्म नहीं, कुछ और था।

पाश्चात्य देशों में यह सब नहीं है। जैसे अमरीका का राष्ट्रपति, कैनेडी मर गया, तो उसकी पत्नी ने दूसरे से शादी कर ली। जब वह भी मर गया तो फिर तीसरे से शादी कर ली। उनकी सभ्यता में यह सब स्वीकार्य है। किन्तु एशिया में, भारत में ऐसे व्यवहार को समाज की स्वीकृति नहीं है। आदमी दूसरी शादी कर ले तो सामाजिक स्वीकृति है लेकिन स्त्री दूसरी शादी करे तो स्वीकृति नहीं है। अगर राजकुमारी डायना भी भारत में मरती तो उसको उतना सम्मान नहीं मिलता, क्योंकि उसके बारे में बहुत-सी कहानियाँ जो थीं।

इंग्लैण्ड में तो शायद राजकुमारी डायना इंग्लैण्ड की महारानी से भी ज्यादा लोकप्रिय थी।

वास्तव में इंग्लैण्ड के लोग राजतंत्र नहीं चाहते। लेकिन कोई रास्ता नहीं दिखता। धीरे-धीरे वे राजघराने को बदनाम करते जा रहे हैं, जनमत को राजघराने के खिलाफ बना रहे हैं। लेकिन वहाँ के समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो महारानी के प्रति पूरा वफादार है, विशेषकर अमीर और सामन्तवादी वर्ग। इंग्लैण्ड में जो जमीन है, वह प्राय: राजपरिवार की है जो उन्होंने किसानों को लगान पर दे रखी है। किसानों की अपनी जमीन नहीं है, वे महारानी की जमीन पर खेती कर रहे हैं। और ये लोग हमेशा अन्दर में बन्द रहते हैं। उनके साथ क्या होता है, किसी को मालूम नहीं।

लेकिन आजकल राजघराने के जो नए लड़के-लड़कियाँ आगे आ रहे हैं, वे लोग परवाह नहीं करते हैं। वे आम आदमी की तरह व्यवहार करते हैं, विवाह करते हैं, राजसी लोगों की तरह नहीं। चार्ल्स और डायना के बीच में जो चला वह कोई नई चीज तो नहीं थी। यह पहले भी चलता था लेकिन अब नए किस्म के लोग हैं, इसलिए खुलेआम किया। लोगों ने कहना शुरू किया और अखबारों ने छापना शुरू कर दिया। किन्तु वहाँ का जो आम आदमी है, आम आदमी का मतलब मजदूर, दफ्तर में काम करने वाला, बढ़ई, दुकानदार, ड्रायवर, स्कूल का अध्यापक, लेखक, चिन्तक, गायक, संगीतकार वगैरह, जो वहाँ बहुमत में हैं, इन सबको डायना अच्छी लगती थी। किसी दूसरे के साथ मौज-मस्ती करके डायना वह खुशी ही तो पा रही थी जो उसे अपने पति से नहीं मिल रही थी। उनके ख्याल से वह ठीक ही कर रही थी। वहाँ के सामान्य लोगों की यही राय है। ऐसी राय हिन्दुस्तान में नहीं हो सकती। यदि कोई कहे कि औरत खुश रहने के लिए अपने पति को छोड़कर किसी दूसरे के पास चली जाए, तो भारत में यह नहीं मान सकते।

एशिया और पाश्चात्य देशों के नैतिक मूल्यों में अंतर है। एशिया का समाज सदियों से स्थिर और स्थायी रहा है। आदमी के पास रहने के लिए चाहे झोपड़ी ही हो, लेकिन वह उसका घर है, गाँव है। यहीं उसके बाप-दादा रहे हैं। वह कहीं भी जाएगा, लन्दन में भी रहेगा तो भी कहेगा, 'हम पटना के रहने वाले हैं।' इस तरह के हैं एशिया के लोग। जबकि पाश्चात्य लोग खानाबदोश रहे हैं। लड़ाइयाँ लड़ते रहे, एक से दूसरे देश में जाते रहे।

वाइकिंग जैसी जातियों की बहुत-सी कहानियाँ आती हैं। जब कोई सभ्यता स्थिर नहीं होती, उस वक्त उसकी सामाजिक प्रणाली अलग होती है। अब इटली, ग्रीस, जर्मनी से लोग अमरीका चले गये, वहाँ उन्होंने लड़ाई लड़ी, जीते। उनकी औरतें तो इटली या जर्मनी में ही थीं। अमरीका आकर उन्होंने दूसरी शादी कर ली। स्वदेश में उनकी औरतों ने भी दूसरी शादी कर ली, क्योंकि उन लोगों को उन परिस्थितियों के मुताबिक रहना था।

जैसी सामाजिक प्रणाली होती है, उसी के मुताबिक रीति-रिवाज बनते हैं। जब समाज अस्थिर होता है, उस वक्त रीति-रिवाज भी दूसरे होते हैं। जैसे जिप्सी लोग हैं, उनका सामाजिक ढाँचा अलग है, वहाँ औरतों और मर्दों का आपसी सम्बन्ध दूसरे ढंग का होता है। यहाँ तो हम दोनों आमने-सामने हैं, तुम हमको देखते रहो और हम तुमको देखते रहें, लेकिन वहाँ कौन किसको देखेगा?

दूसरी चीज यह है कि पाश्चात्य लोग ज्यादा से ज्यादा जमीनें लेते रहे। जब यूरोप इनके लिए कम पड़ गया तब ये अमरीका चले गए। ये तो एशिया भी जीतने आये थे। जापान, चीन वगैरह सब जीतना चाहते थे, पर नहीं कर पाए। किसी स्थायी और सुस्थिर समाज को जीतना आसान नहीं है। जब समाज सुदृढ़ और स्थिर हो जाता है, तब रिश्तेदारियाँ स्थापित हो जाती हैं। दूर-दूर तक चाचा-मामा-ताऊ का सम्बन्ध रहता है। तब उस समाज को जीतना मुश्किल रहता है। हाँ, तुम उस पर शासन कर सकते हो, पर जीत नहीं सकते। अँग्रेजों ने भारत कभी जीता नहीं, भारत पर केवल शासन किया। चीन पर भी केवल शासन किया। लेकिन उन्होंने उत्तरी और दक्षिणी अमरीका को जीत लिया। ऑस्ट्रेलिया को भी जीत लिया, क्योंकि वहाँ का समाज सुदृढ़, सबल और प्राचीन नहीं था।

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि समाज को सुदृढ़ बनाने में महिलाओं का योगदान ज्यादा रहता है? हमारे समाज में ही देखा जाए तो औरतों को कितना बलिदान करना पड़ा है।

मैं भी तुम्हारी तरह कई बार सोचता हूँ, मगर दिक्कत यह है कि औरत के साथ बहुत-सी जटिलताएँ और समस्याएँ जुड़ी रहती हैं, जो शायद आदमी के साथ नहीं होतीं। औरत कभी शिकारी नहीं होती, वह हमेशा शिकार बनती है। चाहे दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक कारणों से, अपनी

शारीरिक अक्षमता के कारण या समाज में अपनी भूमिका के कारण वह हमेशा निशाना बनती रही है।

अब अगर उसके पेट में या गोद में बच्चा है, तो क्या करेगी वह? अगर वह कुश्ती लड़ती है, दण्ड-बैठक लगाती है, तो उसका गर्भाशय खिसक जाएगा। फिर वह बच्चा नहीं दे सकती है। जो आदमी कड़ा व्यायाम करते हैं, दण्ड-बैठक लगाते हैं, लड़ाई लड़ते हैं, घुड़सवारी करते हैं, उनके शरीर की माँसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। यदि औरत का गर्भाशय कड़ा हो जाए तो वह पहली प्रसूति में ही मर जाएगी! गर्भाशय को तो गुब्बारे की तरह लचीला होना चाहिए। अगर वह लचीला नहीं होगा तो गर्भ में शिशु को कैसे रखेगी? अगर वह कसरत करे, पहलवानी करे, दण्ड-बैठक लगाए, ऊपर-नीचे कूदे, हर प्रकार की कसरत जो मर्द करता है वह करे, तो उसकी पेशियाँ, उसका गर्भाशय कड़ा हो जाएगा। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ेगा, उसके फटने का खतरा रहेगा। नहीं भी फटेगा तो गर्भाशय-ग्रीवा, जहाँ से बच्चा निकलता है, वह कड़ी हो जाएगी। अभी भी बहुत महिलाओं का प्रसव के समय बच्चा नहीं निकलता है। इसलिए आजकल सीजिरियन ऑपरेशन होता है। सीजिरियन होने से बच्चों को गर्भाशय-ग्रीवा से निकालने की जरूरत नहीं पड़ती, पेट से निकाल लेते हैं।

औरत का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक ढाँचा विचित्र है। कितनी ही पढ़ी-लिखी औरत हो, बी.एस.सी., एम.एस.सी., एल.एल.बी., लेकिन उसका भावनात्मक प्रारूप दूसरा ही होता है। अब झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को ही ले लो, लड़ने के लिए गई, लेकिन बच्चे को पीठ पर बाँध लिया उसने। घर में दाई के पास छोड़कर आती या कहीं भेज देती। नहीं, साथ में लेकर निकली! यह उसका भावनात्मक प्रारूप है।

अभी जो लड़कियाँ सेना में जाती हैं, पुरुषों की तरह उछलकूद करती हैं, उनका क्या हाल होगा?

उनका भी वही हाल होगा। लेकिन वहाँ यह सब कसरत छोटी उम्र से नहीं, काफी देर बाद होती है, इसलिए उतना असर नहीं पड़ता। वैसे अभी सेना में ज्यादा महिलाएँ गयी भी नहीं हैं। वायुसेना में कुछ हैं, एन.सी.सी. में थोड़ी-सी जाती हैं, कुछ नर्सिंग में हैं। लेकिन वास्तविक जंग लड़ने वाली टुकड़ियों में औरतें नहीं हैं। इन्फैन्ट्री, कैवलरी, आर्टिलरी में नहीं हैं।

लेकिन आजकल जो लड़कियाँ जूडो-कराटे सीखती हैं, वह तो छोटी उम्र से ही शुरू हो जाता है।

वह ठीक है। जूडो कसरत नहीं, मार्शल-आर्ट है। जो आदमी दण्ड-बैठक लगाता है, भारी वजन उठाता है, उसी के शरीर की पेशियाँ कड़ी होती हैं। जैसा मैंने बताया औरत के लिए पेशियों का, विशेषकर गर्भाशय की पेशियों का कड़ा होना खतरनाक है।

आत्मा की दृष्टि से स्त्री और पुरुष एक हैं, लेकिन प्रकृति के दृष्टिकोण से उनमें अन्तर है। दोनों की हॉर्मोन-प्रणाली भिन्न है। स्त्रियों में ऐसे बहुत-से हॉर्मोन हैं जो पुरुषों में नहीं होते। मस्तिष्क का वजन औरतों और मर्दों में समान नहीं होता। मस्तिष्क के सर्किट अलग-अलग होते हैं। कोई तकलीफ होती है, मर्द रोता नहीं, मगर औरत तुरन्त रो देती है। प्रजनन प्रणाली भी बिल्कुल अलग है। आदमी की तो होती ही नहीं है। बहुत-सी ग्रन्थियाँ आदमी में नहीं होतीं। इस तरह बहुत-से अंतर हैं और इसीलिए पूर्व काल से आज तक स्त्रियों की जो हालत रही है, वह कितना सुधारने पर भी ऐसी ही रही।

पुराने समय में गुलामी की प्रथा भी तो रही है।

हाँ, अरब देशों के लोग दुनियाभर में हमला करते और औरतों को चोरी करके ले जाते थे। हजार-दो हजार, जितनी भी हों, जिस जाति की भी हों, क्योंकि उनकी जनसंख्या कम थी। वे ज्यादा संतानें पैदा करना चाहते थे। जबकि मिस्र और रोम के लोग अफ्रीका से आदमियों को चोरी करके लाते थे। उन्होंने आदमियों को चुराना शुरू कर दिया, क्योंकि किसी जमाने में मिस्र और रोम बहुत मालदार देश हो गए थे। जब मालदार हो गए, तो वहाँ के लोग आलसी हो गए। वे लोग मौज करने लगे, क्योंकि राजा के पास पैसा था। तब उन्होंने कहा, काम कौन करेगा? तो फैसला हुआ कि बगल में अफ्रीका पर हमला करो, दो हजार आदमियों को पकड़कर ले आओ। मिस्र में जितने भी बड़े-बड़े महल बने, सब यहूदियों ने बनाए। यहूदी लोगों को गुलाम रखा जाता था। उन्हें एक अलग झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र में, जिसको 'घेटो' बोलते हैं, रखा जाता था।

रोम में गुलाम बिकते थे। ईसप, जिसकी कहानियाँ अँग्रेजी में हैं, वह भी एक गुलाम था। बहुतों के पैरों में बेड़ी बाँधी जाती थी। वे अपनी मर्जी से

शादी नहीं कर सकते थे। बहुत-से नियम थे। हमलावर आते थे, आदमियों को पकड़ लेते थे, काम कराते थे, कोई उपाय नहीं था। मिस्र में इतने ज्यादा यहूदी हो गए कि उसका पतन इसी कारण हुआ। मोसेस ने उन लोगों का नेतृत्व किया। राजमहल में जो बूढ़ा राजा था, वह कहता था कि यहूदियों के साथ हमको अच्छा व्यवहार करना चाहिए, पर उसके जितने वंशज थे, उत्तराधिकारी थे, कोई उसकी बात नहीं मानते थे। अंततः यहूदियों ने काम बन्द कर दिया, हड़ताल कर दी। वहाँ महामारी हुई। मिस्र महामारी से खत्म हुआ। हजारों-लाखों लोग सड़कों पर मरने लगे। गाँव के गाँव खत्म हो गए। तब उन्होंने कहा कि यहूदियों को यहाँ से निकालो।

सउदी अरब में कोई स्थानीय अरब काम नहीं करता। अबु-धाबी में कोई काम नहीं करता। बंगलादेश, भारत, पाकिस्तान, लंका, फिलीपीन, आदि देशों से लोग वहाँ जाते हैं, काम करते हैं। वहाँ के लोगों को आराम के साथ सब चीज मिलती है। मुफ्त की पढ़ाई है, मुफ्त की दवाई है। सब कुछ मुफ्त है, क्योंकि उनकी सरकार के पास पैसा है। आगे जाकर उनका भी वही हाल होने वाला है। आखिर बंगलादेश, लंका, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान हमेशा गरीब तो रहेंगे नहीं, क्योंकि यहाँ के लोग बुद्धू नहीं हैं, बहुत तेज हैं। तेज इसलिए हैं कि इनको संघर्ष करना पड़ा है। जो जाति संघर्ष करती है, वह तेज होती है। जो उस्तरा रोज चलता है, वह तेज रहता है। जो उस्तरा रोज नहीं चलता, उस पर जंग लग जाती है। यहाँ के लोगों को दो बार खाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, लड़का-लड़की की शादी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यहाँ सामाजिक संघर्ष बहुत है।

क्या इस सामाजिक संघर्ष की वजह से एशिया ऊपर उठेगा?

जिस जाति में सामाजिक संघर्ष है, वह जाति एक-न-एक दिन जरूर उठेगी। जो जाति आराम-तलब है, 'पैसा आ गया अब क्या चिन्ता करनी', वह जाति मर जाएगी। वही हाल रोम, मिस्र और यूनान के लोगों का हुआ। वही अमरीका का भी होने वाला है। वे लोग अब क्या कर रहे हैं? मंगलग्रह पर आदमी भेज रहे हैं! उसका अरबों-खरबों डॉलर दाम है। उसी रकम से दुनिया के कितने गरीब देशों को पाला जा सकता है। अमरीका यू.एन.ओ. को पैसा नहीं दे रहा है। यू.एन.ओ. के लिए सब देशों को योगदान देना पड़ता है। वह एक तरह से सांझा सरकार है। लेकिन अमरीका अपना हिस्सा नहीं दे रहा है।

इंग्लैण्ड, अमरीका, आदि जितने मालदार देश हैं, उन लोगों के यहाँ संघर्ष खत्म हो गया है। वहाँ के लड़के-लड़कियाँ किसी विश्वविद्यालय में जाकर कहते हैं, 'हम अनुसंधान करेंगे।' 'क्या अनुसंधान करोगे?' 'हम फॉसिल्स पर शोध करेंगे।' 'कहाँ?' 'जापान की फलानी पहाड़ी पर।' विश्वविद्यालय के लोग थोड़ी जाँच-पड़ताल करते हैं, अगर प्रस्ताव में कुछ दम है तो कहते हैं, 'ठीक है, दस हजार डॉलर ले लो।' वह अपना कैमरा, रक्सैक वगैरह लेकर जापान पहुँच जाता है। वहाँ एक लड़की को पकड़ लेता है, शराब पीता है, कुछ फोटो निकालता है, अनुसंधान के नाम पर यही सब होता है।

एशिया की जातियाँ संघर्ष कर रही हैं और एक दिन वे ऊपर उठेंगी। फिर इन मालदार देशों से छीनेंगी। ये मालदार लोग नये-नये आर्थिक कानून बनाते हैं, मुक्त व्यापार और मुद्रा विनिमय की बात कहते हैं। इन लोगों ने अर्थशास्त्र में यह जो निकाला है कि एक डॉलर चालीस-पैंतालीस रुपये के बराबर है, यह सब गलत है। लेकिन कोई बोलने वाला ही नहीं है। अगर कोई बोलने वाला है भी, तो उसकी कोई सुनता नहीं है। वे लोग कहते हैं कि बिना मुद्रा की विनिमय-दर तय किए व्यापार हो ही नहीं सकता। हम कहते हैं कि मुद्रा की विनिमय-दर तय करना अनैतिक और अव्यावहारिक है। मगर कोई सुनता ही नहीं। जब चाहे वे चार पैसा दाम बढ़ा देते हैं या चार पैसा घटा देते हैं और अपने शेयर बाजार को उछाल देते हैं। जहाँ देखा शेयर बाजार गिर रहा है, वहाँ डॉलर की विनिमय दर को बदल देते हैं। अब इसी में ये लोग मरने वाले हैं। चार-पाँच साल में इनको चोट लगेगी।

अब इंग्लैण्ड की मुद्रा है पौण्ड, जर्मनी की मार्क, फ्राँस की फ्रैंक, इटली की लीरा। हर देश की अलग-अलग मुद्रा है, लेकिन अब ये लोग एक सांझी 'यूरो' करेन्सी लाने वाले हैं। अब झगड़ा हो रहा है कि उसकी विनिमय-दर तय करने की प्रणाली क्या हो। पौण्ड की मार्क के साथ, मार्क की फ्रैंक के साथ विनिमय प्रक्रिया क्या हो? जब ये लोग यूरो करेन्सी लाएँगे, तो किस आधार पर लाएँगे? जैसे सारे हिन्दुस्तान की करेन्सी रुपया है। दिल्ली में जो मूल्य पचास रुपये का है, वह देवघर में दो-तीन रुपये का है। बम्बई में सौ टका, देवघर की अठन्नी। मगर चूँकि हिन्दुस्तान में एक मुद्रा चल रही है, उत्तर से दक्षिण तक, इसलिए कोई झंझट नहीं है।

यदि बिहारी रुपया अलग होता और बम्बइया रुपया अलग, दिल्ली रुपया अलग होता और मद्रासी रुपया अलग तो क्या होता? एक दिल्ली

रुपया सौ बिहारी रुपये, नब्बे उड़िया रुपये, साठ बंगाली रुपये के बराबर होता। यही होता न? चूँकि हम लोगों का एक देश हुआ, इसलिए यह विनिमय-दर हम लोगों के यहाँ नहीं है। इसीलिए सब चीजें ठीक से चल रही हैं। रिखिया के लोग बारह रुपये में चीनी खा रहे हैं और दिल्ली के लोग भी। वहाँ केन्द्रीय सरकार के मुलाजिम को पाँच हजार रुपया मिलता है और यहाँ भी। यहाँ उसके लिए पाँच हजार रुपया पचीस हजार के बराबर हो जाता है। पाँच हजार रुपये में यहाँ जितने मजे में आदमी रह सकता है, उतना दिल्ली में नहीं रह सकता। मगर यहाँ ऐसा नहीं होता कि देश के अंदर रोज रुपये की दर बदलती रहे। यह जटिल है, अव्यावहारिक है।

शेयर बाजार और विनिमय-दर ऊपर-नीचे करके वे लोग हमारा सारा पैसा लूट लेते हैं। यह सब जानते हैं। एशिया के पास अपना खजाना नहीं है। उन्हीं लोगों से पैसा उधार लेना पड़ता है। बैंक वाले तो वही लोग हैं। चाहे विश्व बैंक हो या अंतर्राष्ट्रीय वित्तकोष, पैसा तो उन्हीं से लेना पड़ता है। इसलिए शर्तें भी उन्हीं की हैं। अगर एशिया का अपना बैंक हो और अपने इस बैंक से ही कर्जा लें और यूरोप-अमरीका से एकदम नाता तोड़कर कह दें कि हम अपनी मुद्रा में विनिमय-दर नहीं आने देंगे, तो मुद्रा की दर हमेशा समान रहेगी। तब तुम देखोगे यहाँ एकदम समृद्धि बढ़ेगी। यह समझना-समझाना बहुत मुश्किल है, लेकिन यथार्थ यही है कि हम लोग उनकी चालों की वजह से गरीब हैं। अब यूरोप में वे लोग सांझी करेन्सी ला रहे हैं। सांझी करेन्सी का मतलब क्या होगा? इटली के लोग गरीब हो जायेंगे बिहारियों की तरह। जर्मनी और अमीर हो जाएगा।

क्या इटली या स्पेन के लोग यह नहीं जानते कि इससे वे गरीब हो जाएँगे? उनको आपत्ति नहीं है क्या?

वे लोग जो इससे जुड़ना चाहते हैं, उसके दो आधार हैं। एक है मास्ट्रिक्ट संधि। छः-सात साल पहले मास्ट्रिक्ट नाम की जगह में यह संधि हुई थी। उस समय इंग्लैण्ड में मैडम थैचर थी, वह इस संधि के विरुद्ध थी, इसीलिए उनको निकाला गया था। उसके बाद डेनमार्क में जनमत-संग्रह हुआ, तो वहाँ के लोगों ने भी संधि को अस्वीकार कर दिया। फिर दूसरी बार जनमत-संग्रह हुआ तो बहुत कम अंतर से वह पास हुआ। इस तरह सब देशों में जनमत-संग्रह हुआ कि वे इस संधि को मानते हैं या नहीं।

दूसरी चीज है पैसे वाले लोग। जो व्यापारी या उद्योगपति होते हैं, उनकी अर्थव्यवस्था एक सामान्य आदमी की अर्थव्यवस्था से अलग होती है। एक मजदूर और एक व्यापारी से पूछा जाए, तो दोनों के आर्थिक सिद्धान्त अलग-अलग होंगे, एक समान नहीं हो सकते। अगर सामान्य आदमी उस संधि के लिए हाँ कहता भी है तो उसको इसका परिणाम पता नहीं होगा। जब समान विनिमय-दर हो जाएगी, तब आगे चलकर इटालियन की तनख्वाह उस दृष्टि से कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए, मान लो केन्द्रीय सरकार का नियम है कि तनख्वाह पाँच हजार रुपये होनी चाहिए। दिल्ली वालों को पाँच हजार मिल गया और यहाँ वालों को भी पाँच हजार मिल गया। अब यहाँ पाँच हजार पचीस हजार के बराबर है और वहाँ पाँच हजार कुछ भी नहीं है। जो लोग दिल्ली में रहते हैं, उनके रहने का स्तर ऊँचा है, इसलिए उन लोगों को पाँच हजार कम लगते हैं। यहाँ का जीवन-स्तर नीचा है, इसलिए इन लोगों के लिए पाँच हजार ज्यादा है। दिल्ली वालों को मँहगा जूता, कीमती छाता, गाड़ी और एयरकंडीशनर चाहिए। इस तरह की कितनी चीजें उन लोगों को चाहिए, जो यहाँ के लोगों को नहीं चाहिए। यहाँ तो टूटी साइकिल से भी काम चल जाएगा, नहीं तो पैदल भी चले जायेंगे। इसलिए दिल्ली में पाँच हजार कम पड़ेगा, जबकि यहाँ वालों के लिए ज्यादा है। तो दिल्ली वाले घाटे में रहे कि नहीं?

सब जगह यह घाटा होता है, पर यहाँ अपने को इतना महसूस नहीं होता, क्योंकि जो बुनियादी जरूरतें हैं, सारे हिन्दुस्तान में उनकी कीमत करीब-करीब बराबर है। दिल्ली में जो चीनी का दाम है, वही देवघर में है। चार-आठ आने का फर्क पड़ सकता है ट्रांसपोर्ट की वजह से। हाँ, जो चीज जहाँ ज्यादा होती है, वह वहाँ थोड़ी सस्ती होगी। लेकिन सीमेंट, लोहा वगैरह की कीमत पूरे हिन्दुस्तान में बराबर है। तुम मकान देवघर में बनाओ या बम्बई में, लागत लगभग उतनी ही आएगी। लोहा, सीमेंट और ईंट का वही दाम है, मजदूरी का थोड़ा फर्क पड़ेगा। जो मकान तुम बम्बई में दस हजार में बना सकते हो, वह यहाँ आठ-नौ हजार में पड़ेगा। उसी तरह ट्रेन का किराया पूरे भारत में बराबर है। बसों और टैक्सियों का किराया भी मोटा-मोटी बराबर है। पर यूरोप में ऐसा नहीं है। वहाँ अंतर दिखाई देता है।

मेरी मुख्य बात यही है कि आजकल अर्थशास्त्र में मुद्रा का जो मूल्यांकन करते हैं, विनिमय-दर तय करने की जो प्रणाली उन्होंने बनायी है, उसकी

वजह से हम लोगों को नुकसान पहुँचता है। हमको याद है बचपन में एक रुपये में तीन डॉलर खरीदते थे। मैं सन् चालीस के पहले की बात बोल रहा हूँ। एक रुपये में दो पौण्ड खरीदते थे। और रुपया होता था पूरा एक तोला चाँदी का। उस पर महारानी विक्टोरिया का चित्र होता था। अब एक पौण्ड सत्तर रुपये का हो गया है। पहले चाँदी का रुपया था, अब कागज का रुपया हो गया है। पहले चाँदी के मोल पर उसका मूल्यांकन होता था, अब बाजार के मुताबिक होता है।

हम लोगों के समय सोने के भी सिक्के होते थे। रुपया, अठन्नी, चवन्नी, ये सोने के भी होते थे। अब तो कहीं नहीं मिलते, लेकिन पहले आम थे। हम लोग अपने नौकरों को सोने की चवन्नी देते थे। मैंने अपने हाथ से दी है। हमारे यहाँ खेतों के जो रखवाले होते हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। रात और दिन अपने परिवार के साथ वे लोग जागरण करते हैं। नहीं तो खेती आधे घण्टे में चौपट हो जाए। पाँच-पाँच हजार चिड़िया उड़कर आती हैं, दो-दो सौ हिरण खेत में आ जाते हैं रात को। इसलिए उन लोगों को साल में एक सोने की चवन्नी दी जाती थी। उनका पेट उसी से चलता था।

हम लोगों के यहाँ प्रथा थी कि जितनी खेती होती थी, उसका अनाज घर नहीं आता था। वह खेत में ही रहता था। एक दिन निश्चित करके बढ़ई, लोहार, चमार, ब्राह्मण, नाई, आदि सबको बुलाया जाता था, वे अपना-अपना डिब्बा लेकर आते थे। यह हिसाब रहता था कि हर एक को कितना हिस्सा देना है। सब को देने के बाद जो बचे वह अपना। हम लोग बीस प्रतिशत रखते थे, अस्सी प्रतिशत बँट जाता था। एक किसान को उसकी खेती का बीस प्रतिशत मिलता था, चाहे अकाल हो या अन्य विषम परिस्थिति हो, बाकी अस्सी प्रतिशत चला जाता था। दर्जी और डोम को भी देना पड़ता था। घर में कोई पैदा होता था तो पण्डित जी जन्मकुण्डली बनाने और पूजा-पाठ करवाने के लिए आ जाते थे। उनका भी हिस्सा रहता था। जहाँ-जहाँ वे काम करते थे, सबसे इकट्ठा करते थे और उनका सालभर का इंतजाम हो जाता था। पर उनमें जो खेत का रखवाला होता था, उसको सोने की चवन्नी अलग से दी जाती थी।

यह सारा सोना-चाँदी कैसे गायब हो गया? कहाँ गया सब? जब सरकार मुद्रा बदलती है तब पुरानी को अपने पास रखती जाती है और नयी लाती जाती है। फिर ये सोने-चाँदी के सिक्के कहाँ चले गए?



जब लड़ाइयाँ होती हैं तब दूसरी सरकारें आती हैं और ये सब काम किया करती हैं। इसलिए हिन्दुस्तान के लोगों ने अनादिकाल से एक सिद्धान्त बना रखा है कि सरकार को सोना मत दो। सब सोना अपने पास रखो। लेकिन अगर तुम अपने पास सोना रखोगे तो सरकार उसे जबरदस्ती कर के रूप में ले लेगी। लोगों ने सोचा इसका क्या किया जाय? उपाय निकाला, कन्याधन। सोने का मंगलसूत्र बना दिया। क्या करेगी सरकार? मंगलसूत्र पर थोड़े ही लगान लगा सकती है! इस तरह हम लोगों के धर्म में सोने का सम्बन्ध जीवन के साथ, शादी के साथ लगा दिया गया, जिसकी वजह से सरकार को कानून बनाने में डर लगता है। किसी की चूड़ियाँ और मंगलसूत्र कैसे सरकार ले जा सकती है? इसलिए सोना अब हिन्दुस्तान में व्यक्तिगत चीज है। हिन्दुस्तान

में बहुत सोना है, यहाँ गरीब मजदूर के घर में भी कम-से-कम एक तोला सोना जरूर रखा है।

हिन्दुस्तान में नब्बे करोड़ लोग हैं, अब हिसाब लगा लो, नब्बे करोड़ तोला सोना तो होगा ही। यह हम लोगों ने तब सीखा जब देखा कि राजा के पास सोना बहुत है, अच्छा राजा है, सबको खिलाता-पिलाता है, पर कल उसके ऊपर हमला हो गया, हमलावर सारा सोना लूटकर ले गये। अब राजा क्या करेगा? इसलिए राजा पर निर्भर मत रहो, सोना प्रजा के पास होना चाहिए। यह बहुत अच्छा तरीका है। जब सोना प्रजा के पास होता है तब यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा नहीं रहता। जो सोना मेरे या आपके पास है, वह राष्ट्रीय सम्पत्ति नहीं है, वह बही-खाते से बाहर है। जो सरकारी खजाने में है, वही राष्ट्रीय सम्पत्ति है।

शायद इसलिए हम लोगों का राष्ट्र गरीब है, पर आम आदमी नहीं।

गरीबी की परिभाषा बड़ी अजीब है। गरीब किसे कहते हैं? हिन्दुस्तान गरीब तो है, लेकिन हिन्दुस्तान में सोना भी बहुतों के पास है। शादी में सोना दिया जाता है, लिया जाता है। अँगूठी में सोना होता है। पैसे वालों के पास ज्यादा है, गरीब के पास कम। अब इसमें शायद कोई कंगाल भी हो सकता है, जिसके पास कुछ नहीं।

देखा जाए तो जिन्हें हम यहाँ गरीब कहते हैं, यह उनकी आदतों की वजह से है। उनके पास खाने के लिए पैसा है, लेकिन वे शराब में उड़ा देते हैं। इसलिए उन्हें खाने को नहीं मिलता।

नहीं, गरीबी तो सारी दुनिया में है। यहीं नहीं, इंग्लैण्ड, अमरीका और फ्राँस में भी गरीबी है। मगर वहाँ सरकार गरीबों को पैसा दे देती है, हफ्ता। बेरोजगारी भत्ता या सामाजिक सुरक्षा, ये अलग-अलग नाम हैं हफ्ते के। उनका हफ्ता बन्द हो जाय तो यही हाल वहाँ भी होगा। और यहाँ सबको हफ्ता मिल जाय तो सब चीजें सुधर जाएँगी। यहाँ तो सिर्फ शराब का व्यसन है, वहाँ तो बहुत खराब-खराब व्यसन हैं। वे लोग शराब पीते हैं, कोकेन लेते हैं, हेरोइन का इन्जेक्शन लेते हैं, क्या कुछ नहीं करते!

न्यूयॉर्क में हजारों की संख्या में बेघर लोग दुकानों के नीचे जो लम्बा-लम्बा बक्सा होता है उसमें स्लीपिंग बैग डाल देते हैं और उसके ऊपर

टारपोलिन डाल देते हैं, जिससे बरसात में गीला न हो। जब पुलिस आती है तब सब भागते हैं। वहाँ लोग जब दुकान के अन्दर जाते हैं, तब अपनी साइकिल का पीछे का पहिया बगल में दबा कर ले जाते हैं। नहीं तो ताला तोड़कर साइकिल चुरा ली जाती है! फ्राँस में जब मैं सेन नदी के किनारे घूमने गया तो देखा वहाँ बड़े-बड़े ह्यूम पाईप हैं, जिनके अन्दर लोग रहते हैं। मगर ऐसे लोगों के बारे में कोई बोलता नहीं है।

बाल मजदूरी, जिसके खिलाफ हिन्दुस्तान में इतने लम्बे-चौड़े झण्डे-नारे उठ रहे हैं, सब जगह है। अमरीका, इंग्लैण्ड, कनाडा, सारे यूरोप में लड़के-लड़कियाँ अखबार बेचते हैं। लेकिन जैसे बड़े घर की बहू के बारे में कोई कुछ नहीं कह सकता, वैसे ही कोई इन लोगों पर अँगुली नहीं उठा सकता। गरीबी, बाल मजदूरी, आदि मुद्दों को लेकर सब हम पर ही अँगुली उठाते हैं।

मैं यूरोप और अमरीका के भविष्य के बारे में अधिक आशावादी नहीं हूँ। एशिया की संस्कृति बेहतर संस्कृति है। सीधे-सादे लोग हैं, लेकिन पता नहीं किस तरह से अजगर के मुँह में फँस गए। अब निकलने की कोशिश कर रहे हैं। पाश्चात्य जाति अजगर है। हमेशा दूसरों को निगलने की कोशिश में लगी रहती है।

लेकिन एशिया बड़ी तेजी के साथ जाग रहा है। इसमें चीन ने बहुत अच्छा काम किया है। चीन के बाद मलेशिया ने भी ठोस काम किया है। वहाँ का प्रधानमंत्री बहुत समझदार आदमी है। वहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, मलय, चीनी, सब बहुत अच्छी तरह से रहते हैं। वहाँ तमिल लोग बहुत हैं। बहुत आधुनिक और व्यवस्थित देश है। वहाँ बाटुक केव्स में स्वामी शिवानन्द जी का आश्रम है। जोहर बहारु में भी है, जहाँ स्वामीजी डॉक्टरी किया करते थे।

चीन में करीब-करीब अच्छा चल रहा है। चीन की सरकार साम्यवादी है, लेकिन बाजार और अर्थव्यवस्था साम्यवादी नहीं है। वहाँ जमीनों, स्कूलों, बैंकों, जहाजों और कारखानों का निजी स्वामित्व है। वहाँ निजी सम्पत्ति राजकीय सम्पत्ति से बड़ी है, जैसे हिन्दुस्तान में है। मगर उनकी राजनैतिक विचारधारा अभी भी साम्यवादी ही है। उन्होंने साम्यवादी और पूँजीवादी, इन दो विचारधाराओं को दो सौतनों की तरह रखा है। दोनों के सिद्धान्त अलग हैं। पूँजीवादी प्रणाली में हर आदमी को मुनाफा मारने की छूट है। बाजार में

उतरने और स्पर्धा करने की छूट है। सरकार से तुमको मदद नहीं मिलेगी। पर ऐसा साम्यवाद में नहीं है। वैसे सब लोग अब पूँजीवाद की ओर जा रहे हैं, यहाँ तक कि रूस भी।

चीन में लोग राष्ट्र के प्रति बहुत समर्पित हैं। वहाँ हर पुरुष और महिला को काम करना पड़ता है। वे लोग बच्चों को स्कूल में छोड़ देते हैं, सब घरों में ताला लगा देते हैं और हर कोई काम पर जाता है। काम में छोटा-बड़ा नहीं है, जो काम मिलेगा उसको करना पड़ेगा।

इसका कारण यह है कि चीन प्राचीनकाल से नास्तिक देश रहा है। जैसे अपने यहाँ ईश्वर को मानते हैं, जिसने दुनिया बनायी, चाँद-तारे बनाये, वहाँ ऐसा नहीं मानते। उनके विचारों पर सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा है कन्फ्यूशियस का। वे लोग नीति, धर्म और आचार को बहुत ज्यादा मानते हैं। ईश्वर उनके जीवन में आता नहीं है। हाँ, देवी-देवताओं की जो पूजा-मनौती होती है, वह सब तो मानते ही हैं। भूत-प्रेत, टोना-टोटका, इस देवी की ऐसी पूजा कर दोगे तो बेटा हो जाएगा या लड़की की शादी हो जाएगी, यह सब वहाँ भी चलता है। जैसे हम लोगों के यहाँ होता है कि हनुमानजी को पूजो तो ऐसा होगा, संतोषी माँ को पूजो तो वैसा होगा। वे लोग बहुदेवतावादी हैं, मगर एक सर्वोच्च सत्ता, जैसे इस्लाम में अल्लाह, ईसाई धर्म में गॉड या वेदान्त में ब्रह्म है, वह चीन में नहीं है। इसलिए जब चीन का बौद्ध धर्म से संपर्क हुआ तो वे बहुत प्रभावित हुए।

भगवान बुद्ध और कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त बहुत मिलते-जुलते थे। इसलिए उन्होंने यहाँ से आचार्य पद्मसम्भव को चीन बुलाया। वहाँ संस्कृत का शिक्षण शुरू हुआ। सबसे पहले हिन्दुस्तान से बौद्ध धर्म चीन गया, फिर चीन से कोरिया और अंत में कोरिया से जापान। जहाँ तक रीति-रिवाजों का सवाल है, यही रीति-रिवाज उनके भी हैं। वहाँ भी लड़कियाँ भारी पड़ती हैं। लड़की की शादी में वहाँ बहुत दिक्कत होती है।

थाइलैण्ड में लोग खाने में नारियल और मूँगफली का बहुत प्रयोग करते हैं, बिल्कुल दक्षिण भारत की तरह।

इसका कारण है। जैसे अँग्रेजों के दुनियाभर में उपनिवेश थे, वैसे ही कई सौ साल पहले हिन्दुस्तान के भी उपनिवेश थे। इसलिए वहाँ तुमको नाम, भोजन, रहन-सहन, बहुत-सी चीजें एक समान मिलेंगी। परन्तु बहुत-सी

चीजें ऐसी भी हैं जो हिन्दुस्तान में वहाँ से आईं। रुद्राक्ष दक्षिण-पूर्वी एशिया का है। वहाँ बहुत होता है, जंगल ही जंगल हैं। कमण्डल जो साधु लोग रखते हैं, वह वहाँ होता है। वहाँ डबल नारियल होता है, उसको बीच से काट कर, लकड़ी लगाकर दो कमण्डल बनाते हैं। वैसा नारियल यहाँ नहीं होता।

ऐसी बहुत-सी चीजें तुमको मिलेंगी जो वहाँ से आई हैं, जैसे, साधु को भिक्षा देना। हिन्दुस्तान में अब बहुत मुश्किल है। गरीब आदमी दे नहीं सकता, अमीर आदमी देता नहीं है। लेकिन वहाँ किसी भी घर में चले जाओ, तुमको खाने को मिल जाएगा। हर घर में अतिथि के लिए अलग से चावल बनता है। बच गया तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पाँच घरों में जाने से पेट भर जाता है। लेकिन मध्याह्न से पहले, शाम को वहाँ भिक्षा नहीं देते हैं। दस-ग्यारह बजे दरवाजे पर जाकर खड़े हो जाओ, लड़कियाँ आती हैं, आदमी नहीं, और एक चम्मच तुम्हारे पात्र में डाल देती हैं। पाँच घरों से पाँच बड़े चम्मच, बहुत हो जाता है। वहाँ का रिवाज ही यही है।

थाइलैण्ड में संन्यासी, गेरू वस्त्रधारी, विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए जाते हैं। उनका वहाँ बकायदा प्रवेश होता है। विश्वविद्यालय में कोई बौद्ध दर्शन पढ़ता है, कोई अन्य विषय। थाइलैण्ड में प्रत्येक बौद्ध को कम-से-कम पन्द्रह दिन साधु बनना पड़ता है। राजा से रंक तक, हर एक बौद्ध को कम-से-कम पन्द्रह दिन मठ में रहना होता है। मठ में 10x10 फुट का कमरा दे देते हैं, चटाई, गद्दा, पानी का बर्त्तन, लकड़ी, चीवर और पात्र दे देते हैं। सिर मुड़ा देते हैं। एक लम्बा गेरू कपड़ा देते हैं, उसी को साड़ी की तरह लपेटते हैं। जमीन पर सोना पड़ता है। सुबह उठ कर, नहा-धोकर, मंदिर में कुछ त्रिपिटक वगैरह पढ़ते हैं, जैसे यहाँ रामचरितमानस पढ़ते हैं। पूजा-पाठ के बाद मठ की सफाई होती है। खेती, गाय की देखभाल वगैरह का काम देखते हैं। मठ में दफ्तरी काम नहीं होता है। दस बजे अपना चीवर-पात्र लेकर भिक्षा लेने चले जाते हैं। भिक्षा लेकर पानी के नजदीक किसी पेड़ के नीचे बैठकर खा लेते हैं। जो बचता है उसे पशु-पक्षियों के लिए छोड़ देते हैं और पात्र साफ कर देते हैं। जब वापस आते हैं तब पात्र को उल्टा कर कमरे के बाहर रख देते हैं। इसका मतलब खा लिया। मठ में एक बार ही भोजन होता है, दोनों समय नहीं। राजा-महाराजा भी मठ में रहकर ऐसा जीवन जीते हैं।

– 21 सितम्बर, 1997



अध्याय 13

हमारे वेदों में चार महावाक्य आते हैं – *प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि* और *अयमात्मा ब्रह्म*। इन चार महावाक्यों में हमारे वैदिक मत का सार निहित है। सत्य वही है जो इन चार सूत्रों में कह दिया गया। मैं ब्रह्म हूँ। लेकिन यह जानना कितना कठिन है! क्योंकि जब मैं अपने बारे में सोचता हूँ तो लगता है कि मैं चोर हूँ या डाकू हूँ या बदमाश हूँ या झूठा हूँ। तब अपने को कैसे जानें?

सन्त-महात्मा कहते हैं – पहले अपने को शुद्ध करो। मन को एक जगह पर लाओ, एकाग्र करो, अपने वश में लाओ। अब इस मन को एकाग्र कैसे करोगे? जबरदस्ती तो मन एकाग्र होता नहीं। इसको एकाग्र करने के लिए उपाय है – साकार उपासना। साकार उपासना साध्य नहीं, साधन है, रास्ता है। साकार उपासना का मतलब कीर्तन-भजन, पूजा-पाठ, आरती, तीर्थयात्रा, गुरु बनाना, चेला बनना। ये सब बाह्य साधन हैं।

लकड़ी में आग है, मगर लकड़ी को देखोगे तो क्या दिखेगा? सिर्फ लकड़ी। लकड़ी में आग छुपी है, प्रकट नहीं है। यह आग कैसे प्रकट होगी? रगड़ने से। यूरेनियम से एटम-बम बनता है। यूरेनियम एक पीले पत्थर में मिलता है, जिसका शोधन किया जाता है। जब वह छत्तीस प्रतिशत शुद्ध रहता है, तब उससे बिजली बनती है। जब वह छियानवे प्रतिशत शुद्ध होता है तब उससे बम बनता है। उसमें इतनी भयंकर शक्ति होती है कि अगर यहाँ गिर जाए तो आधा बिहार चौपट हो जाए!

जिस प्रकार यूरेनियम में अणुशक्ति, लकड़ी में आग या सीपी में मोती छुपा हुआ है, उसी प्रकार इस जीवात्मा में ब्रह्म छुपा हुआ है। उसे अलग

करने का तरीका क्या है? केवल *'अहं ब्रह्मास्मि'* कह देने से तुम ब्रह्म नहीं हो जाते। तोते से जिन्दगी भर राम-राम कहलाओ, लेकिन मरते समय टैं ही कहता है। मैं ब्रह्म हूँ, तुमने यह आसानी से बोल तो दिया, मगर घर में जब रोटी कच्ची होती है तब कितना गुस्सा आता है! उस समय तो अपने को ब्रह्म नहीं समझते, बीबी पर खूब बिगड़ते हो। हमारे गुरुजी कहते थे, तीनों कालों में जगत् नहीं और दाल में नमक नहीं!

ब्रह्म को जानने का तरीका क्या है?

सबसे पहले गुरु बनाओ, उसके बाद गुरु-सेवा। गुरु-सेवा का मतलब सिर्फ उनका हुक्का भरना नहीं। अगर वे कहें कोढ़ियों की सेवा करो, तो करो। चाहे वह खेती का काम हो या टॉयलेट साफ करने का, या साग-भाजी काटने का, गुरु जो कहे, वह करना सेवा है। यह नहीं कहना कि हम बी.ए. पास हैं, हम कम्प्यूटर का काम ही करेंगे या हम डॉक्टर हैं, केवल नब्ज ही देखेंगे। सेवा का मतलब होता है अहंकार का त्याग। मान लो तुम बड़े घर के पढ़े-लिखे ब्राह्मण हो और हमने तुमसे कहा – जाओ, रोज सुबह गाय का गोबर उठा कर लाओ। तुम सोचोगे, 'अरे, इन्हें हमारी योग्यता का पता नहीं। इन्हें बता देता हूँ कि मैं चार्टर्ड एकाउँटैंट हूँ, एकाउँट्स का काम कर सकता हूँ।'

यह अहंकार है। मैं विद्वान् हूँ, मैं पैसे वाले का बेटा हूँ, मैं स्त्री हूँ, या मैं पुरुष हूँ, यह सोचना अभिमान है। अभिमान का मतलब अपने को कुछ मान लेना। मान लिया कि मैं स्त्री हूँ, अभिमान हुआ। इसलिए पहली चीज सेवा है। हाँ, सेवा में मुश्किल जरूर होती है। तिब्बत में एक योगी था। उसका नाम था मिलारेप्पा। उसके गुरुजी नालन्दा के स्नातक थे और तिब्बत में रहते थे। जब वह गुरुजी के पास आया, गुरुजी ने कहा, 'बड़ा आया है घर-बार छोड़ कर। जा, रह जा उस बरामदे में।' बड़ी बेइज्जती के साथ रख दिया उसको बरामदे में। जब कभी अन्दर-बाहर जाते थे, उसको एक लात मारते थे, 'ठीक से सो, गँवार कहीं का!' वे हमेशा उसको फटकारते रहते थे और अपने खाने के बाद जो बच जाता था, उसको खाने को देते थे।

एक दिन गुरुजी बाहर चले गये तो गुरु माता ने गर्मागर्म मांस का टुकड़ा पका कर कहा, 'जल्दी से खा ले, गुरुजी के आने के पहले।' उसी समय गुरुजी आ गये, बोले, 'अच्छा, अब मेरी अनुपस्थिति में यह सब भी होने

लगा।' इल्जाम लगा दिया उस पर। बोले, 'तू यहाँ नहीं रहेगा, उस पहाड़ी पर जाकर अपना मकान बना।'

वह बेचारा बारह-चौदह साल का रहा होगा। अब वह पत्थर उठाकर जाए, पहाड़ के ऊपर रखे, फिर नीचे आए। एक दिन मकान बनाते-बनाते वह थक गया। उसने बीच रास्ते में ही पत्थर रख दिया और सो गया। गुरुजी ने जब देखा तो बोले, 'अच्छा! तो तू यहाँ सो रहा था। अब तू यहाँ नहीं रहेगा। सब पत्थर नीचे ले आ।' जितने पत्थर वह ऊपर लेकर गया था, उन सब को वह नीचे लेकर आया। तुम लोग होते तो कहते, गुरुजी का दिमाग खराब है!

इस तरह गुरुजी ने कई बार उससे मकान बनवाया और तुड़वाया। एक दिन वह पत्थर ला रहा था तो उसका पैर फिसल गया। पत्थर लुढ़ककर गिर गया। उसी समय गुरुजी नीचे से आ रहे थे। उसकी गलती पकड़ी गयी। गुरुजी ने पूछा, 'क्या हुआ?' उसने कहा, 'गुरुजी, पत्थर गिर गया।' तो वे बोले, 'तू क्यों नहीं गिर गया पत्थर के बदले!' ऐसा कहकर उन्होंने उसको लात मार कर गिरा दिया। मिलारेप्पा पहाड़ी से गिर गया, लेकिन वह थोड़ी ही देर गिरा, फिर हल्का हो गया, एकदम फूल की तरह हल्का हो गया और उड़कर गुरुजी के चरणों में आ पड़ा। तिब्बत में लोग आज भी उसको 'फूल योगी मिलारेप्पा' के नाम से जानते और मानते हैं।

गुरु का जितना भी नाटक था, उससे मिलारेप्पा को कोई मतलब नहीं था। उसे केवल इतना मालूम था कि गुरुजी मुझे जो कहेंगे, उसे मानूँगा। तब गुरुजी ने उसको साधना बतायी। गुरुजी ने कहा, 'तुम्हारा काम पूरा नहीं हुआ है। अभी तो केवल परीक्षा पूरी हुई कि तुम मेरे चेले हो।' उन्होंने उसे साधना के लिए गुफा बतायी, कहा, 'खाना मत खाओ, सर पर दीपक रखकर पद्मासन लगाकर बैठो। जब तक दीपक बुझे नहीं, उठना नहीं।'

मिलारेप्पा गुफा में रहकर बगल की नदी का पानी पीता था। उसमें बहुत काई जमी हुई थी। उस नदी की काई खाते-खाते उसका शरीर हरा हो गया! मिलारेप्पा की बहन उसको ढूँढती-ढूँढती वहाँ आयी तो देखा कि वह एकदम हरा हो गया है। वैसे तो मिलारेप्पा का संसार भर में नाम है, लेकिन तिब्बत में मिलारेप्पा को लोग बहुत मानते हैं।

कहने का मतलब यही कि व्यक्ति सबसे पहले गुरु बनाए और गुरु के आगे अपना सिर कटवाए। सिर माने अहंकार। यह बहुत ही मुश्किल काम है, क्योंकि हर शिष्य में अपना अहंकार रहता है। योग्यता का, शिक्षा का

अहंकार रहता है। अहंकार कई प्रकार का होता है। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगों से कहा करते थे –

राजा-जमींदार अभिमान त्यागो,
कलेक्टर-तहसीलदार अभिमान त्यागो,
संन्यासी-गुरु अभिमान त्यागो।

गुरु को भी अभिमान होता है। असल में अपने को गुरु मानना ही अभिमान है। इसलिए यह जरूरी है कि शिष्य को अभिमान न हो जाए। तब ही गुरु कुछ बतलाते हैं और बहुत थोड़ी देर में काम बन जाता है। अगर माचिस की तीली गीली रहे तो जलेगी नहीं, लेकिन अगर सूख जाए, तो एक बार में जल जाती है। यह हमारे ही धर्म में नहीं, सब धर्मों में कहा गया है। ईसाई धर्म में भी ऐसी बातें लिखी हैं।

कभी-कभी बुद्धि भी रास्ते में बाधा डालती है।

बुद्धि और भावना दो अलग चीजें हैं। भावना प्राकृतिक है, स्वाभाविक है, शाश्वत है। उसको कोई बनाता नहीं, कोई सिखाता नहीं। किसने तुमको ममता-माया-वासना सिखायी? रोना, हँसना, दु:खी होना, सुख का अनुभव करना, यह सब तुमको किसी ने नहीं सिखाया। यह भावना है, जो बुद्धि से अलग होती है। बुद्धि का अर्जन होता है। बुद्धि माने खोपड़ी। तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श, यह बुद्धि की अभिव्यक्ति है। गर्म-ठण्ढा, सफेद-काला, यह ज्ञान बुद्धि से होता है। भावना में एक अनुभूति होती है। क्रोध, वात्सल्य, कष्ट – इनका अनुभव होता है न? अनुभव जिसमें हो वह है भावना, ज्ञान जिसमें हो वह है बुद्धि।

बुद्धि से ही सब ज्ञान होता है। बुद्धि का आधार होता है अध्ययन या विचार-विमर्श। किताब पढ़ो, विचार करो, मुझसे सुनो, उनसे सुनो, यह सब ज्ञान है। ज्ञान माने जानकारी। हम जो बोल रहे हैं, यह सब जानकारी है। तुम जो ग्रहण कर रहे हो, यह सब खोपड़ी से ग्रहण कर रहे हो। यह भावना का विषय नहीं है। अगर यह भावना का विषय बन जाए तो आदमी मुक्त हो जाए! भावना के आधार होते हैं – श्रद्धा और विश्वास। उनमें प्रश्न चिह्न नहीं होता कहीं भी। तुमने अपने बाप के बारे में कभी प्रश्न किया है क्या? कभी पूछा अपनी माँ से कि साबित करो कि मेरा बाप वाकई मेरा बाप है? इसका क्या

आधार था? श्रद्धा और विश्वास। जो बात हमारे मन में जम गयी, सो जम गयी। वह है श्रद्धा और विश्वास। और जो जमायी जाती है वह श्रद्धा और विश्वास नहीं है। श्रद्धा और विश्वास का नाश नहीं होता। अगर मेरी श्रद्धा टूट गयी, तो वह श्रद्धा नहीं, बौद्धिक धारणा थी। अपनी माँ के साथ तुम्हारी पटरी बैठे या न बैठे, वह भले ही जिन्दगीभर तुमको मारती रहे, पर तुम यह नहीं कहोगे कि यह मेरी माँ नहीं है। वह विश्वास कभी नहीं टूटेगा।

श्रद्धा और विश्वास भावना के आधार होते हैं और इन्हीं के आधार पर हमारे समाज में अनेक सम्बन्ध होते हैं। जैसे, गुरु-शिष्य का सम्बन्ध। आखिर हम कहीं के, तुम कहीं के। न कोई खून का रिश्ता, न जाति का। लेकिन फिर भी एक रिश्ता हो जाता है, जिसका आधार होता है विश्वास। जैसे तुम शादी करके पराये घर से एक लड़की को ले आते हो। वह न तुम्हारे खून की है, न तुम्हारे खानदान की। लेकिन फिर भी तुम कहते हो कि हम और तुम एक हैं, तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो। यह श्रद्धा है। इसमें प्रेम-भाव, वात्सल्य-भाव, माधुर्य-भाव, जितने भाव हैं, सब आ जाते हैं।

कभी-कभी शिष्य किसी कारण नाराज होकर गुरु को छोड़कर चले जाते हैं। इसका मतलब उनमें श्रद्धा-विश्वास नहीं, सिर्फ बौद्धिक अवधारणा थी?

गुरु-शिष्य एक ऐसा सम्बन्ध है, जो सुनने में तो बड़ा अच्छा लगता है, मगर बहुत कम लोग इसको निभा पाते हैं। संसार में हर तरह के लोग होते हैं। जब कोई चोर तुम्हारे घर में नौकर बनकर आता है तब वह तुम्हारे बर्तन धोता है, कपड़े धोता है, खाना बनाता है, सब कुछ करता है, मगर उसकी नजर तुम्हारी सम्पत्ति पर रहती है। उसी तरह बहुत-से शिष्य होते हैं जो अपने गुरु के पास सिद्धि प्राप्त करने के लिए आते हैं। कोई घर से भागा हुआ है, तो किसी का घर में मन नहीं लगता। घर में स्त्री मर गयी या बेटा मर गया या कारोबार में घाटा पड़ गया या किसी ने कुछ कह दिया तो थोड़ी देर के लिए वैराग्य पैदा होता है। उसको कहते हैं क्षणिक वैराग्य। मन दुनिया से हट जाता है और आदमी सोचता है, 'चलो आश्रम जायेंगे, सिर मुड़ा लेंगे, आराम से भगवान का भजन करेंगे।' ऐसा सोचकर भी बहुत-से लोग आते हैं। कई लोग यह सोचकर हमारे पास आते थे कि स्वामीजी हमको विदेश भेजेंगे। चार-पाँच साल रहते, जब देखते कि स्वामीजी तो विदेश नहीं भेजते,

छोड़कर चले जाते और कहते कि स्वामीजी अच्छे नहीं हैं। मैं यह सब अच्छी तरह से जानता था।

शिष्य बनने के लिए जो लोग आते हैं, वे कई दृष्टिकोण लेकर आते हैं और जो जिस दृष्टिकोण से आता है, उसको वही प्राप्ति होती है। परन्तु जो यह सोचकर गुरु के साथ रहने के लिए आता है कि अब तो जीना यहाँ, मरना यहाँ, और उसके मन में कुछ बनने, कुछ करने, कुछ होने की तमन्ना नहीं है, तब फिर गुरु उसको गद्दी-नशीन कर दे या उसे पूरी तरह उपेक्षित करके रख दे, कोई फर्क नहीं पड़ता। शादी के समय पराये घर से जब औरत आती है, यह सोचकर नहीं आती कि कुछ समय के बाद सब छोड़-छाड़ कर चली जाऊँगी। अगर मेरा पति शराबी या व्यभिचारी होगा तो छोड़कर आ जाऊँगी। उसके लिए तो जीना यहाँ, मरना यहाँ। मगर ऐसे शिष्य बहुत कम रहते हैं। लाखों में कोई एक निकलता है।

सच्चा शिष्य होना बहुत मुश्किल है। सिख गुरुओं की कहानियाँ पढ़ना। बड़ी अजीब-अजीब कहानियाँ हैं। अंगद नाम के एक सिख आश्रम में बर्तन मांजते थे, नाली साफ करते थे। जब उनके गुरुजी के मरने का समय हुआ, तब सब पढ़े-लिखे शिष्यों ने सोचा कि अब गद्दी पर बैठने की हमारी बारी आएगी। सबकी नजर गद्दी पर थी, पर गुरुजी की नजर किसी और पर थी। उन्होंने कहा, 'अंगद को बुलाओ।' अंगद को बुलाया गया। गुरुजी ने कहा, 'आज से यही तुम्हारा गुरु होगा। गुरु अंगद देव!'

ऐसे और भी गुरु हुए हैं। सब जगह कहानियाँ आती हैं। गुरु का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक नहीं है। तिनके की तरह छोटा हो, वृक्ष की तरह सहिष्णु हो, दूसरों को इज्जत दे और हर समय भगवान का भजन करे। हमारे शास्त्रों में गुरु की सबसे बड़ी विशेषता यही कही गयी है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृण की तरह विनम्र, वृक्ष की तरह सहनशील और दूसरों को सम्मान देने वाला। दूसरों को नीचा न समझे, उनको भिखमंगा, चोर, घूसखोर, व्यभिचारी या दुराचारी न कहे। साधु या गुरु को यह सब कहने का हक है ही नहीं। उसका समय भगवान के नाम-जप, भगवान के कीर्तन में बीते। कीर्तन का मतलब सिर्फ हारमोनियम-तबला बजाना नहीं होता। भगवान

के यश का चिन्तन करने, भगवान की कीर्ति लोगों को बताने को कीर्तन कहते हैं।

अपने समय में गुरु नानक एक महान् गुरु हुए हैं। वे जाति से वैश्य थे। उनको सरकारी अन्न-भण्डार में काम दिया गया। उस समय अनाज तराजू पर तौला जाता था। एक बार वे अनाज तौल रहे थे। जब वे बारह के बाद तेरह पर आए तो तेरा-तेरा ही बोलते रहे। उनको भगवान की याद आ गयी। तेरा-तेरा करके उन्होंने सारा अनाज बाँट दिया। सारा सरकारी गोदाम खत्म कर दिया!

वे वहाँ ज्यादा दिन नहीं रहे। फकीर बन गये। एक बार वे मक्का गये, जो मुसलमानों का तीर्थस्थान है। मुसलमानों के तीर्थस्थानों की कुछ ऐसी महिमा है कि वहाँ दूसरे मजहब वाला जा नहीं सकता, चाहे वह अमरीका का राष्ट्रपति ही क्यों न हो। अपने तीर्थस्थानों की फोटो तक नहीं लेने देते वे लोग। गुरु नानक पहुँच गये वहाँ। दोपहर का समय था, एक जगह आराम से सो गये। एक आदमी उनके पास आया और बोला – 'ऐ! तुम अपना पैर खिसकाओ इधर से। तुम्हारा पैर काबा की तरफ पड़ा हुआ है।' गुरु नानक ने कहा, 'मैं बहुत बूढ़ा आदमी हूँ। जिस तरफ काबा न हो, उसी तरफ मेरा पैर खिसका दो।' यह कहकर वे दुबारा सो गये। उस आदमी ने जहाँ-जहाँ उनका पैर घुमाया, वहाँ-वहाँ काबा भी घूम गया! यह करीब पाँच सौ-साढ़े पाँच सौ साल पहले की बात है। मुसलमानों के तीर्थस्थान पर सिवाय गुरु नानक के और कोई गैर-मुसलमान नहीं गया है। कोई वहाँ जा नहीं सकता, लेकिन नानक जी पहुँच गये।

हमने एक जगह पढ़ा है कि गुरु नानक जनकजी के अवतार थे।

जन्म-जन्मान्तर में तुम क्या थे, हम क्या थे, यह कहना बहुत मुश्किल है। सिर्फ एक जन्म तो होता नहीं, यह पक्की बात है। पुनर्जन्म तो होता ही है। शास्त्र प्रमाण हैं और लोग प्रमाण हैं। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं –

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥4.5॥

'मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं और तेरे भी। यही तेरा पहला और आखिरी जन्म नहीं है। तू अपने जन्मों को नहीं जानता, लेकिन मैं जानता हूँ।' जन्म

तो अनेक होते हैं, लेकिन कौन व्यक्ति किस जन्म में क्या था, यह कहना बहुत मुश्किल है। किन्तु सन्त-महात्माओं ने कभी-कभी संकेत दिया है। हिमालय में एक बहुत सुन्दर जगह है, हेमकुण्ड। वहाँ गुरुद्वारा है और लक्ष्मीजी का मन्दिर भी। वहाँ गद्दा वगैरह देते हैं, गर्म पानी भी देते हैं। नहाने के लिए वहाँ सिख लोग बहुत जाते हैं। वहाँ गुरु गोविन्द सिंह ने पूर्वजन्म में तप किया था, ऐसा लिखा हुआ है। पर सामान्यतया सबको पूर्वजन्म का ज्ञान नहीं होता है। किसी-किसी को होता भी है, तो बोलते नहीं हैं। आखिर बोलने से क्या फायदा?

जैसे धान को काटा तो बीज हो गया, फिर उससे नया धान पैदा हो गया?

हाँ, वह तो देखने को मिलता है। आपके बाद आपकी लड़की, फिर उसकी लड़की, यह तो समझ में आता है। लेकिन यहाँ देहात्मा की नहीं, जीवात्मा की बात हो रही है। यह देह एक पिंजरा, एक घर है। जैसे नौकरी में तबादला होने पर तुम्हें अपना घर बदलना पड़ता है, वैसे ही जीव को चोला बदलना पड़ता है, पुराना शरीर छोड़ कर नया शरीर धारण करना पड़ता है, क्योंकि जीव की अपनी इच्छाएँ हैं। जिन इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं को इस जीवन में वह पूरा नहीं कर पाया, वे सूक्ष्म शरीर में संचित हो जाती हैं।

मान लो, तुमने सोचा कि तुम्हें एक पुत्र हो। यह इच्छा पैदा हुई, एक बीज पैदा हुआ। तुम यह नहीं कह सकते कि वह मात्र एक विचार था। बीज तो है। तुमने मुझे दस साल पहले देखा, फिर आज देख रहे हो। पर पहचान गये न? कैसे पहचाना? तुम्हारे अन्दर की एलबम में मेरी तस्वीर है। इसलिए दस साल के बाद भी हमको पहचान पाए। दस साल पहले जो तुमने मुझे देखा, वह बीज बन गया और सूक्ष्म शरीर में चला गया। उसी के आधार पर आज तुम कहते हो कि मैं आपको पहचानता हूँ। इसको कहते हैं स्मृति या संस्कार।

जो भी इच्छा तुम करते हो, वह सब सूक्ष्म शरीर के अन्दर बीज रूप में पड़ जाती है और मरने के बाद वही कारण शरीर को लेकर दूसरी माँ, दूसरे गर्भ, दूसरी काया की खोज करती है। मनुष्य कभी अधूरे कर्म करके मरेगा नहीं। जब तुम्हारे सब कर्म नष्ट होते हैं, तब ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'अन्तिम मृत्यु' जिसे कहेंगे। जब तक तुम्हारे कर्म पूरे नहीं हुए, जब तक तुम्हारी ख्वाहिशें खत्म नहीं हुईं, तब तक तुम मरोगे कैसे? केवल शरीर

मरेगा। आत्मा तो जीवित रहेगी। अगले जन्म में वह फिर उसी इच्छा को पूरा करने की कोशिश करेगी। कुछ इच्छाओं को पूरा करेगी, कुछ नई इच्छाओं को पैदा करेगी। मुर्गी से अण्डा और अण्डा से मुर्गी, इस तरह यह कारण-कार्य की शृंखला, जन्म-मरण का सिलसिला बराबर चलता रहता है।

इसका मतलब यह कभी छूटेगा नहीं?

यह कभी छूटता नहीं है, रामचरितमानस में पढ़ लो। आखिर यह छूटेगा भी कैसे? जब तक बीज है, चना पैदा होगा ही। जब तुमने चना पैदा किया, तो बीज भी साथ में आ गया। जब वह बीज गिरेगा, फिर चना पैदा होगा। तुमने अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए दूसरा जन्म ग्रहण किया। उन इच्छाओं को पूरा किया, लेकिन पूर्ति करते समय एक नई इच्छा और हो गयी। वह फिर अगले जनम का कारण बनेगी। यह है आवागमन का चक्कर। चक्कर का मतलब वृत्त। वृत्त का न कोई आदि होता है और न ही अन्त।

इस चक्कर को तोड़ने का रास्ता क्या है?

हमारा जो वैदिक धर्म है, जिसको तुम लोग हिन्दू धर्म कहते हो, उसकी मूल प्रतिज्ञा, मूल कल्पना यही है कि चौरासी लाख योनियों को भोगने के बाद जीवात्मा को जो मनुष्य योनि मिली है, वह भोग योनि नहीं, मोक्ष योनि है। मनुष्य शरीर से तुम मोक्ष प्राप्त कर सकते हो। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में प्रसंग आता है, जब रामजी सभी सभासदों को बुलाकर कहते हैं–

बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

यह शरीर साधना का धाम है, मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर भी आदमी अगर मोक्ष प्राप्त न कर सके, तो फिर गया।

यह कलियुग है। कलियुग में हम जो सब कह रहे हैं, ये बहुत ऊँची बातें हैं, व्यावहारिक नहीं। चार युगों में चार पुरुषार्थ होते हैं–अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। कलियुग में दो पुरुषार्थ प्रबल हैं–अर्थ और काम। अर्थ माने पैसा, मकान, जमीन। काम माने इच्छा। इस युग में यही दो पुरुषार्थ प्रधान हैं और साधना भी इन्हीं दो पुरुषार्थों के आधार पर हो सकती है, अन्यथा नहीं। आज अगर कुछ धर्म-कर्म भी करोगे, उसका लक्ष्य होगा अर्थ और काम। तुम

बड़ी से बड़ी तपस्या करो, कुण्डलिनी की साधना करो, प्रार्थना करो, तन्त्र साधना करो, वैष्णव साधना करो, लक्ष्य क्या होगा? अर्थ और काम। भगवान का दर्शन भी अगर करना चाहोगे, तो भी लक्ष्य यही होगा।

इस अर्थ और काम के युग में केवल दो साधनाएँ हो सकती हैं। दूसरों की भलाई और भगवन्नाम का जप। व्यावहारिक बात बता रहा हूँ। सभी चीजें व्यावहारिक नहीं होतीं। कलियुग में मोक्ष वगैरह की बात करो ही मत। यह कोरी बात ही रह जाएगी, जैसे रेगिस्तान में पानी पर व्याख्यान।

भगवान के नाम का जप, चाहे माला के साथ हो या श्वास के साथ, चाहे बोलकर हो या लिखकर, राम का नाम हो या ॐ नमः शिवाय, कोई भी नाम हो, बस, इस कलियुग में आदमी इतना ही कर सकता है। इससे आगे सम्भव नहीं है। एक तो आदमी जीता ही कितने दिन है? चालीस साल होते-होते तो बूढ़ा हो जाता है। बहुत-से लोग तो बचपन से ही डॉक्टर के पास जाते हैं, खाँसने लगते हैं, डण्डा लेकर चलने लगते हैं। हम सब कमजोर पीढ़ी वाले पैदा हो गये हैं। पहले लोग सौ-दो सौ साल जिन्दा रहते थे। भोग कम-से-कम पचास साल भोग लेते थे। अब तो भोग भी पूरा नहीं भोग पाते हैं। वह भी आधा ही रहता है। इसलिए इस समय जरूरत है कि वही काम किया जाए जो हम लोगों के लिए सम्भव हो, व्यावहारिक हो। व्यावहारिक यही है



कि भगवान का नाम सुबह लो, दोपहर को लो, शाम को लो, रात को लो, आधा घण्टा या पन्द्रह मिनट और दूसरों का भला करो, परोपकार। परोपकार का मतलब यह नहीं कि अपने किसी रिश्तेदार के लिए पेट्रोल-पम्प का लाइसेंस दिलवा दिया। जो अभावग्रस्त है, दीन-दु:खी है, उसी के उपकार को परोपकार कहते हैं। बस, इन दो चीजों के अलावा सब भूल जाओ। समय मिले तो गीता, रामायण, भागवत पढ़ो। मगर यही दो चीजें व्यावहारिक हैं, बाकी कोई चीज इस युग में व्यावहारिक नहीं है।

इस युग में समाज की आर्थिक प्रगति का उपाय क्या है?

अभी तो कुछ नहीं है आपके हिन्दुस्तान में। आप बीसवीं शताब्दी में नहीं हैं, यूरोप के ऐतिहासिक मापदण्ड को देखते हुए आप तो अठारहवीं शताब्दी में हो। मगर यह ज्यादा नहीं रहेगा, कोई भी देश आज परिवर्तन के दौर से अछूता नहीं रह सकता। जिस तरह की हमारी स्थिति है, वह ज्यादा चलने वाली नहीं। बहुत मजबूरियाँ हैं। जब चीनी अठारह रुपये सेर हो जाए, आदमी चलेगा क्या? नहीं चल सकेगा। बदलना पड़ेगा, छोड़ना पड़ेगा। देखो, चार बीघा जमीन लेकर किसान मूर्ख की तरह बैठा हुआ है। चार बीघे में उसका पेट नहीं भरता। लेकिन बैठा है, क्योंकि मेरी जमीन है। चार बीघे को अगर लाख-दो लाख में बेच दे और बैंक में पैसा रखे तो आज से आराम से जीवन बिता सकता है। केवल यही है कि मेरे पूर्वजों की जमीन है। बस, इसी में मर रहा है। यह जो उसके दिमाग में पत्थर बैठा हुआ है, वह पत्थर टूट नहीं रहा है।

मगर अब वह पत्थर टूटेगा आगे जाकर। सब गाँव से भागेंगे। युग परिवर्तन के बारे में अगर सुनना है तो फिर यूरोप के लोगों के बारे में सुनना होगा। लोग घर छोड़कर इंग्लैण्ड से अमरीका चले गये, कनाडा चले गये, ऑस्ट्रेलिया चले गये। बीबी-बच्चों को वहीं छोड़ दिया, अकेले चले गये, उनका पूरा समाज बदल गया। अपना घर छोड़कर हजारों मील दूर चले गये। कहाँ ग्रीस और इटली, कहाँ अमरीका और ऑस्ट्रेलिया। वहाँ जाने में ही महीनों लगे। पर आदमी जब तक अपना घर छोड़कर परदेस नहीं जाएगा, लक्ष्मी उसके हाथ आएगी नहीं। लक्ष्मी किसको पसन्द करती है? जो जोखिम उठाता है, जो जुआ खेल सकता है। वहीं सम्पत्ति की सम्भावना होती है।

– 22 सितम्बर, 1997



अध्याय 14

शिष्य से अगर अनजाने में या मूर्खतावश गलती हो जाए और बाद में उसे अपनी गलती समझ में आ जाए, तो उसके लिए क्या प्रायश्चित है?

कोई प्रायश्चित नहीं है। गलतियाँ तो सबसे होती हैं। परन्तु उन्हें केवल जान लेने से आदमी सुधरता नहीं है। कितने लोग शराब पीते हैं, सब जानते हैं गलती कर रहे हैं, मगर फिर भी पीते हैं। केवल जानना कि हम गलती कर रहे हैं, सुधरने के लिए पर्याप्त नहीं है।

हमारे विचार से गलती करके पछताना कोई अच्छा गुण नहीं है। हमारी तो इतनी अधिक अवस्था हो गयी, हमने आत्म-विश्लेषण बहुत किया है। हमें लगता है कि अगर किसी से गलती हो जाए, चाहे वह शिष्य हो या पुत्र-पुत्री हो, उस पर पछताने से कोई समाधान नहीं मिलता। समस्या का समाधान होता है साधना से, प्रयत्न करने से। अगर व्यक्ति ज्यादा खाता है या गलत भोजन खाता है, तो उसका उपाय क्या है? अगर वह शराब पीता है या झूठ बोलता है, तो उसका उपाय क्या है? जो भी गलती वह करे, उसको एक-एक मुद्दा मानकर चलना होगा। सब गलतियों का एक ही समाधान नहीं होता।

चाय पीना हमारी बहुत बड़ी कमजोरी थी, क्योंकि हमारे यहाँ कुमाऊँ में चाय पानी की जगह पी जाती है। ठण्ढा देश है, कौन पानी पीयेगा? दिनभर चाय पीते थे। ऋषिकेश आये, तो चाय मिलती ही नहीं थी। वहाँ कोई चाय पीता ही नहीं था। खैर, हमने उपाय निकाला। हमने सोचा, चाय हमारी कमजोरी है, तो हम चाय बिना दूध मिलाये पीना शुरू कर देते हैं। और इस

प्रकार हमारी चाय की कमजोरी दूर हो गयी। अब चाय पीकर भी रह सकते हैं और बिना पीये भी। यह कैसे हुआ?

हमने पता लगाया तो मालूम चला कि चाय में अफीम का घोल रहता है। जब चाय की पत्ती बनती है, तब उसको सड़ने से बचाने के लिए उस पर अफीम का घोल छिड़का जाता है। उस अफीम के घोल में जब दूध पड़ता है, तब वह तुम पर असर कर जाता है और चाय तुम्हारी आदत बन जाती है। तुम असल में चाय के लिए नहीं, बल्कि अफीम के लिए चाय पीते हो। जब हमको पता चल गया कि चाय हमारी कमजोरी क्यों है, तब हमने बिना दूध की चाय पीनी शुरू कर दी। बाद में हमने उसमें एक और चीज जोड़ दी, नींबू। नींबू एक ऐसी चीज है जो नशे का तोड़ है। इस प्रकार हमारी चाय की कमजोरी दूर हो गयी।

अपनी कमजोरियों का इस तरह एक-एक करके समाधान खोजना पड़ेगा। पछताने से कोई फायदा नहीं। पछताने से गलतियाँ दूर नहीं होतीं, यह मेरा पक्का विश्वास है। पछताना मन की कमजोरी है। कमजोरी दूर करने का कुछ व्यावहारिक समाधान खोजो।

जहाँ तक शिष्य से गलती होने का सवाल है, एक बात जान लो कि आज्ञा का उल्लंघन करना मनुष्य का स्वभाव है। आज्ञा का उल्लंघन वही शिष्य करता है जिसकी खोपड़ी होती है। जो बेटा बुद्धु होता है, वह बाप की हर बात मानता है। या यूँ कहो, जो बेटा बाप की हर बात मानता है, वह बुद्धु है। और जो नहीं मानता, वह अपने मन का है। गुरु और शिष्य में एकता जरूरी है, पर इतनी भी नहीं कि गुरु कहे कि कौवा लाल होता है, तो शिष्य कहे, हाँ गुरुजी, कौवा लाल होता है।

अगर शिष्य के कारण गुरु ने कष्ट उठाया हो तो?

अगर गुरु को कष्ट हो तो वह गुरु है ही नहीं। अगर बाप को बेटे से कष्ट हो तो वह बाप है ही नहीं। बेटा गलती करता है, भाग जाता है, भांग खाता है, गांजा पीता है, मार-पीट करता है, जेल जाता है, अगर इन सबसे बाप को दु:ख होता है, तो वह नालायक बाप है। हमने बेटा पैदा कर दिया, तो कर दिया। अब वह अपना कर्म भोगे, हम अपना कर्म भोगें। आम के पेड़ से कलम निकालकर लगा दी, अब नए पेड़ में बहुत आम हो रहे हैं या उसको दीमक खा रही है, पुराने पेड़ को उससे क्या मतलब?

गुरु-शिष्य या पिता-पुत्र सम्बन्ध एक सामाजिक सम्बन्ध भी है। इसमें आज्ञाकारिता का अर्थ केवल हर बात को मानना नहीं होता है। इसका अर्थ होता है कि शिष्य को गुरु की आज्ञा पर रहना चाहिए, याने गुरु की बतायी हुई कुछ ऐसी चीजों को करना चाहिए, जो कठिन, किन्तु महत्त्वपूर्ण हैं। स्वामी शिवानन्द जी की कई बातें हमको पसन्द नहीं आती थीं। वे कोढ़ी लोगों के पैर धुलवाते थे। हमें कुछ समझ में नहीं आता था। उन्होंने हमें छः महीने के लिए कोढ़ियों के अस्पताल में रख दिया। उसके बाद हमसे ढाई सौ कोढ़ियों के लिए कॉलोनी बनवा दी। उन लोगों के यहाँ हम रोज शाम को जाकर रामचरितमानस पढ़ते थे। बीड़ी का बन्डल भी हम कहीं-न-कहीं से दिलवा देते थे। लेकिन इस काम में हमारा मन नहीं लगता था। हमसे कहा गया, इसलिए हमने किया।

गाँधीजी के जन्मदिन, 2 अक्तूबर को स्वामीजी सब मेहतर लोगों को आश्रम बुलाते थे। उनको स्नान कराकर, साफ-सुथरे वस्त्र पहनाकर, पैर छूकर खाना खिलाते थे। उनका इस पर विश्वास था। कोई कम्बल माँगता, तो तुरन्त दे देते थे। वे यह कभी नहीं कहते कि कल ही तो तुमको दिया है। हम उनसे कहते, 'वह बदमाश तो कम्बल लेकर ऋषिकेश में बेच देता है!' वे कहते थे, 'बेचने दो।' हमको तब बिल्कुल समझ में नहीं आता था, मगर आज इतने सालों के बाद समझ में आता है।

गुरु की बातों को समझने के लिए बुद्धि परिपक्व होनी चाहिए। गुरुजी जो भी कहते थे, हम उनकी बात मानते थे और वही करते थे, मगर हमको विश्वास नहीं था। लेकिन अब हमसे कोई कहे कि तुम्हारा कम्बल कोई देवघर में बेच रहा है, तो हम कहेंगे, 'बेचने दो, क्या फर्क पड़ता है। हमारा काम है कम्बल देना, उसका काम है बेचना। आखिर उसको पचास रुपये तो मिले न? फायदा तो हुआ उसका!'

देखा जाए तो हम लोग भी वही कर रहे हैं। उसने तो कम्बल बेचा, लेकिन हम तो अपनी सारी जिन्दगी बेच रहे हैं। आखिर भगवान ने हमको यह जिन्दगी कुछ करने के लिए दी है। उन्होंने हमें दान में यह बुद्धि, ये इन्द्रियाँ, यह शक्ति दी। उन्होंने सोचा कि ये लोग अच्छी तरह से इसका उपयोग करेंगे। लेकिन क्या हम वाकई इनका सदुपयोग कर रहे हैं? नहीं। तब तो भगवान को हमें सब कुछ देना बन्द कर देना चाहिए। पर वे ऐसा नहीं करते हैं। भगवान कहते हैं, 'मेरा काम है देना, तुम्हारा काम है खयानत

करना।' यह भगवान का दिव्य सिद्धान्त है, जो अब हमको समझ में आता है। हमको मदद करनी है, बाकी जिसको जो करना है, करे।

अगर आस-पास की कोई लड़की, जिसका बच्चा भी है, फिर भी द्विरागमन का सामान लेने आती है, तो हम आश्रम प्रभारी से कहते हैं, 'लड़की अपनी है, उसे द्विरागमन का सामान दे दो। क्या फर्क पड़ता है? इसी बहाने कम-से-कम दूसरों को तो मिलता है। अच्छा काम करने के लिए इतनी छानबीन करोगे तो अच्छा काम नहीं कर सकोगे।' और वास्तव में हम जो अच्छा काम कर रहे हैं, वह दूसरों के लिए थोड़े ही कर रहे हैं, अपने लिए कर रहे हैं। कपड़े में साबुन दुकानवाले की बिक्री कराने के लिए लगाते हो या कपड़े को साफ करने के लिए?

हम लोग जो भी काम करते हैं, अपने लिए करते हैं। तुम अच्छा काम करो या बुरा, वह तुम्हारे पास वापस आने वाला है। तुम दीवार पर गेंद फेंको, वह वापस तुम्हारे पास आती है। हर कर्म की प्रतिक्रिया होती है, फल होता है। तुम जो भी कर्म करोगे, उसका फल पक्का है, कोई उससे छूट नहीं सकता– *अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्।* रामजी भी उससे छूट नहीं सके।

सामान्यतया देखा जाता है कि जो अच्छा काम करने वाला होता है, उस को हर प्रकार का कष्ट और दुःख मिलता है, जबकि बुरे कर्म करने वाले को सुख ही सुख मिलता है। ऐसा क्यों?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। अगर ऐसा होता तो दुनिया जंगल हो जाती। तुमने जो कल कमाया, वह आज खर्चा कर रहे हो और आज जो कमा रहे हो, कल खर्चा करोगे। जो भी दुःख-सुख है, वह कमाई पर निर्भर है। तुमने जो कल किया, उसी का फल आज तुमको मिला है। बदमाशी भी एक कर्म है और उस कर्म का भी एक फल होता है। अगर विश्वास न हो तो चोर-डाकुओं के साथ रहकर देखो। दिन-रात डरे रहते हैं। उनके सिर के ऊपर हमेशा तलवार लटकती रहती है। उनके घर में सब लोग बीमार रहते हैं। लड़की को मिर्गी है, लड़का चल नहीं सकता है। कर्म किसी को छोड़ता नहीं।

दूसरी चीज यह कि आखिर सुख और दुःख की परिभाषा क्या है। तुमको दाल-रोटी सबेरे-शाम मिल रही है, तुम मस्त हो, तुम्हारी बीबी है, अपना काम कर लेती है, गाय को देख लेती है, सफाई वगैरह कर लेती है, तुम्हारा बेटा है, स्कूल में पढ़ता है, दो-चार साल के बाद शादी करेगा, काम पर

लग जाएगा। एक तो यह परिस्थिति है। दूसरी परिस्थिति यह कि घर में बहुत पैसा है, ट्रक भी चलता है, खेती भी है, नौकर-चाकर भी हैं, लेकिन बीबी पटना में पड़ी है, उसको निमोनिया है, लड़का रोज शाम को पीकर आता है, अपनी बीबी को मारता है। किस परिस्थिति में सुख है और किसमें दु:ख?

जब मन चिन्तारहित हो, वह सुख है और जब मन चिन्ताग्रस्त हो, तब दु:ख है। भले ही अच्छे कपड़े पहनो और अच्छा खाना खाओ। यह सुख नहीं, यह तो भोग है। सुख और भोग में बहुत अन्तर होता है। बढ़िया कपड़ा पहनना और सुन्दर ढंग से बाल कटवाकर तेल-फुलेल लगाना, यह भोग है, सुख नहीं। सुख मन की एक स्थिति का नाम है और दु:ख भी एक स्थिति का ही नाम है। इसका रुपये, बीबी, बच्चे, जन्म या मरण से कोई सम्बन्ध नहीं। नहीं तो सबसे दु:खी तो हम साधु लोग हुए, क्योंकि हमारी न बीबी है न बच्चा, न घर है न ही पैसा!

चाह गयी चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिए वो ही शाहंशाह॥

सुख-दु:ख यह होता है। इसलिए यह कहना कि आजकल के जमाने में अच्छे लोग दु:खी हैं और बदमाश लोग सुखी, सही नहीं है। जितने भी बदमाश लोग हैं, कुछ देर बदमाशी करते हैं, लेकिन बाद में उनको भी जमकर चोट लगती है। अमरीका, जर्मनी या फ्राँस जैसे देश, जहाँ पैसा बहुत है, वहाँ लोग कितने दु:खी हैं! दुनिया में सबसे अच्छी जनकल्याणकारी सरकार स्वीडन की है। लेकिन दुनिया में सबसे ज्यादा आत्महत्या की दर भी वहीं है! वहाँ कोई बेरोजगारी नहीं। अगर कोई कुँवारी लड़की गर्भवती हो गयी तो वह सरकार के पास



जाएगी, अपना नाम लिखाएगी, उसका भत्ता निश्चित हो जाएगा। कोई यह नहीं कहेगा कि तुम्हारे बाप की नाक कट जाएगी, तुम गर्भपात कराओ। जिस कम्पनी में वह काम करती है, वहाँ नोटिस चला जाएगा कि वह गर्भवती है, सम्बन्धित नियमों का पालन किया जाए। बच्चा होने पर बीस-पचीस हजार नकद उसको दे दिया जाता है। जब बच्चा होता है, फॉर्म में सिर्फ माँ का नाम रहता है, बाप का नाम पूछते ही नहीं हैं।

कहने का मतलब यह कि जिस देश में इतनी कल्याणकारी सरकार हो, जहाँ कुँवारी लड़की को माँ बनने पर आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं, जहाँ बेकानून लड़का भी जीवित रह सकता है, इतना सुन्दर सरकार का इन्तजाम है, फिर वहाँ इतनी आत्महत्या क्यों? इसलिए कि जिन लोगों के पास पैसा काफी है, जिनको नौकरी, घर, बीबी-बच्चों की चिन्ता नहीं, ऐसे लोगों का मन खिन्न हो जाता है, विषादमय हो जाता है। वे सोचते हैं, ऐसे जीने से तो मरना अच्छा है। जबकि गरीब, अभावग्रस्त लोग तो संघर्ष में व्यस्त रहते हैं। इसलिए यह बात कहना गलत है कि किसी के पास सब कुछ हो तभी वह सुखी है। सुख-दु:ख मन की अवस्था है।

इसका मतलब जनसाधारण को चिन्ता हो, यह अच्छा है?

हाँ, अगर तुम लोगों की चिन्ता बन्द हो जाए, तो बहुत लोग आत्महत्या करने लग जायेंगे या दूसरे गलत काम करने लगेंगे। चिन्ता के कारण तुम्हारा मन एक जंगली शेर या साँप की तरह इधर-उधर भाग नहीं सकता। कहीं बीबी की बीमारी मन को पकड़े हुई है, तो कहीं घर की गरीबी या बेटी की शादी या कचहरी का मुकदमा पकड़े हुए हैं। मन तो हर वक्त व्यस्त है। जब मन व्यस्त होता है, बन्धा हुआ रहता है, वह सब से अच्छी स्थिति है। नहीं तो खाली दिमाग शैतान का घर!

इसलिए हिन्दुस्तान जैसे गरीब देशों में अपराध, आत्महत्याएँ और पागलपन कम होते हैं। यह विद्वानों की मान्यता है। मालदार देशों में एक दिन में जितनी चोरियाँ-डकैतियाँ और खून होते हैं, उतने भारत में सालभर में नहीं होते। हमारे देश में लोग गरीब हैं, अन्धे-लूले-लंगड़े हैं, मगर उतना अपराध नहीं है जितना वहाँ। इंग्लैण्ड की आबादी कितनी कम है, लेकिन वहाँ कितने लोग पागल हैं, कितने मल्टीपल स्क्लेरोसिस वाले हैं, जिनका डॉक्टरों के पास कोई ईलाज नहीं है।

एक दृष्टि से देखा जाए तो गरीबी वरदान है और अमीरी अभिशाप। ईमानदारी से बोल रहा हूँ, कोई बुरा न माने। पैसा अपने साथ दुर्गुण लेकर आता है। लेकिन जो आदमी गरीब है, उसे थोड़ा आध्यात्मिक ढंग से रहना चाहिए, उसके सोचने का ढंग ऊँचा होना चाहिए। उसकी जेब भले ही हल्की हो, उसका बैंक-बैलेन्स भले ही कम हो, लेकिन उसकी विचारधारा और रहन-सहन का तरीका अच्छा हो। साधु-महात्मा तो सदा से ऐसे ही रहते आए हैं। आखिर भगवान बुद्ध, जिनको आज सारी दुनिया मानती है, कैसे रहते थे? रोज दस बजे सबेरे अपना चीवर और पात्र लेकर निकलते थे भिक्षा के लिए। अस्सी साल की अवस्था तक वे भिक्षा माँगते थे। दस बजे का उनका समय था, एक बार खाते थे, उसके बाद पात्र साफ करके रख देते थे। इसके अलावा दिन में कोई चाय-नाश्ता नहीं।

वे राजपुत्र थे, शाक्य वंश के राजा शुद्धोधन के इकलौते बेटे। जब वे पैदा हुए, उस समय कमल के फूल अपने आप खिलने लगे! राजज्योतिषी ने राजा शुद्धोधन से कहा था कि यह लड़का बहुत बड़ा महात्मा होगा। राजा शुद्धोधन घबरा गये। सोचा बुढ़ापे में तो बेटा मिला और वह भी साधु हो जाएगा। उन्होंने उसे सदा महलों में ही रखा, बाहर भेजा ही नहीं। राजकुमार भोग-विलास के साथ आराम से रहता था, जैसे बड़े घरों में बच्चे रहते हैं। जब दूसरों से मिलेगा ही नहीं तो साधु कैसे बनेगा।

एक दिन वे किसी के साथ घूमने जा रहा थे, तो रास्ते में उन्होंने एक बुढ़िया को देखा, फिर एक मुर्दे को देखा। अपने साथी से पूछा कि यह क्या है। उसने कहा, सभी एक-न-एक दिन ऐसे हो जाते हैं। तब जाकर उनके अन्दर का साधु जगा और छत्तीस साल की अवस्था में उन्होंने संन्यास ले लिया। बाद में जब वे बहुत मशहूर हो गये, तब उनके पिता ने उन्हें कपिलवस्तु में आमंत्रित किया। वे वहाँ गये और रहे भी, लेकिन दस बजे वे अपने नियमानुसार भिक्षा के लिए निकल गये। उनके पिताजी ने पूछा, 'कहाँ जा रहे हो?' उन्होंने कहा, 'भिक्षा माँगने जा रहा हूँ।' पिता ने कहा, 'तुम शाक्य वंश के क्षत्रिय हो, राजपुत्र हो, भिक्षा कैसे माँगोगे?' तब बुद्ध ने कहा, 'नहीं, मैं शाक्य वंश का नहीं, मैं बुद्ध वंश का हूँ। मेरा काम है भिक्षा माँगना।'

भगवान बुद्ध इतने प्रसिद्ध हो चुके थे, अजातशत्रु जैसे शक्तिशाली राजा उनके चरणों में शीश झुकाते थे। मुंगेर जिले का जो राजा प्रसीद था, वह भी

उनके चरणों में झुकता था। इसके बावजूद भी वे भिक्षा क्यों माँगते थे? किसी से भी कह देते, लोग खुशी-खुशी भोजन ला देते। लेकिन उन्होंने कहा नहीं। उन्होंने सुख का रास्ता नहीं छोड़ा। सुख का रास्ता है सरलता। अगर कल तुम्हारे पास बीस-पचीस लाख रुपये आ जाएँ, तुम ऐसे थोड़े ही रहोगे। तुम बढ़िया कपड़े, बढ़िया गाड़ी, बढ़िया घर चाहोगे। सम्पत्ति आदमी को बदल देती है, विद्या भी आदमी को बदल देती है। मगर जो आदमी अध्यात्म में रहता है, वह जस का तस रहता है। भगवान बुद्ध जस के तस रहे। अस्सी साल की अवस्था में भी वे भिक्षा लेने जाते थे।

सुख मन की अवस्था है। उसका तुम्हारे रुपये-पैसे, घर-परिवार, बीबी-बच्चे, गाय-घोड़े से कोई मतलब नहीं है। जो सुखी है, वह फिर सुखी ही है और जो दु:खी है, उसे कितना भी पैसा दे दो, कितना भी बड़ा घर दे दो, कितनी बड़ी प्रतिष्ठा दे दो, वह दु:खी ही रहेगा। और दु:ख क्या है? एक प्रकार की शिकायत है। यह नहीं हो रहा है, वह नहीं हो रहा है। दु:ख एक अतृप्ति है।

एक ईसाई साधु थे, सन्त फ्रांसिस, जिनके नाम पर आज बहुत कॉन्वेंट स्कूल चलते हैं। सन्त फ्रांसिस युवावस्था में सेना में काम करता था। एक बार उसे बहुत तेज बुखार आ गया। बुखार के बाद उसका मन घूमने लगा। उसने सेना की नौकरी छोड़ दी और घर आ गया। उसका बाप महाचोर था। जहाँ कहीं लड़ाइयाँ होतीं, वह वहाँ जाकर कालीन, सोना, चाँदी, कपड़े, पैसे, बर्तन वगैरह सब चोरी करके घर ले आता और बेचता था। जब फ्रांसिस घर आया तब उसने देखा कि मेरे गाँव में तो लोग बहुत ही गरीब हैं, जबकि मेरे बाप के पास इतना माल रखा है। फ्रांसिस ने सब चीजें खिड़की से गिरानी शुरू कर दीं। जो भी आदमी आता था, उसको कुछ-न-कुछ दे देता था। उसका बाप उससे बहुत नाराज हो गया। उसको घर से निकाल दिया। फ्रांसिस घर से चला गया और एक जगह पहाड़ पर उसने एक चर्च बनाना शुरू कर दिया। फिर उसको दस-बारह चेले मिल गये, उन्होंने भी साथ दिया, तो बहुत बड़ा चर्च बन गया।

सन्त फ्रांसिस का दिल इतना बड़ा था कि वे कहते थे – अपने पास कुछ रखो ही मत। जो है, दूसरे का है। जो तुमको गाली दे, उसे प्रेम करो। जो मुझे नुकसान पहुँचाए, प्रभु मैं उसकी सेवा करूँ। यह उन्हीं का वाक्य है। मदर टेरेसा भी ऐसी ही थीं। वे तो अलबानिया की रहने वाली थीं, आयरलैण्ड में

नन बनीं, फिर भारत आयीं। इसलिए सुख सबसे बड़ी चीज है और उसका जो रहस्य है, वह आदमी के सोचने के तरीके में है।

क्या हमें सतयुग, त्रेता युग और द्वापर युग में जन्म लेने का अवसर मिलेगा?

सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग, कल युग – ये चार युग बाहर थोड़े ही होते हैं, ये तो मन में होते हैं। कई लोग सतयुगी होते हैं, बहुत-से लोग कलयुगी होते हैं। हम तो अभी भी सतयुग में हैं। जीवनभर सतयुग में रहे। घर में, गुरुजी के आश्रम में, मुंगेर में, सब जगह सतयुग में रहे। यहाँ भी सतयुग में रहते हैं। आस-पास के लोग बहुत सीधे-सादे हैं, वे भी कलयुग में नहीं रहते हैं।

कर्म का सिद्धान्त

व्यक्ति जो कर्म करता है, उसका बीज बनता है। तुमने हमको पाँच साल पहले देखा। आज मिले तो कैसे पहचाना? जब हम-तुम मिले थे तो हमारा बीज तुम्हारे दिमाग में कहीं-न-कहीं पड़ा था। इसे स्मृति कहो या याद, यह बीज है। जैसे गेहूँ या धनिया का बीज होता है, वैसे ही हर एक कर्म से बीज बनता है, किन्तु कुछ बीज मर जाते हैं, और कुछ बीज बचे रहते हैं। जो कर्म आसक्ति से करते हो, उसका बीज पुष्ट रहता है, और जो कर्म अनासक्ति भाव से करते हो, वह बीज मर जाता है, उसका कोई असर नहीं होता है।

वेदान्त में इसको कार्य-कारण सम्बन्ध कहते हैं। कर्म की शृंखला भी कह सकते हैं, मुर्गी से अण्डा हुआ, फिर अण्डे से मुर्गी। यह कब तक चलेगा जी? या तो मुर्गी मरे या अण्डा टूटे, नहीं तो चलता ही रहेगा। एक कर्म से दूसरा कर्म बनता है और यह शृंखला चलती रहती है।

कर्म तीन तरह के होते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो फिक्स्ड डेपोसिट में चले जाते हैं, संचित हो जाते हैं। वे तुरंत फलते नहीं हैं। वे तब फलते हैं जब उनके फलने का समय आता है। आम क्या पूरे साल फलता है? नहीं, अपना समय आने पर फलता है। तुरई अपने समय पर फलती है, गेहूँ अपने समय पर फलता है। ऐसे ही हर कर्म के परिपक्व होकर फलने का एक समय होता है। जो कर्म तुमने किये, वे सब एक जगह इकट्ठे हो गये, वही संचित कर्म हैं। वे आज नहीं फलेंगे, क्योंकि उनका समय नहीं आया है। दूसरे प्रकार के कर्म वे हैं जो आज हो रहे हैं और आज ही फल रहे हैं। जैसे बैंक में करेंट

एकाउँट होता है, आज बीस रुपये जमा किये और कल निकाल लिये। ऐसे ही आज कर्म किया और आज ही भोगना पड़ता है।

तीसरा कर्म होता है प्रारब्ध कर्म। आज जो दु:ख या सुख भोग रहे हो, घर में कोई पैदा हो रहा है, कोई मर रहा है, खूब पैसा आ रहा है या बहुत गरीबी है, यह भी कर्म है न? यह जो सम्पत्ति-विपत्ति या जन्म-मृत्यु या अच्छा-बुरा मिल रहा है, उसे प्रारब्ध कहते हैं। यह तुम्हारी तकदीर है। यह प्रारब्ध किसी कर्म का फल है और केवल फल नहीं, अगले कर्म का कारण भी है। यह केवल अण्डा नहीं, एक नई मुर्गी बनने की सम्भावना भी है। इस तरह प्रारब्ध कर्म दो मुर्गियों से जुड़ा अण्डा है। एक तो पिछली मुर्गी, जिसका अण्डा है, साथ ही इसमें अगली मुर्गी को पैदा करने की भी सम्भावना है। प्रारब्ध कर्म पिछले कर्म का भोग भी है और अगले कर्म का कारण भी।

ये तीन प्रकार के कर्म हमारे विद्वानों ने कहे हैं–संचित कर्म, क्रियमाण कर्म और प्रारब्ध कर्म। संचित कर्म रिवॉल्वर में भरी गोली की तरह है। मर्जी है तो चलाओ, नहीं तो जेब में रखो। तुम्हारे नियंत्रण में है। क्रियमाण कर्म ऐसा है मानो अंगुली रिवॉल्वर के ट्रिगर पर है, चलाओ या नहीं, तुम्हारे नियंत्रण में है। मगर प्रारब्ध कर्म पर तुम्हारा कोई नियंत्रण नहीं। वह गोली तो चल चुकी है। उसे भुगतना ही होगा। आगे क्या करना है, वह सोचो।

यह हमारे वैदिक धर्म का मुख्य सिद्धान्त है। ईसाई, इस्लाम या यहूदी धर्म में यह सिद्धान्त नहीं है। हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्षों में देख-सोच कर यह पता लगाया कि कर्म क्या है, कर्म कहते किसको हैं। जिससे बीज बनता है, वह आखिर है क्या? घास काटना भी तो कर्म है, गोबर उठाकर खड्डे में डालना भी कर्म है। चल रहे हैं, बैठे हैं, सुन रहे हैं, ये सभी तो कर्म हैं। गीता कहती है कि मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। अब सवाल उठता है, कौन-सा कर्म बीज बनता है, कौन-सा नहीं।

कर्म और क्रिया में भेद

हम सबका जीवन कर्म के कारण ही है। श्वास लेना, पलकें झपकाना, कानों से सुनना, खाना पचाना, दिल का धड़कना, हमारा सारा जीवन ही कर्म है। अब वह कौन-सा कर्म है जो बीज पैदा करता है? यह बहुत बड़ा प्रश्न है। इसलिए हमारे यहाँ दो शब्द बनाये गये हैं। एक है क्रिया और दूसरा है कर्म। जो हम बोल रहे हैं या नाक से सूँघ रहे हैं, यह क्रिया है, कर्म नहीं।

कर्म उसको कहते हैं जिसमें मनुष्य का अहंकार मिला रहता है। घर-गृहस्थी हो या चोरी-डकैती, नाम-प्रतिष्ठा या राजनीति, चाहे जो कुछ भी हो, जहाँ तुम्हारा अहंकार है, जहाँ 'मैं' का भाव है, वह कर्म है। कर्म की सबसे बढ़िया परिभाषा भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कही है। जिस काम को करते समय तुम्हारे मन में फल की इच्छा होती है, वह कर्म है। यदि फल की इच्छा न हो और कर्म करते जाओ, तो क्रिया है।

एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। बहुत साल पहले की बात है। हमारे मुंगेर आश्रम में एक बड़ा अच्छा नौकर था, राँची का आदिवासी था। आश्रम के सब काम करता था। खाना बनाता था, बीमारों की सेवा करता था। रात में भी कोई बीमार पड़ जाए तो उसको दवा देना, खाना-पीना देना, सब करता था। एक दिन उसको घर से चिट्ठी आयी कि उसकी स्त्री बीमार हो गयी है। वह घबरा गया। हमारे पास आकर बोला, 'स्वामीजी, हमारी घरवाली बीमार है, सो हम जायेंगे।' हमने कहा, 'मंगल, अगर तू घर जाएगा तो यहाँ काम कौन देखेगा?' उसने कहा, 'स्वामीजी, हम क्या करें?' ऐसा कहकर वह चला गया।

यह कर्म और क्रिया में भेद है। आदमी तो बीमार यहाँ भी पड़ता था। यहाँ भी वह थर्मामीटर लगाता था, गर्म पानी देता था, रातभर जागता था। उसको यह भी पता रहता था कि मरीज को सरदर्द है या पेट में दर्द है या सर्दी-बुखार है। लेकिन उस पर कोई असर नहीं होता था। उसके कर्म का कोई फल उसे नहीं मिलता था। वह केवल सेवा भाव से करता था। वह उसका कर्त्तव्य था। यह हुई क्रिया। मगर जब उसे अपनी स्त्री के बारे में पता लगा, तब कर्त्तव्य नहीं, बल्कि फल की चिन्ता होने लगी। पता नहीं, मर न जाए! मृत्यु भी एक फल है। बीमारी से अच्छा होना भी एक फल है। उसको फल की आशा थी। बस, वही उसका कर्म था। जैसे ही उसे चिट्ठी मिली, उसके मन में बीमारी और उसके परिणाम की भावना आ गयी, कर्म बन गया। कर्म बनने से उसको चिन्ता होने लग गयी और वह सब कुछ भूल गया।

कर्म और क्रिया में इतना ही भेद है। वास्तविक काम में नहीं, सिर्फ भावना में, मन के रुख में भेद है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से यही कहा कि तू लड़ाई से मत डर। कुछ नहीं होगा। केवल यह देख कि मैं लड़ रहा हूँ। तू अहंकार को बीच में मत ला। यह तेरा कर्त्तव्य है, तू क्षत्रिय और इस सेना का सेनापति है। तू लड़ाई में सबसे आगे है और अगर तू ही लड़ाई छोड़कर भाग जाएगा तब तू कर्म का, अपयश का भागी बनेगा।



कर्म से मुक्त होने का जो सीधा उपाय श्रीकृष्ण ने बताया, वह यही कि काम करते जाओ, फल की इच्छा मत करो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥4.5॥

'कर्मणि एव अधिकारस्ते', यहाँ कर्मणि में उन्होंने एकवचन का प्रयोग किया है। तेरा केवल कर्म में अधिकार है। यह तेरे सामर्थ्य के अन्दर की

चीज है। कोई तुझे कर्म करने से रोक नहीं सकता, लेकिन फल पर तेरा अधिकार नहीं है। आम का पेड़ लगाना तेरे अधिकार में है, मगर वह पेड़ फलेगा या नहीं, यह तेरे अधिकार क्षेत्र के बाहर है। वह होगा या नहीं होगा, तू भूल जा। *'मा फलेषु कदाचन'*, फलेषु में उन्होंने बहुवचन का प्रयोग किया है। और अगर कर्म का फल तुझे मिल भी जाए किसी वजह से, तो उसका भोक्ता मत बन। *'मा कर्मफलहेतुर्भूः'*। उसका भोक्ता किसी दूसरे को बना दे। चाहे बेटे को बना, या भतीजे, अन्धे, अनाथ या अपने गुरुजी को, किसी को हेतु बना।

यहाँ स्वाभाविक सवाल उठता है कि अगर ऐसा है तो हम कर्म ही क्यों करें। जब कर्मफल पर अधिकार नहीं है, जब पता ही नहीं कि आम का पेड़ फलेगा कि नहीं, तब पेड़ लगाएँ ही क्यों? इसके लिए भगवान कहते हैं, *'मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि'*, आदमी को अकर्मण्य भी नहीं रहना है। फल मिले या न मिले, अच्छा मिले या खराब, मेरे को मिले या दूसरे को, कर्म मुझे करना है।

'अर्जुन! कर्म पर तेरा अधिकार है, फल पर नहीं। और यदि तुझे फल मिल भी जाए तो उसका हेतु किसी दूसरे को बना दे। किन्तु ऐसा नहीं सोचना कि फिर कर्म क्यों करना। कर्म तुझे करना ही है।' ये चार बातें श्रीकृष्ण ने इस श्लोक में कही हैं और सारी गीता का यही निचोड़ है। यही गीता की मास्टर चाबी है, जिससे सब ताले खुल जाते हैं। इसका मतलब क्या हुआ? खेती करते हो, गाय पालते हो, नौकरी करते हो, व्यापार करते हो, जो कुछ भी करते हो, उसे करो, जितनी अच्छी तरह से कर सकते हो, करो। अब उससे क्या फल मिलता है, यह कहना बड़ा मुश्किल है। इसलिए उसकी चिन्ता करना बेकार है। अगर चिन्ता करोगे तो जल्दी बूढ़े हो जाओगे।

तब तो स्वामीजी, जो लोग पागल या रिटार्डेड होते हैं, चूँकि उनमें अहंकार का तो सवाल नहीं उठता, जब वे गुस्सा करते हैं या कोई अन्य काम करते हैं, तब उनके कर्म नहीं बनते होंगे?

नहीं, उनके कर्म नहीं बनते। इसको मूढ़ योनि कहते हैं। वे लोग मूढ़ योनि में हैं, क्योंकि उन्होंने पूर्व जन्म में कुछ ऐसे कर्म किये होंगे। हमारे यहाँ कर्मों के कई विभाग होते हैं। बच्चे या स्त्री की हत्या, गर्भपात कराना, किसी के यहाँ चोरी, किसी के घर में आग लगाना या किसी के जानवर को मार देना,

इस प्रकार अच्छे-बुरे कई कर्म होते हैं और उनका फल लिखा हुआ है। वह पागल क्यों हुआ? वह जिन्दगीभर बस खाता-पीता, उठता-बैठता ही है। उसने आखिर कौन-सा कर्म किया जिसकी वजह से उसकी बुद्धि गुम हो गयी? हो सकता है उसने किसी का गला दबाकर मारा हो या भ्रूणहत्या की हो। कुछ ऐसा किया होगा जिसका फल इस जन्म में मिला है।

फल तो मिलता है, इसमें दो मत नहीं हैं। यह हम जानते हैं। ऐसा नहीं कि हमने आँखों से देखा नहीं है। यह कहना कि आज मेरी जो हालत है, वह केवल मेरे पुरुषार्थ के बल पर है, सही नहीं है। मैं बहुत लायक आदमी हूँ, कर्मठ हूँ, बहुत अच्छा किसान हूँ, बहुत अच्छा दुकानदार या व्यापारी हूँ, इसलिए मैंने पैसा कमाया है, यह कहना गलत है। वह तुमको तुम्हारे प्रारब्ध के कारण मिला है। कानून की आँखों में हम धूल झोंक सकते हैं, पर अपनी आँख में नहीं। और जो देखने वाला है, वह तो अन्दर में बैठा है। घट-घट में बैठा है, सबकी करनी देखकर रजिस्टर बना रहा है। तब तुम अपने को धोखा कैसे दे सकते हो?

आपने कभी पहले बताया था कि जाने-अनजाने में कुछ देखा या सुना तो उसका भी कर्म बनता है। जैसे ब्राह्मण के बेटे ने रास्ते में जाने-अनजाने में अण्डा बेचने वाली को देखा तो उसे स्वप्न हुआ कि वह अण्डा खा रहा है। तो यह कैसे हुआ?

नहीं, ऐसा नहीं है। बहुत-से काम न चाहते हुए भी मजबूरी से किये जाते हैं। जैसे, जल्लाद किसी मुजरिम को फाँसी पर लटकाता है, लेकिन अगर वह इस कर्म को कर्त्तव्य के भाव से करता है, तो उसको मृत्यु का कर्म नहीं लगता। अगर वह खुश हो जाए कि अच्छा हुआ, मर गया, तब उसका कर्म बनेगा। वैसे ही न्यायाधीश जब मृत्यदण्ड की सजा देता है, तब वह मुजरिम की मृत्यु का कारण जरूर बनता है, मगर उसे उसका फल नहीं मिलता, क्योंकि वह कार्य उसने अपने कर्त्तव्य की सीमा के अन्दर किया है। उसे न कोई दु:ख है, न सुख। पर जब वही न्यायाधीश उस आदमी से नाराज है और मौके का फायदा उठाकर प्रतिकूल फैसला देता है, तब वह उसका भोक्ता बनेगा। उस फैसले में उसका व्यक्तित्व, उसका अहंकार आ जाता है।

जब कर्म में अहंकार होता है तब फल बनता है। जाने-अनजाने, विवश होकर किये काम से कर्म नहीं बनता। एक और उदाहरण ले लो। सेना का

सिपाही लड़ने के लिए जाता है, गोली चलाता है। कितने लोग मर जाते हैं, लेकिन वह उसका कर्म नहीं है। वह क्रिया है, क्योंकि सैनिक सिर्फ अपना कर्त्तव्य करता है।

कर्म का सिद्धान्त बहुत जटिल है, इतना सरल नहीं है। और सारी दुनिया का आधार यही है। सृष्टि इसी के बल पर चल रही है। गर्मी के दिनों में समुद्र से पानी भाप बनकर ऊपर जाता है। प्रकृति वह कर्म कर रही है। गर्मी हुई, भाप बनी, सूर्य दक्षिणायण में गया, मौसम थोड़ा-सा ठण्ढा हुआ तो पानी गिरा। याने प्रकृति को भी कर्म करना पड़ता है। सूर्य तो चौबीस घण्टे कर्म करता है, उसको छुट्टी होती है क्या? हाँ, एक बार अवकाश जरूर लिया था जब राम जी का जन्म हुआ था। सूर्य इतना अवाक् रह गया रामजी को देखकर कि एक महीने तक दिन ही रहा! रामचरितमानस पढ़ो, समझ में आ जाएगा। वरना प्रकृति कभी आराम नहीं करती। कोई भी चीज प्रकृति में क्रियारहित नहीं है। इसलिए इसको कहते हैं संसार। संसार का मतलब जो हमेशा चलता रहता है – *संसरति इति संसारः।*

स्वप्न संस्कारों का नाश है या फिर स्वप्न से भी संस्कार बनते हैं?

नहीं, स्वप्न से संस्कार नहीं बनते हैं। स्वप्न संस्कारों का एक एलबम है, जिसे तुम देखते हो।

इस देश में बहुत-सी महिलाओं की स्थिति शोचनीय है। उनका उत्थान कैसे किया जा सकता है?

यह दुनिया जो चल रही है, इसे औरतें ही चलाती हैं। औरत हमेशा तेज होती है, मर्द हमेशा बुद्धु होता है। अगर औरत के बदले मर्द को ससुराल जाना पड़े, वह तो आत्महत्या कर लेगा। वहाँ किसी से बात ही नहीं कर सकेगा, छोटा-बड़ा महसूस करेगा कि घरजवाई है। लेकिन औरत जब ससुराल जाती है तो लाटसाहब की तरह रहती है। जब लड़ती है तब मर्द का पसीना छूटता है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने उसे ससुराल भेजा। यदि मर्द तेज होता तो उसे ससुराल भेजते। लेकिन नहीं, वह तो वहाँ मर जाएगा। अगर मर्द को ससुराल में कोई कहे बर्तन साफ कर लो, वह मर जाएगा। जबकि स्त्री तो आते ही बर्तन साफ करती है, कपड़े धोती है, गोबर उठाती है। औरत तेज होती है, फिर गाँव की औरत में तो जीवन-शक्ति और ज्यादा होती है।

पर गलतियाँ हम लोगों ने बहुत की हैं, जो कभी-न-कभी तुम लोगों को ठीक करनी होंगी। औरत के कोई कानूनी, सामाजिक या राजनैतिक अधिकार नहीं हैं। अगर पति मर जाए, तो उसकी धन-सम्पत्ति औरत के लिए बेकार है, जब तक कि उसके पास योग्यता न हो। नहीं तो देवर लोग निकाल कर फेंक देंगे। और जहाँ लड़कियाँ पढ़ी-लिखी हैं, योग्य हैं, वहाँ उन्होंने अपने अधिकार की रक्षा की है। जितने प्राचीन धर्म हैं, ईसाई, इस्लाम, यहूदी या हिन्दू, सब धर्मों में स्त्रियों के अधिकारों का दमन किया गया है। मर्द मरे तो औरत को सती होना पड़ता है, पर औरत मर जाए तो पति को सती नहीं होना पड़ता। पति मर जाए तो स्त्री को कपड़ा बदलना पड़ता है, अपनी पहचान बदलनी पड़ती है, लेकिन औरत मर जाए तो मर्द को कुछ नहीं करना पड़ता। वह दूसरी शादी कर लेता है। उसको समाज से मंजूरी लेने की जरूरत नहीं। लेकिन मर्द मर जाए तो औरत दूसरी शादी नहीं कर सकती है। समाज चाहेगा तो ही शादी हो सकेगी।

यह सब अन्याय है और इस अन्याय के कारण स्त्री को बहुत कष्ट है। पर इतना होते हुए भी स्त्री बहुत तेज है। यदि स्त्री के साथ न्याय किया जाए, उसके पास समान अधिकार हों तो घर में सम्पत्ति, विद्या और संस्कार की बहुत उन्नति होगी, क्योंकि घर को जितना औरत संभाल सकती है, उतना मर्द नहीं। मर्द अगर दूसरे घर के रसोईघर में जाए तो चाय में चीनी के बदले नमक डाल देगा! हाँ, उसे कुछ पता ही नहीं पड़ता है। सब काम उलटा-पुलटा हो जाएगा। लेकिन औरत को घर देखना बहुत अच्छा आता है और वह भी सीमित पैसों में, क्योंकि वह सावधान रहती है।

हम सबको मिलकर विचार-विमर्श करना चाहिए कि स्त्री के साथ हमने जो अन्याय किया है, उसके लिए कुछ-न-कुछ रास्ता कैसे निकाला जाए। स्त्री केवल भोग के लिए नहीं है, यह नियम है। प्राचीन काल में हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध केवल प्रजा के हेतु होता था। स्त्री भोग्या नहीं, जननी है। स्त्री माता है, बच्चे के अन्दर पहले संस्कार वही डालती है, अच्छे-बुरे दोनों। माता का मतलब है प्रथम गुरु। पहला शब्द जो बच्चा निकालता है, माँ ही निकालता है। इसलिए जननी को माँ कहा है। बच्चा जब पैदा होता है तब पापा नहीं कहता पहले। पापा से तो बच्चे का कोई मतलब है ही नहीं, यह तो हम देख चुके हैं। विदेशों में अविवाहित माता के बच्चे को तो पता ही नहीं उसका बाप कौन है। माँ ही बच्चे के लिए आदि से अन्त, सब कुछ है।

सात साल तक बच्चा जो सीखता है, वह उसके लिए अन्तिम है। इसे चाहे मनोविज्ञान कहो या धर्मशास्त्र या हमारी समझ-बूझ। सत्य यही है कि सात साल के बाद बच्चा सीखता नहीं, केवल बाहर से जानकारी लेता है। अगर उसके संस्कार अच्छे हैं, तो वह विचार करता है, संयम से रहता है, सब सोच-समझ कर करता है। ये आदतें माँ ही उसे देती है। संस्कार की शिक्षा सात साल तक माँ ही उसे देती है, क्योंकि एक तो वह उसके साथ रहता है, दूसरा उसका दूध पीता है, तीसरा उसका प्रेम पाता है और चौथा, जो वह कहती है, वह सब समझता है। माँ और बच्चे को एक-दूसरे की भाषा आती है।

कुत्ते के साथ भी ऐसा ही होता है। छः महीने के बाद कुत्ते को सिखाने से भी वह कुछ सीखेगा नहीं। कहाँ टट्टी करनी है, कहाँ नहीं, कहाँ पेशाब करना है, कहाँ नहीं, कहाँ बैठना है, कहाँ नहीं, यह सब छः महीने के अन्दर उसे सिखाओ, नहीं तो छः महीने के बाद उसे कितना मारो-पीटो, वह नहीं सीखेगा। उसकी समझ में कुछ नहीं आएगा। वही हाल तुम लोगों का है। तुम जानते हो अमुक चीज खराब है। मगर उसको छोड़ नहीं पाते हो। क्यों? इसलिए कि सात साल तक तुमको शिक्षा नहीं दी गयी कि बेटा धान में दो चीजें होती हैं, चावल और भूसा। चावल को रखना, भूसे को फेंकना। यह विवेक तो तुमको सिखाया ही नहीं गया।

माँ बच्चे को विवेक का ज्ञान देती है जिससे सत्य और असत्य, ठीक और गलत के बीच पहचान हो सकती है। इसलिए स्त्री का शिक्षित और स्वावलम्बी होना आज के युग के लिए निहायत जरूरी है। एकदम पक्की बात है। कुछ नहीं तो औरत नर्स का ही काम कर ले छः महीना। और कुछ नहीं तो किसी स्कूल में चपरासिन बन जाए। चपरासिन को भी तो ग्यारह-बारह सौ रुपया मिलता ही है न। कम-से-कम उसे विश्वास हो जाएगा कि मैं भी पैसा कमा सकती हूँ। वहाँ पैसा कमाए चपरासिन के रूप में और यहाँ पैसा बचाए घर में। पैसा बनाने के भी तो आखिर दो तरीके हैं, एक पैसा कमाना, दूसरा पैसा बचाना। तब ही उसका असर बच्चों पर पड़ेगा। अगर माँ गँवार हो तो बच्चे क्या सीखेंगे? केवल दूध देती है, चूमती है और गोद में उठाती है, इतना ही तो करती है न? माँ बच्चे को संस्कार देती है, इसलिए उसे माता कहते हैं, यह बात कभी मत भूलना।

– 23 सितम्बर, 1997



अध्याय 15

हिन्दुस्तान को किसी जमाने में सोने की चिड़िया कहते थे, जैसे आजकल अमरीका को कहते हैं। मध्य एशिया से लोग यहाँ कमाई करने के लिए आते थे। इसका नाम मशहूर था–द्वाबा। 'आप' संस्कृत में पानी को कहते हैं, इसी से 'आब' शब्द बना। द्वाबा का मतलब होता है, दो पानी, याने गंगा-यमुना का पानी। दो नदियों के बीच का इलाका बहुत ही उपजाऊ माना जाता है। तब लोग हिन्दुस्तान शब्द कम इस्तेमाल करते थे, ज्यादातर कहते थे, 'द्वाबा चलो'।

बाहर के लोगों को दक्षिण क्षेत्र के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी। दक्षिण के बारे में सबसे पहले जानकारी तब हुई, जब यहूदी लोग भाग कर यहाँ आये। उस समय भी यह उतना मशहूर नहीं रहा, मगर जब जेसुइट पादरी सूरत आये तब उनको दक्षिण भारत के बारे में मालूम हुआ। नहीं तो हिन्दुस्तान का मतलब वे उत्तर भारत से ही लगाते थे। कलकत्ता भी लोगों को मालूम नहीं था। कलकत्ता और उड़ीसा से ज्यादा वे थाइलैण्ड, बर्मा और इन्डोनेशिया को जानते थे।

यहाँ तुर्कमेनिस्तान, अफगानिस्तान वगैरह से लोग आते थे। उस समय अफगानिस्तान हिन्दुस्तान का हिस्सा था। वहाँ अभी भी कहीं-कहीं बौद्ध स्मारक हैं, जो साबित करते हैं कि किसी जमाने में वहाँ बौद्ध धर्म था। ईरान का थोड़ा हिस्सा भी हिन्दुस्तान में आता था। महाराणा सांगा, जो महाराणा प्रताप के वंशज थे, वे ईरान तक सेना ले जाते थे। महाराणा सांगा ने इतनी लड़ाइयाँ लड़ीं कि उनके शरीर में अस्सी से ज्यादा घाव थे! और गुरु नानक तो सीधा मक्का तक गये थे।

ईरान का भारत से बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। अशोक की पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए ईरान गये थे, इन दोनों पर वहाँ हमला भी हुआ था। ईरान में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार था। और हिन्दू विचारधारा का भी बहुत प्रचार था। ईरान का जो पुराना धर्म है, जिसे पारसी कहते हैं, वह वेदों से मिलता-जुलता है। वे अग्नि को पूजते हैं, उनके मन्दिरों में अग्नि जलती रहती है, अभी भी बम्बई में, नवसारी में है। पहले ईरान का धर्म था ज़रथुष्ट्री। पारसी उनकी जाति का नाम है, ज़रथुष्ट्री उनके धर्म का, ज़रथुष्ट्र उनके पैगम्बर का और ज़ेन्दावस्था उनके धर्मग्रन्थ का। उनके यहाँ भी संध्या होती है, वे भी जनेऊ बाँधते हैं, मगर कमर में बाँधते हैं, गठसूत्र की तरह। उनके देवताओं के नाम सोम, अग्नि, इन्द्र आदि से मिलते हैं।

चौदह सौ साल पहले जब मक्का और मदीना से इस्लाम की आवाज उठी तब उस आवाज में सबसे पहली चीज थी, काफिर और मुसलमान। काफिर उसको कहते हैं जो मूर्ति पूजा को मानता है, पत्थर को पूजता है, बुतपरस्त है। बुत का मतलब तुम मूर्ति से लगाते हो, पर यहाँ बुत शब्द की व्युत्पत्ति बुद्ध से हुई है। जो बुद्ध को पूजता था, उसे बुद्धपरस्त कह दिया गया। ईरान में बुद्ध की पूजा बहुत होती थी, इसलिए वहाँ बुद्धपरस्त शब्द इस्तेमाल किया गया। मक्का-मदीना में बुद्धपरस्त शब्द नहीं था, वहाँ था काफिर। जो दीन को माने सो मुसलमान, जो न माने सो काफिर। और ईरान आते-आते काफिर शब्द हट गया, बुद्धपरस्त आ गया। जिसे हम लोग हिन्दुस्तान में मूर्ति-पूजन कहते हैं।

देखा जाए तो सभी लोग किसी-न-किसी तरीके से मूर्ति-पूजन ही करते हैं। वे लोग मक्का का फोटो लगा देते हैं, हाथ जोड़ लेते हैं, लेकिन वह भी तो मूर्ति है। आखिर मूर्ति का मतलब क्या होता है? जिस भी चीज का कोई रूप है, वह मूर्ति है। मूर्ति-पूजा का विरोध तो यहाँ भी बहुत हुआ है। स्वामी दयानन्द जी ने बहुत कड़ा विरोध किया था और पहले के जमाने में भी बहुत विरोध हुआ था। भगवान बुद्ध ने भी विरोध किया था, मगर बाद में उनकी भी मूर्ति बन गयी!

स्वामी दयानन्द की भी तो मूर्ति बनी।

नहीं। मूर्ति या तस्वीर दो प्रकार की होती हैं। एक तुम्हारी, हमारी या किसी की भी हो, दूसरी भगवान की। यदि तुम दयानन्द जी की मूर्ति रखो और उसे भगवान समझकर पूजो, तभी उसे मूर्ति-पूजा कहा जाएगा। अगर मूर्ति

दयानन्द जी का प्रतीक रहेगी, तो वह स्मारक है, मूर्ति नहीं। वह तुमको उनकी याद दिलाती है। जिसको तुम भगवान समझ कर पूज रहे हो, वही मूर्ति है।

बौद्ध, जैन, आदि जितने धर्म बाद में आये, उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। कबीरदास जी ने भी विरोध किया। उन्होंने कहा है–

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार॥

मूर्ति-पूजा का तो प्राय: सभी ने विरोध किया है। वेदान्ती भी कहते हैं कि भगवान की मूर्ति नहीं होती। मगर जहाँ एक तरफ बौद्ध धर्म मूर्ति-पूजा और वेदों का विरोध करता था, वहीं दूसरी तरफ वैष्णव धर्म मूर्ति-पूजा में विश्वास रखता था। बौद्ध, जैन और वैष्णव धर्म का भारत में लगभग एक ही समय उदय हुआ। उनका विकास समानांतर चला है। इसलिए बौद्ध, जैन और वैष्णव धर्म में एक चीज समान देखते हो, आचार-विचार। तीनों के आचार-विचार समान हैं। झूठ नहीं बोलना, माँस नहीं खाना, लहसुन नहीं खाना, शराब नहीं पीना, ये सब तीनों में समान हैं।

जब ईसामसीह हिन्दुस्तान आये, उस वक्त बौद्ध धर्म और वैष्णव सम्प्रदाय बहुत व्यापक हो गये थे। इसलिए ईसामसीह पर बौद्ध और वैष्णव विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा है। वैष्णव लोग आचार-विचार और भगवद्-भक्ति पर जोर देते हैं और बौद्ध लोग आचार-विचार, धर्म-कर्म और गुरु पर जोर देते हैं। भगवान का सवाल तो उठता नहीं बौद्धों में। जब ईसामसीह यहाँ आये, उन्हें यही दो मुख्य चीजें मिलीं – बौद्धों की नैतिकता और वैष्णवों की भक्ति। और वे इन्हीं दोनों को लेकर गये। ईसाई धर्म यही है – वैष्णवों की भक्ति और बौद्धों का आचार शास्त्र।

पहले लोगों के आने-जाने को नियंत्रित करने के लिए क्या कोई वीसा प्रणाली थी?

पहले वीसा प्रणाली नहीं थी। लोगों को सेना के द्वारा रोका जाता था। जैसे एक हजार साल पहले पारसी यहाँ ईरान से भागकर आए। वहाँ जितने बड़े-बड़े लोग थे, वे जहाजों में हजारों की संख्या में वहाँ से भागे। वे गुजरात के तट पर पहुँचे, जहाँ उनको रोका गया। उनके नेता ने गुजरात के सम्राट् को अपनी स्थिति बतायी और कहा कि हम पनाह चाहते हैं। हिन्दुस्तान का पहले

से यह सिद्धान्त रहा है कि जो शरणागत को अपना भला-बुरा सोचकर शरण नहीं देता, उसको पाप लगता है।

शरणागत जब तुम्हारे पास आता है तब तुम अपना हित-अहित सोचो ही मत। यह पाप है। इसलिए गुजरात के सम्राट् मना तो नहीं कर सके। उन्होंने दूध से भरा एक गिलास पारसियों के नेता को भिजवाया। उन्होंने जब गिलास देखा तो दूध में चीनी मिलाकर घोल दिया और वापस भेज दिया। मतलब यह हुआ कि हम-तुम मिल कर रहेंगे, तुम्हारे दूध को हम मीठा करके रखेंगे, फाड़ नहीं देंगे। तब दोनों के बीच समझौता हुआ कि तुम अपने धर्म का प्रचार नहीं करोगे, उसको केवल अपने समुदाय में रखोगे, गोमांस नहीं खाओगे। खैर, अब तो पारसी लोग खाते हैं। अत: ये नियम बने और नवसारी इनको जागीर में दे दी गयी। वहाँ अग्नि मंदिर बना दिया, उनके दस्तूर गुरु, किसान और व्यापारी लोग रहने लगे।

पहले के जमाने में वीसा प्रणाली नहीं थी। लोग अपने बल पर देश में घुसते और देश में आने वाले लोगों को रोकते थे। हिन्दुस्तान ने क्या किया? जब हिन्दुस्तान में लोग आते तो उनको एक इलाका दे दिया जाता और कहा जाता था, तुम यहीं रहना, यह जमीन है, यहाँ खेती करो, व्यापार करो, जो करना है करो, लेकिन अपने ही इलाके में रहो। तुमको अगर हमारे साथ व्यापार करना है तो यह-यह नियम है। स्थानीय लोगों से कह दिया जाता था कि इन नये लोगों से मिलना नहीं, इनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं।

इस तरह से जाति प्रथा की शुरुआत हुई। उन लोगों को बाहर रखा जाता था। जब कभी जरूरत पड़ती, चालीस-पचास आदमियों को ले लेते थे, मेहतर, चमार, धोबी या नौकर के काम के लिए, मगर उनको अपने ही समुदाय में रहना पड़ता था। वे हमारे बीच नहीं रह सकते थे। पहले का नियम ऐसा था, मतलब स्थानीय लोगों के समाज में दूसरे लोग नहीं रहते थे। शहरों में यह प्रथा नहीं है, लेकिन गाँवों में अब भी है। राजपूतों का इलाका अलग, बनियों का अलग, मुसलमानों का अलग, सब अलग-अलग इलाकों में रहते हैं। क्यों? झगड़ा कम होता है, क्योंकि इन सबके आचार-विचार में अन्तर है।

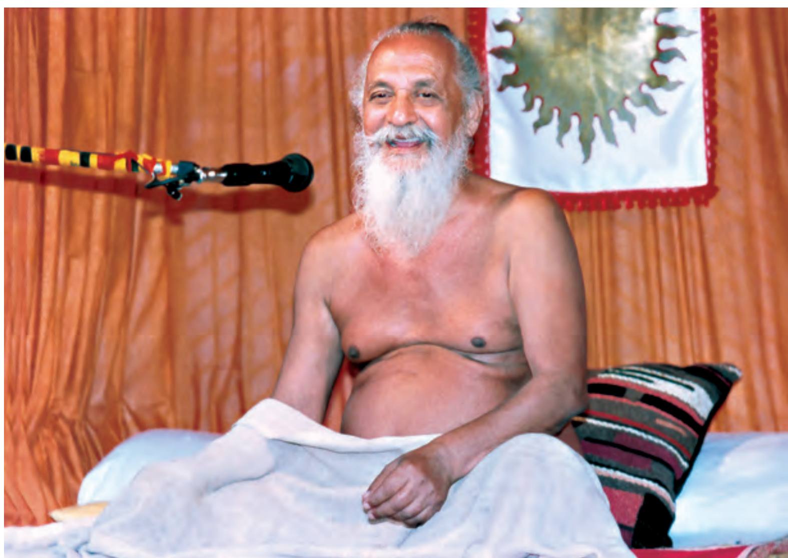
अब देखो इसराइल के वेस्ट बैंक में क्या हो रहा है। वहाँ फिलिस्तीनी मुसलमान रहते हैं और उनके बीच यहूदी। यहूदियों और मुसलमानों के बीच टक्कर की सम्भावना है ही, दोनों एक-दूसरे के ऐतिहासिक जानी दुश्मन रहे हैं। यहूदी लोग कश्मीर के रहने वाले थे। कश्मीर से उनके पूर्वज निकले हैं।

अब सोचो, यहूदी लोग अपनी बाइबिल में कहते हैं कि भगवान ने हमको एक देश देने का वायदा किया है, और वह देश दूध और शहद से भरा है। दूध और मधु इसराइल में है या कश्मीर में? इसराइल में तो केवल धूल है, वहाँ तो पेड़ उगाने के लिए मिट्टी तक बाहर से हेलीकॉप्टर में लाते हैं। दूध और मधु का देश तो कश्मीर है। इसराइल का इलाका फिलिस्तीन का है। ईसामसीह के समय में भी ये झगड़े हुए हैं। बाइबिल में ईसामसीह ने अपने फिलिस्तीनी भक्तों की बड़ाई की है, कहा है कि ये यहूदियों से भी अच्छे हैं।

हिन्दुस्तान में सबको अलग-अलग रखा, क्योंकि सब का रहन-सहन अलग-अलग है। क्षत्रिय लोगों का तो चाल-चलन होता नहीं, खाना-पीना-सोना-लड़ाई-मारपीट, यही उनका काम है। उधर चुटिया-जनेऊ धारण करने वाले ब्राह्मण कहेंगे, 'अरे, इसे मत छुओ, उसे मत छुओ।' अगर लड़की विधवा हो गयी या उसने कुछ गड़बड़ कर दी, तो ब्राह्मण लोग उसका श्राद्ध कर लेते थे। अब क्या होता है मालूम नहीं, लेकिन पहले के जमाने में अगर ब्राह्मण की लड़की किसी गैर-मर्द से गर्भवती हो गयी, तो उसको घर से निकाल देते थे और उसके बाद बाप उसका श्राद्ध कर लेता था। उसको घट-श्राद्ध कहते थे। अब ऐसे समुदाय में अगर मुसलमान रहे तो झगड़ा नहीं होगा? हर समुदाय के रीति-रिवाज अलग होते हैं, इसलिए उन्हें थोड़ा दूर-दूर रखो तो अच्छा है। यह हमारे यहाँ की व्यवस्था रही है।

आज भी शहरों के फ्लैट्स में दिक्कत नहीं होती? एक फ्लैट में पंजाबी, दूसरे में एंग्लो-इण्डियन, तीसरे में मद्रासी रहे तो बहुत मुश्किल होती है। यह सब हमारे पूर्वजों को मालूम था, इसलिए जातियों को अलग रखा गया। ब्राह्मण लोग तो आदिकाल में क्षत्रियों से भी मिलने के लिए तैयार नहीं थे। क्षत्रिय भी अछूतों में आते थे। मगर ब्राह्मणों को लड़ाई करने के लिए क्षत्रियों की जरूरत पड़ी और जिसके हाथ में तलवार, उसके हाथ में सरकार। क्षत्रियों ने तलवार के बल पर ब्राह्मणों को पटा लिया। बाद में वैश्यों ने भी ब्राह्मणों को पटा लिया। बनिये के पास तो पैसा होता है। जिसके पास दाम, उससे सबको काम। ब्राह्मणों ने उनके लिए अपने नियम हलके कर दिये। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के बीच वर्णसंकर सन्तानें भी होने लग गयीं, ये वर्मा, श्रीवास्तव, इत्यादि।

यूरोप में भी यह सब है। शहरों में पता नहीं चलता, लेकिन गाँवों में जातिवाद, नक्सलवाद और वर्णवाद बहुत अधिक है। हम लोगों को पता



नहीं चलता, क्योंकि हम लोग वहाँ केवल नौकरी या पढ़ने के लिए जाते हैं। वहाँ किसी गाँव में जमो तब पता चलेगा। अगरबत्ती जलाने पर उन लोगों को आपत्ति है। वे लोग घण्टी या शंख बजाने पर आपत्ति कर देते हैं। अगर अपने फ्लैट में मसाला छोंक दो, तो दूसरे फ्लैट वाला आपत्ति करेगा।

यूरोप के लोग धर्म के मामले में बहुत सतर्क रहते हैं। वे मुसलमानों को नहीं चाहते हैं। इस्लाम, ईसाई और यहूदी, ये तीनों धर्म एक ही परिवार के हैं। इनके बुजुर्ग थे इब्राहिम। उनकी बीबी से बेटा नहीं हुआ, उनकी अवस्था काफी हो गई, तो बीबी ने कहा, हमसे तो बेटा नहीं हो रहा है, तुम दासी से सम्बन्ध करके बेटा ले लो। इस प्रकार दासी से बेटा पैदा हो गया। उसका नाम रखा इस्माइल। इस बीच बीबी को भी बेटा हुआ, उसका नाम रखा इज़ाक। कहते हैं, इस्माइल की संतान मुसलमान और इज़ाक की संतान ईसाई। इन तीनों मजहबों में वहाँ भी नहीं पटती। यहूदियों के पण्डित बहुत कट्टर होते हैं। वहाँ भी ब्रह्मचर्य आश्रम यहाँ की तरह होता है, लेकिन वे पैंट-कमीज पहनकर आश्रम पढ़ने जाते हैं। उन्हें भी सिर मुड़ाना पड़ता है, उनके यहाँ भी बहुत पूजा-पाठ होता है। हरे कृष्ण मिशन में जितने लोगों ने सिर मुड़ाया है, उनमें अधिकतर यहूदी ही हैं।

– 24 सितम्बर, 1997



अध्याय 16

भगवान दीन-दयालु हैं, करुणासागर हैं। उन्होंने मनुष्य पर कितना उपकार किया है। मनुष्य को जन्म दिया, बुद्धि, शक्ति, विवेक और ज्ञान, सब कुछ दिया। भगवान ने इतनी चीजें दान में दीं, जिनका मनुष्य ने दुरुपयोग किया, लेकिन भगवान ने फिर भी देना नहीं छोड़ा। वे यह तो नहीं कहते–'मैंने मनुष्य को इतनी सारी चीजें दी हैं, फिर भी बदमाशी करता है, इसलिए इसे देना छोड़ देता हूँ।' नहीं, वे कहते हैं–'देते जाओ।' अगर वे धर्मात्मा को बेटा देते हैं, तो बदमाश आदमी को भी। धर्मात्मा को धन देते हैं तो बदमाश को भी। धर्मात्मा और बदमाश, दोनों को अस्सी-नब्बे साल तक जिन्दा रखते हैं। मतलब सब पर उन्होंने कृपा की है। वे यह नहीं सोचते कि यह बदमाश है, इसलिए इसे देना बन्द कर दो।

बस, यही सिद्धान्त हमारा भी है। हम सोचते हैं, हम किसी की कोई भलाई करते हैं और वह उसका दुरुपयोग करता है तो करने दो। यह हमारा स्वभाव बन गया है। मनुष्य का स्वभाव कैसा होना चाहिए? एक साधु गंगा जी में स्नान कर रहा था। उसी समय एक बिच्छू नदी में तैरता हुआ आया। साधु ने बिच्छू को नदी से बाहर निकालने के लिए पकड़ लिया। जैसे ही उसने बिच्छू को पकड़ा, बिच्छू ने उसे डंक मार दिया। बिच्छू नदी में वापस गिर गया, लेकिन साधु ने उसे फिर पकड़ा। दो-तीन बार ऐसा हुआ। तीसरी बार बगल में खड़े एक आदमी ने कहा, 'यह जहरीला बिच्छू है, इसे मरने दो।' साधु ने कहा, 'अगर वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो हम अपना स्वभाव क्यों छोड़ें।'

जीवन का सत्य यही है। जीवन में मनुष्य को यही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इसी सिद्धान्त के आधार पर जीवन बिताना चाहिए। नहीं तो उसे

जीवन में बहुत दु:ख उठाना पड़ता है। अगर हम यह सिद्धान्त नहीं अपनायेंगे तो हमें इस बात से दु:ख होगा कि हमने तो किसी जरूरतमंद को एक गाय या मोटर-साईकिल या घर दिया, लेकिन उसने बेच दिया। बहुत दु:ख होता है कई लोगों को। मगर मुझे दु:ख नहीं होता है।

भगवान का यही नियम है और यही परोपकार का नियम होना चाहिए। परोपकार बदले के लिए नहीं किया जाता। जब तुम किसी का भला करते हो, तो यह सोच कर नहीं करते कि वह तुम्हारा भला करे। जो भी भला किया जाता है, वह नि:स्वार्थ भाव से किया जाता है, बिना प्रतिदान की अपेक्षा के। फिर कोई अच्छा हो या बुरा, उससे अपने को कोई मतलब नहीं है।

दुनिया केवल अच्छे लोगों की नहीं है, यहाँ अच्छे-बुरे सभी लोग होते हैं। दुनिया में अगर सभी अच्छे हों तो जीवन में आनन्द नहीं आएगा। खाली मिठाई ही खाने को मिले तो मजा नहीं आएगा। थोड़ा तीता, थोड़ा-सा कड़वा, थोड़ा चटपटा भी होना चाहिए। सात रस होते हैं, केवल एक ही रहे तो भोजन नीरस हो जाएगा। सब बीमार हो जायेंगे। उसी तरह किसी बगीचे में केवल आम ही आम हों तो वह बगीचा कैसा लगेगा? नहीं, उसमें अमरूद, कटहल, संतरा, सब कुछ होना चाहिए।

भगवान की इस दुनिया में तीन गुण हैं। सतोगुण, अर्थात् शान्त; रजोगुण यानि चलो, चलो, चलो; और तमोगुण, मतलब महाबदमाश। कहते हैं कि सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में गुणों का अनुपात अलग-अलग रहता है। कलियुग में तमोगुण की मात्रा सब से अधिक है, रजोगुण का हिस्सा उससे कम है और सतोगुण का भाग तो बहुत ही कम है। अब दाल ही देखो, पानी कितना, नमक कितना, बराबर नहीं होगा। अगर बराबर करोगे, एक किलो पानी में एक किलो नमक डालोगे तो कैसी दाल बनेगी? वैसे ही मनुष्य में थोड़ा सतोगुण होता है, उससे थोड़ा ज्यादा रजोगुण होता है और तमोगुण बहुत ज्यादा होता है। यह शरीर तमोगुण पर चलता है। इस शरीर का आहार तमोगुण है, सतोगुण नहीं। अगर तुम्हारे अन्दर केवल सतोगुण होगा तो विषाद आ जाएगा। हमने ऋषिकेश में अनेक महात्माओं को देखा है। जितने सतोगुणी महात्मा हैं, सब में विषाद देखा है। हम लोगों को कुछ नहीं होता, क्योंकि हम रजोगुणी हैं। रजोगुण में रक्तचाप थोड़ा ऊँचा रहता है, बस।

जब तक बच्चा स्वतन्त्र नहीं होता, तब तक वह व्यवहार-कुशल और प्रतिभाशाली नहीं बनता। विज्ञान में हुए अनुसन्धानों को देखो, रेलगाड़ी,

मोटरगाड़ी, बिजली, उपग्रह, कम्प्यूटर या हवाईजहाज को देखो। आज से दो सौ साल पहले क्या आदमी सोच सकता था कि छ: घण्टे में यहाँ से दूसरे देश जा सकता है और आसमान में उड़ते हुए खाना खा सकता है, सो सकता है, टट्टी-पेशाब कर सकता है, टेलिफोन पर बात कर सकता है? कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। क्यों उन लोगों ने इतनी उन्नति की और हम लोग पीछे रह गये? आखिर हम लोगों का भी तो दिमाग है। हम लोग गधे थोड़े ही हैं। मगर हम लोगों के जो अभिभावक हैं, बड़े-बूढ़े हैं, समाज है, वह हम लोगों को बाँधे हुए रखता है।

जो व्यक्ति समाज का गुलाम रहता है, वह आगे बढ़ नहीं सकता, क्योंकि उसके सामने बहुत बड़ा प्रतिबन्ध रहता है। बच्चे, माता-पिता, घर-बार, खेती-दुकान, रिश्तेदार, ये सब प्रतिबन्ध हैं। आदमी आगे नहीं बढ़ सकता है। उसके पैर बँधे रहते हैं। इसलिए एशिया ने उन्नति नहीं की। और अभी भी उन्नति का कोई अवसर नहीं है। अभी जो एशिया में हो रहा है, जिसे तुम मुक्त अर्थव्यवस्था या ग्लोबल मार्केट कहते हो, वे लोग अपने हित में कर रहे हैं। फायदा उनको हो रहा है, हमको नहीं। वे अपने लिए बाजार तैयार कर रहे हैं।

व्यापार के दो सिद्धान्त होते हैं। एक तो यह कि दूसरे देश पर हमला करके उसे कब्जे में ले लो, उसे गरीब कर दो। यह पहले जमाने का सिद्धान्त था। लेकिन तब क्या व्यापार करोगे? अगर हमारे पड़ोसी मालदार होंगे तभी तो हम माल बेचेंगे। अपने पड़ोसियों को बरबाद करेंगे, तो माल किसको बेचेंगे? इसलिए उन लोगों का अब यह सिद्धान्त है कि जहाँ व्यापार करना चाहते हो, वहाँ पहले क्रय-शक्ति बढ़ाओ, उन्हें मालदार बनाओ। अब चीन की क्रय-शक्ति हिन्दुस्तान की क्रय-शक्ति से ज्यादा है। इसलिए लोग वहाँ ज्यादा जा रहे हैं। जिन देशों में क्रय-शक्ति नहीं है, वहाँ लोग नहीं जाते हैं। अफ्रीका में कोई नहीं जा रहा है। वहाँ क्रय-शक्ति है ही नहीं। मान लो यहाँ रिखिया में अभी एक कम्पनी खुल जाए, लेकिन क्या यहाँ क्रय-शक्ति है? यहाँ जब कोई पंखा, टॉर्च-लाईट, बढ़िया बरसाती कोट, सुन्दर गमबूट, टी.वी., गोदरेज की अलमारी या फ्रिज ले ही नहीं सकता, तो क्या करेंगे? पहले इसकी क्रय-शक्ति बढ़ाओ, फिर व्यापार चल सकता है। पाश्चात्य व्यापार का यही सिद्धान्त है।

तीसरा सिद्धान्त यह है कि जहाँ मजदूरी सस्ती हो वहाँ काम करो। तभी दुनिया में स्पर्धा कर पाओगे। चीन में मजदूरी बहुत सस्ती है। और

उन लोगों का चौथा सिद्धान्त यह है कि सरकार का नियंत्रण ठीक रहना चाहिए। हिन्दुस्तान भले ही दुनिया का सबसे बड़ा प्रजातंत्र माना जाता है, पर यहाँ सरकार का जनता पर वास्तविक नियंत्रण नहीं है। सरकार का अंकुश यहाँ कमजोर है। चीन में नियम कड़ा है। आदमी टस-से-मस नहीं कर सकता, फट से जेल में डाल दिया जाता है। जिस राष्ट्र में अनुशासन हो, व्यापारियों को उस राष्ट्र में व्यापार करने का मन करता है। व्यापारी अपनी पूँजी की सुरक्षा चाहता है। ऐसा नहीं कि हर बार हड़ताल कर लो। उसे ऐसी सरकार चाहिए जो हड़ताल करने वालों की जम कर पिटाई करे, ताकि दुबारा न कर सकें। यह कहना कि हमारे राष्ट्र में पूर्ण प्रजातंत्र है, काफी नहीं है। सरकार को मजबूत भी होना चाहिए। घर के मालिक का घर के लोगों पर नियंत्रण होना चाहिए।

अपनी तपस्या में विघ्न डालने के कारण शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया। इस प्रसंग का आध्यात्मिक अर्थ क्या है?

जब तुम सोना या हीरा देखते हो, तब तुमको लोभ होता है, क्योंकि उस वस्तु ने तुमको आकृष्ट किया है। अगर वह वस्तु सोना या हीरा नहीं होती, तो तुमको लोभ नहीं होता। इसका मतलब सोना और हीरा बहुमूल्य वस्तुएँ होने के कारण तुम्हारे अन्दर लोभ को जगा देती हैं। इसी तरह सुन्दर नाचने वाली स्त्री हो, फूलों का बगीचा हो, झरना-जंगल हो, तो तुम्हारे मन में कामवासना जागती है। वह है तो तुम्हारे अन्दर, पर उसने जगाया है। पाँच बाण मारे हैं उसने।

हीरा या सोना लोभ का शारीरिक रूप है। स्त्री या पुरुष या नाचने वाला मोर इत्यादि काम के प्रकट रूप हैं। कामदेव कहने का यह अर्थ हुआ। यहाँ पर देव का मतलब क्या होता है? लोभ-देव या क्रोध-देव का मतलब क्या होता है? दुश्मन को देख कर गुस्सा आता है, वह क्रोध-देव हो गया। क्रोध और लोभ इतनी प्रबल शक्तियाँ नहीं हैं, पर कामदेव प्रबल शत्रु होता है। इसलिए उसका नाम ज्यादा आता है। शिवजी ने कहीं लोभ-देव या क्रोध-देव को नहीं जलाया, कामदेव को ही जलाया। काम का मतलब इच्छा, कामना, वासना। इच्छाएँ कितनी तरह की होती हैं? संतान की इच्छा, वंश की इच्छा, धन-सम्पत्ति की इच्छा, खेत-मकान की इच्छा, गाड़ी-टी.वी. की इच्छा।

कामदेव का तात्पर्य केवल स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से नहीं है। कामदेव का सम्बन्ध वित्त, पुत्र और स्त्री, तीनों की कामना से है। यहाँ स्त्री शब्द कहा



है, लेकिन इसमें स्त्री और पुरुष दोनों को जोड़ना पड़ेगा, पुरुष को स्त्री की इच्छा, स्त्री को पुरुष की इच्छा। ये तीन प्रकार की इच्छाएँ हर आदमी को प्राय: होती हैं और इन तीनों को काम कहा जाता है। यह हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है।

जब भगवान शंकर तप कर रहे थे, उस समय उनका चित्त समाधि में था, अर्थात् उन्हें बाहर का कुछ पता नहीं था। वे अपने इष्टदेव राम का ध्यान कर रहे थे, उनको अन्य कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। ऐसी स्थिति में कोई इच्छा मनुष्य को जगा नहीं सकती, केवल स्त्री की इच्छा दिमाग का खण्डन कर सकती है, क्योंकि इसमें बहुत बड़ी ताकत है। और इतनी बड़ी

ताकत है कि कोई मनुष्य इससे अपने को बचा नहीं सकता। कबीरदासजी ने कहा है –

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कमला ह्वै बैठी, तीरथ में भइ पानी॥
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी॥
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी॥

माया ने तो पुरुष-प्रकृति को भी नहीं छोड़ा है। सारी सृष्टि तो उनका ही परिणाम है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से ही सारी सृष्टि पैदा हुई है। ये पाँच अरब लोग संसार में ऐसे ही पैदा हुए क्या? ऊपर से टपक कर आए क्या? ये जितने कुत्ते, गधे, कीड़े-मकोड़े या चिड़िया वगैरह हैं, सब कहाँ से पैदा हुए हैं?

माया बहुत बड़ी शक्ति है। यही एक शक्ति है जो शिवजी को विचलित कर सकती थी। बाकी, लोभ-देव, क्रोध-देव वगैरह से कुछ नहीं हो सकता था। उस समय शिवजी अकेले थे, सतीजी ने तो आत्मदाह कर लिया था। काम-देव को कहा गया, 'ध्यान भंग करो', तो उसने ध्यान भंग करना शुरू कर दिया। शिवजी ने उसे तुरन्त जला दिया। कामदेव की पत्नी रति को बहुत तकलीफ हुई, तब शिवजी ने उसे कहा, 'काम का तो शरीर जलाया है, अब वह बिना शरीर के रहेगा, अनंग रहेगा। वह अब दूसरे के शरीर से काम करेगा।'

यह कहने और समझाने का तरीका है, एक प्रतीकात्मक कहानी है। शिवजी तो स्वयं भगवान हैं, उनके लिए कामदेव कुछ नहीं है। परन्तु मनुष्यों को यह समझाने के लिए उन्होंने लीला की कि मनुष्य को सावधानी से चलना चाहिए। जो मोक्ष के मार्ग पर चलते हैं या जीवन में आध्यात्मिक गुण सम्पादित करना चाहते हैं, उन्हें अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करना होगा, उनको सम्हालकर रखना पड़ेगा। इस कहानी का यह तात्पर्य हुआ। जो तुमको विचलित कर सकती है, वह तुम्हारे अन्दर की ही चीज है। न कामवासना स्त्री में होती है, न लोभ सोने में और न क्रोध दुश्मन में। ये सब तो अपने अन्दर के संस्कार हैं, जो इन्द्रियों के माध्यम से प्रकट होते हैं। कामदेव को अनंग कहने का यह मतलब हुआ कि सावधान रहो, अगर तुम्हें शत्रु दिखाई न भी दे, तो भी तुम खतरे में हो।

आसक्ति और प्रेम में क्या अन्तर है? यह निर्णय कैसे लिया जाए कि प्रेम कहाँ खत्म होता है और आसक्ति कहाँ शुरू होती है?

आजकल की दुनिया में जो भी विचार प्रचलित होते हैं, वे पहले पश्चिम से आते हैं। और पश्चिम ने इस प्रेम शब्द को बहुत ज्यादा प्रचलित किया है, पान का पत्ता बना दिया है इसको! प्रेम का मतलब होता है, एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार की निकटता की भावना। माँ का संतान के प्रति निकटता का भाव है। इसको वात्सल्य कहते हैं। भाई का बहन के प्रति निकटता का भाव है, उसको नाम दे दिया स्नेह। एक दयालु व्यक्ति के अन्दर एक दु:खी गरीब के प्रति जो भावना आती है, उसको कहते हैं दया और एक आदमी की एक स्त्री के प्रति जो भावना हो जाती है, उसको कहते हैं आसक्ति। ये सब प्रेम के ही अलग-अलग रूप हैं। जैसे दूध से रसगुल्ला, रसमलाई, पेड़ा वगैरह बनता है, वैसे ही मनुष्य के अन्दर जो भावना होती है, वह अलग-अलग समय पर, अलग-अलग परिस्थितियों में, अलग-अलग शक्तियों के साथ, अलग-अलग ढंग से सामने आती है। दुश्मन सामने आता है तो घृणा होती है, मित्र सामने आता है तो दोस्ती, बहन सामने आती है तो स्नेह, दु:खी सामने आता है तो दया, स्त्री सामने आती है तो आसक्ति, बेटा सामने आता है तो वात्सल्य, गुरुजी सामने आते हैं तो आदर और भगवान का ख्याल आया तो भक्ति। यह सब उसी एक प्रेम की भावना के रूप हैं। प्रेम का मतलब ही हुआ एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के प्रति निकटता की भावना, अब वह चाहे जिस भी रूप में हो।

प्रेम शब्द पश्चिम से आया है, स्थानीय नहीं है। पश्चिम के लोगों ने इस शब्द का बहुत ज्यादा प्रचार किया है, क्योंकि बाइबिल में इसी शब्द को ईसामसीह का केन्द्रीय सिद्धान्त माना गया है। ईसामसीह प्रेम की मूर्ति थे और उन्होंने प्रेम का ही प्रचार किया। वे कहते थे, अपने पड़ोसियों को अपने समान प्रेम दो।

आज सब लोग यही कहते हैं कि प्रेम करो, लेकिन यह बात किसी की समझ में नहीं आती है। प्रेम करना संसार में बहुत मुश्किल है। कई लोग आगे कहते हैं – प्रेम वही जो नि:स्वार्थ होता है। मजे की बात यह कि जितने लोग नि:स्वार्थ भाव वाले हैं, उनमें प्रेम है ही नहीं। जब हमारा तुम से कोई मतलब ही नहीं तो हम तुमसे क्यों प्रेम करेंगे? मुझे क्या जरूरत पड़ी है तुमसे प्रेम करने की? प्रेम का आधार तो 'स्व' होता है। प्रेम दूसरे के लिए नहीं,

अपने लिए, अपने आनन्द के लिए किया जाता है। कहने को लोग कह देते हैं कि प्रेम नि:स्वार्थ होता है, लेकिन जितने नि:स्वार्थ लोगों को हमने देखा, उनमें प्रेम होता ही नहीं। एकदम नीरस होते हैं वे।

कोई कहता है प्रेम एक बन्धन है, कोई कहता है प्रेम एक जाल है, जिसमें आदमी फँसता है। कोई कहता है प्रेम कुछ नहीं है, मन की एक कल्पना मात्र है। और कोई कहता है प्रेम अपने अन्दर सम्मोहन की प्रक्रिया है।

कई बार प्रेम दु:ख का कारण बन जाता है?

हाँ, देखते ही हैं दुनिया में कितने लोग आत्म-हत्या कर लेते हैं। कितने घर छोड़कर भाग जाते हैं। यह सब प्रेम की वजह से ही होता है। प्रेम स्वार्थ की वजह से ही होता है, बिना स्वार्थ के प्रेम होता कहाँ है? बिना स्वार्थ के केवल भगवान या माँ प्रेम करते हैं। बाकी चाहे तुम्हारा बाप हो या बहन, बेटी या और कोई, कुछ-न-कुछ स्वार्थ मिला रहता है। ऐसा सब लोगों का मत है और हम भी ऐसा ही समझते हैं।

लेकिन माँ भी प्रेम करती है तो साथ में अपेक्षा रखती है कि बच्चा बड़ा होकर बुढ़ापे की लाठी बनेगा।

नहीं, हमें ऐसा कोई अनुभव नहीं हुआ है। माँ पुत्र को प्रेम करना अपना अधिकार समझती है, पुत्र के कल्याण के लिए वह प्रार्थना भी करती है और उसे सही मार्ग पर चलने का आदेश भी देती है। मगर वह अपेक्षा नहीं करती है। वह चाहती जरूर है कि उसके बेटे या बेटी की शादी हो, उनके बच्चे हों, मगर वह अपेक्षा नहीं रखती है। इच्छा करना और अपेक्षा रखना, दो अलग-अलग चीजें हैं। इस पर बहुत चिन्तन हुआ है, हमने भी इस पर बहुत सोचा है।

जब हम घर छोड़ रहे थे, हमने माँ को कुछ कहा नहीं। वह काँग्रेसी थी, उस समय जेल में थी। पिताजी से पूछा तो उन्होंने कहा, 'ठीक है, जाओ।' मैंने कहा, 'माँ से मिलकर जाता हूँ।' पिताजी ने जवाब दिया, "उससे मत मिलो, वह तुमको 'मत जाओ' कह देगी और तुम रुक जाओगे।" तब हमने अपनी नानी से पूछा, वे उस समय वहीं थीं। उन्होंने कहा, 'नहीं, माँ तुमको रोकेगी नहीं।' काफी देर तक हम लोगों की यह बातचीत हुई, आखिर हम मिलने नहीं गये।

माँ का अपने बेटे की उन्नति या अवनति से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। माँ अपने बच्चे के प्रति केवल प्रेम की मूर्ति होती है। औरों के प्रति क्या होती है मालूम नहीं, अपनी बहू के प्रति तो उसकी सारी भावना बदल जाती है। मगर अपने बच्चे के प्रति ममता बहुत होती है। वह हमेशा उसको अपना समझती है, चाहे वह चोर, डाकू, खूनी, साधु, महात्मा, ज्ञानी या जो कुछ भी हो। बच्चा बहुत बीमार हो, उसे चेचक या कोढ़ ही क्यों न हो, लेकिन माँ को कभी उससे घृणा नहीं होती, कभी डर नहीं लगता है। यह हमने अपनी आँखों से देखा है। कोढ़ी कॉलोनी में जाते थे, वहाँ की औरतों को देखते थे, उनको डर नहीं लगता। दुनियाभर में वैज्ञानिक इस बात को मानते हैं और जितनी माताएँ हैं, वे भी मानती हैं। और माँ की वजह से ही बच्चे कमजोर हो जाते हैं।

मुझसे पूछा जाए तो सचमुच में बच्चे बाप के होते नहीं। कानून से बच्चे बाप के होते हैं, शर्मा के बेटे शर्मा, पाठक के बेटे पाठक, वर्मा के बेटे वर्मा, मगर वस्तुत: बच्चे केवल माँ के होते हैं। यह तुम सारी प्रकृति में देख लो। मनुष्य को छोड़कर कहीं भी देख लो, कुत्ते, घोड़े, गधे, गाय, बकरी, शेर, हाथी, ऊँट या चिड़िया में देखो, बच्चे माँ के होते हैं, बाप तो वहाँ लापता हो जाता है। उसे बच्चे के बारे में कुछ मालूम ही नहीं होता।

प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने इस बात को समझा था। इसलिए कहीं भी उन्होंने पितृभूमि शब्द का प्रयोग नहीं किया, मातृभूमि शब्द का उपयोग किया। वेदों के समय तो बच्चों के नाम माँ के ऊपर होते थे– विनता का पुत्र वैनतेय, कौशल्या का पुत्र कौशलेय। बाद में धीरे-धीरे समाज बदला तो पुरुषों को प्रधानता मिलने लगी। जब पुरुषों को प्रधानता मिली तब उन्होंने जमीन का हक, बेटे का कानूनी हक, सब तरह के कानूनी हक अपने हाथ में ले लिये। अब समय का चक्र फिर घूम रहा है। कानून में फेरबदल हो रहे हैं। विदेशों में, नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क और फिन्लैण्ड जैसे देशों में बच्चे माँ के होते हैं, पति की कानून की नजर में कोई हैसियत नहीं है। हाँ, रहते साथ में हैं, लेकिन बच्चे पर उसका कोई कानूनी हक नहीं है। ऐसा ऑस्ट्रेलिया में भी है। अब तो सब जगह ऐसा होता जा रहा है। धीरे-धीरे भारत में भी हो रहा है।

अमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी में औरतें बहुत मालदार हैं। यहाँ जब शादी होती है तो लड़की दहेज ले जाती है, वहाँ जब शादी होती है तो

लड़की लड़के को पालती है। अमरीका में जितने बड़े-बड़े ट्रस्ट हैं, सबकी ट्रस्टी औरतें हैं। हम जानते हैं, क्योंकि बहुत समय तक हमारा इन सब चीजों से सम्बन्ध रहा। हमने जीवन में कभी स्त्रियों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकाला। पाखण्डी रहने से क्या फायदा जी? हम स्त्रियों को मानते हैं, तो मानते हैं। हम उनके वर्चस्व से प्रभावित हैं, उनकी सम्पत्ति, बुद्धि और सौन्दर्य से प्रभावित हैं, तो इसमें अनुचित क्या है? आखिर मेरी माँ भी तो औरत थी न? सुन्दर और बुद्धिमान् रही होगी, मेरे को उसने कुछ अच्छा प्रशिक्षण दिया होगा, क्योंकि मैं जाहिल और गँवार नहीं रहा। जब मैं अपनी माँ को मान सकता हूँ, तो दूसरी स्त्री को भी मान सकता हूँ। इसलिए हमने कहीं भी, कभी भी स्त्री जाति के विरुद्ध न कहा है, न लिखा है।

स्त्री अग्निकुण्ड है, पुरुष घी की धारा है, ऐसा सब लोग लिखते हैं, लेकिन हम इसको स्वीकार नहीं करते। अगर तुमको दुनिया में काम करना है, घर में रहना है, तो तुमको अपनी बीबी और माँ के साथ सम्बन्ध अच्छा रखना होगा। अगर तुम्हारा झगड़ा हो जाए माँ के साथ, बीबी के साथ, कितने दिन रहोगे घर में? कहने का तात्पर्य यह कि अपने घर में जो स्त्री माँ, बेटी या बहन के रूप में है, उसके साथ हम लोगों का व्यवहार अच्छा होना चाहिए। क्यों? उसका कारण है। कहते हैं स्त्री जिस रूप में होती है, माँ ही होती है। दक्षिण भारत में तो छोटी बच्ची को भी अम्मा कहते हैं।

हम लोगों के यहाँ जब भी पूजा-पाठ या जप-ध्यान करते हैं, तो सबसे पहले बोलते हैं– *सदा भवानी दाहिनी सम्मुख रहें गणेश। पंच देव रक्षा करें ब्रह्मा विष्णु महेश।* इसमें चार देवों का नाम आया है, पाँचवे देव का नाम नहीं आया, ऐसा क्यों?

पाँचों का नाम है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और भवानी। पंचदेव का मतलब यह नहीं कि उसमें देवी शामिल नहीं। देव का मतलब होता है भगवान और भगवान में, देवताओं में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं माना जाता है। यह तो हम लोगों की परिभाषा है। हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष होते हैं, इसलिए हम समझते हैं कि वहाँ भी ऐसा ही होगा।

– 25 सितम्बर, 1997



अध्याय 17

हिन्दी भाषा का इतिहास

जिस भाषा को अभी हम लोग बोल रहे हैं, करीब डेढ़ सौ साल पहले इसको हिन्दी नहीं, 'खड़ी बोली' कहते थे। यह मेरठ के एक हिस्से में बोली जाती थी। बाकी मथुरा, वृंदावन, फरुखाबाद वगैरह सब जगहों में 'कहाँ जात हो, का करत हो', ऐसा बोलते थे। लेकिन मेरठ के लोग कहते थे, 'कहाँ जाते हो, क्या करते हो।' हिन्दी में स्वर को मिला देते हैं। जैसे ब्रजभाषा में चौथ को 'च ऊ थ' कहते हैं, जबकि हिन्दी में 'च' के 'अ' और 'ऊ' को मिलाकर 'चौ' हो जाता है। ब्रजभाषा में 'का हय' बोलते हैं, 'ह' और 'य' अलग रहते हैं, लेकिन हिन्दी में हो जाता है 'क्या है'।

बहुत-से कवियों और लेखकों ने जब खड़ी बोली में लिखना शुरू कर दिया तब यह बहुत लोकप्रिय हो गई। उर्दू फौज में ही बोली जाती थी और ब्रज, अवधी, मैथिली आदि भाषाएँ ग्राम्य भाषाएँ कही जाती थीं, क्योंकि ये सब गाँव की भाषाएँ हैं। खड़ी बोली साहित्य की भाषा बन गई, लोगों ने इसे प्रतिष्ठा देना शुरू कर दिया। भले ही यह मेरठ से शुरू हुई थी, लेकिन उत्तर प्रदेश में तो अभी भी वही सब ग्राम्य भाषाएँ बोली जाती हैं। उत्तर प्रदेश बहुत बड़ा इलाका है। बिहार से बनारस तक की भाषा भोजपुरी से मिलती-जुलती है। वहाँ पर 'का करतानी, का खातानी' ऐसा बोलते हैं। फिर जैसे-जैसे अयोध्या की तरफ जाते हो तो अवधी बोलते हैं। थोड़ा बदलाव आ जाता है। और आगे जाते हो तो ब्रजभाषा बन जाती है। फिर और भी आगे जाते हो तो हरियाणवी बन जाती है। थोड़ा दक्षिण की ओर जाते हो तो बुंदेलखण्डी-बघेलखण्डी बन जाती है।



रामचरितमानस की भाषा बुंदेलखण्डी है। उत्तर प्रदेश के दक्षिण में एक जिला है झाँसी, वहाँ राजापुर नाम का एक गाँव है। राजापुर तुलसीदासजी का जन्मस्थान है। यह बुंदेलखण्डी वहाँ की भाषा है। पन्ना, झाँसी, कटनी, यहाँ बुंदेलखण्डी है, और इधर रीवाँ वगैरह में बघेलखण्डी है। उन्नीस-बीस का फर्क है दोनों में। इसलिए रामचरितमानस में कई भाषाओं का मिश्रण देखने को मिलता है। मैथिली भी है, उर्दू भी है, पुरानी अँग्रेजी भी है – जैसे 'नीयरे' माने नजदीक। फारसी भी है और कुमाऊँनी भी। जब हनुमानजी पेड़ पर बैठे थे और रावण वहाँ आया तो लिखा है – *तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।* कुमाऊँनी में लुकना माने छिपना।

रामचरितमानस में तुम को भाषा की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति मिलेगी। अगर तुम रामचरितमानस को धार्मिक पुस्तक नहीं भी मानो, सिर्फ साहित्य ही मानो, तो भी इसकी गणना उच्चतम साहित्य में की जाएगी। उसमें जो शब्द हैं, अलंकार हैं, अभिव्यक्तियाँ हैं, सब बहुत अच्छे हैं। बगीचे में सीताजी और रामजी के बीच जो आमना-सामना तुलसीदासजी ने कराया है, उसे कितनी अच्छी तरह से लिखा है – *लोचन मग रामहि उर आनी,*

दीन्हे पलक कपाट सयानी। बात वही लिखी है जो आज सिनेमा में होती है। सिनेमा में जो दिखाते हैं कि लड़का-लड़की एक-दूसरे के सामने बैठे हैं, एक-दूसरे को देख रहे हैं और दोनों के मन में भाव आ रहे हैं, लेकिन उसी चीज को रामचरितमानस में कितने शील के साथ, कितनी अच्छी तरह से दर्शाया है।

तात्पर्य यह कि जब तुम कोई साहित्य लिखते हो, तो साहित्य में जो नौ रस होते हैं उन्हें लिखते समय तुम्हें समाज की मर्यादा नहीं तोड़नी चाहिए। समाज के भी अपने मूल्य होते हैं। अब आजकल बाप और बेटी कई फिल्में एक साथ नहीं देख सकते हैं। क्यों? इसलिए कि उन फिल्मों में सामाजिक मर्यादाओं को ध्यान में नहीं रखते हैं। रामचरितमानस में एक युवा लड़की और एक युवा लड़का आँख से आँख मिला रहे हैं, हृदय में भाव आ रहे हैं, उनके मन में मनोरथ उत्पन्न हो रहे हैं, सहेलियाँ मजाक भी कर रही हैं, मगर तुलसीदासजी ने मर्यादा बनाए रखी है। यह बहुत मुश्किल है। *चितवति चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता।* कितना बढ़िया वर्णन है! शुरू से आखिरी तक रामचरितमानस साहित्य के दृष्टिकोण से बहुत अच्छा है।

इसके अलावा रामचरितमानस का जो कथानक है, वह निस्सन्देह राजनैतिक दृष्टिकोण से लिखा गया है। रामचरितमानस में तुलसीदासजी ने दो-तीन चिड़िया एक साथ मारी हैं। एक तो शैव और वैष्णव लोगों के बीच झगड़ा ही खत्म करा दिया। एक समय में शिवजी और विष्णुजी को मानने वालों के बीच बहुत झगड़ा हुआ करता था, जैसे आज हिन्दू-मुसलमानों के बीच होता है। सब खत्म करा दिया। उन्होंने कहा, शिवजी और रामजी तो दोस्त हैं। जब शिवजी ने स्वयं पूरा रामचरितमानस पार्वतीजी को सुनाया है तब तुमको क्या झंझट है? एक तो यह झगड़ा खत्म करा दिया, दूसरा तत्कालीन मुगल आतंक का पूरा वर्णन रावण के माध्यम से कर दिया। एक प्रकार से रामचरितमानस में उस समय की सारी-की-सारी राजनीति का वर्णन है।

वनवास के दौरान रामजी ने सीताजी को यह कहकर कि उनका अपहरण होने वाला है, अग्नि में जाने को कहा। बाद में उनकी अग्नि परीक्षा भी ली। इस प्रसंग की क्या सार्थकता है?

रामचरितमानस में बहुत-से प्रसंग तुलसीदासजी ने दो मन से लिखे हैं। उनका अपना मन नहीं करता था, मगर चूँकि यह इतना प्रसिद्ध प्रसंग है, यदि

इसे रामचरितमानस में नहीं लिखते तो लोग उस पर टीका-टिप्पणी करते, कहते क्यों नहीं है? यह वह प्रसंग है जिसमें रामजी ने सीताजी को अग्नि को सौंप दिया और युद्ध के बाद अग्नि ने आकर उन्हें वापस कर दिया। यह प्रसंग इसलिए आया है कि हमारे हिन्दुस्तान में बहुत हजारों वर्षों से स्त्री के लिए जो आदर्श रहा, वह यही था कि उसे एक पुरुष के अलावा दूसरे किसी पुरुष का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। बाकी सब पुरुष उसके लिए पिता, भाई या पुत्र जैसे थे। यह वैदिक परम्परा का सर्वोच्च मूल्य था।

यह धारणा आदिकाल से रही है। अब सीता को इसका अपवाद कैसे कर दें? भले ही सीता और रावण का कोई सम्बन्ध नहीं हुआ, लेकिन वह सीता को आखिर उठाकर तो ले गया न? कंधे पर उठाया हो, गोद में उठाया हो, हाथ से उठाया हो, जैसे भी हो, उठाकर तो ले गया, यही बात आपत्तिजनक है। तो इस आपत्ति को दूर करने के लिए बहुत-से धार्मिक लोगों ने रामायण में इस प्रसंग को जोड़ दिया है। उन्होंने कहा, 'वहाँ वह सीता थी ही नहीं, वह सीता तो पहले ही अग्नि में चली गई थी।' अनादिकाल से वैदिक मत में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का साक्षी अग्नि है। इसलिए इस प्रसंग में अग्नि को ही साक्षी रखा। लेकिन यह जोड़ा हुआ प्रसंग है। तुलसीदास को भी मजबूरन इस प्रसंग को जोड़ना पड़ा, नहीं तो लोग टीका करते।

मगर लव-कुश का प्रसंग उन्होंने नहीं लिखा। उत्तरकाण्ड में सीता-परित्याग के बारे में उन्होंने कुछ नहीं लिखा। उत्तरकाण्ड में उन्होंने बिलकुल दूसरी बात लिखी है। हाँ, इस प्रसंग का संकेत उन्होंने दो-तीन जगहों पर दिया है। उसमें उल्लेख है कि रामजी के ऊपर अयोध्या में एक लोकापवाद चला। उसका चलता-फिरता संकेत है, इशारा मात्र है। सीताजी के बारे में लोकापवाद, रामजी का सीताजी को त्यागना, सीताजी का वाल्मीकि आश्रम में जाना, लव-कुश का उत्पन्न होना, फिर लव-कुश का अश्वमेध यज्ञ में लड़ाई करना, यह सब उन्होंने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड से हटा दिया और हटाकर पूरा काकभुशुण्डि रामायण ले आये।

काकभुशुण्डि रामायण बहुत अच्छी है, उसमें बहुत अच्छी-अच्छी विचारधाराएँ हैं। भक्ति और ज्ञान, साकार और निराकार उपासना में अंतर क्या है, इन सब चीजों को उन्होंने बहुत अच्छी तरह से समझाया है। उत्तरकाण्ड अब बहुत अच्छा हो गया। वाल्मीकि रामायण वैसे पढ़ने में तो बड़ी अच्छी लगती है, परन्तु जब अंत में सीता-परित्याग का प्रसंग पढ़ते हैं तब मन बड़ा

दु:खी होता है, पढ़ने का मन नहीं करता। कितना दु:खद अन्त है! लेकिन तुलसी रामायण का अन्त आनन्दमय है, दु:खमय नहीं।

लेकिन स्वामीजी, मेरे पास एक तुलसी रामायण है जिसमें लव-कुश के बारे में एक पूरा अध्याय है।

किसी ने जोड़ा होगा, तुलसीदासजी ने नहीं लिखा है। रामचरितमानस का जो वर्ण्य विषय है, उसका उल्लेख तुलसीदासजी ने रामचरिमानस में ही बीच-बीच में कर दिया है। उसी में तुलसीदासजी ने बता दिया है कि इसमें कोई लव-कुश प्रसंग नहीं है। उन्होंने उत्तरकाण्ड में बतलाया जरूर है कि रामचन्द्रजी के दो पुत्र हुए। वे बड़े ही विजयी थे, विनयी थे, गुणों के सागर थे। फिर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के भी दो-दो पुत्र हुए।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥

जब उन्होंने इस तरह लिखा है तब ऐसा मानना कि उन्होंने अलग से लव-कुश काण्ड लिखा होगा, यह हमारी समझ में नहीं आता।

जब तक रामजी वनवास से वापस नहीं आए तब तक क्या शत्रुघ्न का भी कोई पुत्र नहीं हुआ?

नहीं, बाद में हुआ।

उसी लव-कुश वाले अध्याय में बतलाते हैं कि शत्रुघ्न ने अपने दो पुत्रों के साथ लवणासुर से युद्ध किया था। बाद में जब शत्रुघ्न ने लव-कुश के साथ युद्ध किया तब लव-कुश केवल दस साल के बालक थे। इसका मतलब शत्रुघ्न के पुत्र आयु में सीताजी के पुत्रों से बड़े हुए?

जैसा मैंने कहा, यह सब तुलसीदासजी ने नहीं लिखा है, बाद में जोड़ा गया है। रामचरितमानस आज से चार-पाँच सौ साल पहले लिखा गया। उस समय वैदिक धर्म का पतन हो रहा था। हिन्दुस्तान में मुगल साम्राज्य जम चुका था। मूर्ति पूजा, साकार उपासना और अन्य वैदिक विचारों का विरोध हो रहा था। राजपूताने के राजा-महाराजा कमजोर हो रहे थे, सब लोगों ने मुगल साम्राज्य

को सलामी देना शुरू कर दिया था। कोई उसका विरोध नहीं करता था। सब ऐशो-आराम से रहने लगे थे। ऐसे समय में जब राजा धर्म और राष्ट्र की रक्षा नहीं करता, मुगल लोग जैसा चाहें वैसा करें, तब उस वक्त की जो संत परम्परा होती है वह इस काम को अपने हाथ में लेती है।

उस वक्त मीराबाई, तुलसीदास, कबीरदास और सूरदास जैसे अनेक लोग एक साथ पैदा हुए। ये सब एक ही शताब्दी में पैदा हुए और इन्होंने केवल भगवद्-भक्ति पर जोर दिया। क्यों? इसलिए कि इस्लाम भी भगवद्-भक्ति प्रधान है। और इसीलिए धर्म के दृष्टिकोण से इस्लाम का कोई विरोध नहीं किया गया। उन्होंने किसी ऐसे धर्म की शिक्षा नहीं दी जो इस्लाम विरोधी था। भगवान की ही भक्ति सबसे ऊपर है, चाहे राम कहो, चाहे शिव कहो। उन्हीं कहानी-किस्सों में से उन्होंने सबसे उत्तम व्यक्ति को ढूँढा। वह नायक निकले रामजी। कृष्णजी को नहीं, रामजी को लिया, क्योंकि रामजी सामाजिक मर्यादाओं के प्रतीक थे। कृष्णजी का जीवन सामाजिक मर्यादाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता। लेकिन रामजी के सामाजिक मूल्यों पर इस्लाम भी कुछ नहीं कह सकता था। इसलिए उस समय की संत परम्परा ने रामजी को युग का नायक स्वीकार कर, उन पर लिखना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे फिर लोगों ने कहानी-किस्से सुनाना, रामायण गाना और रामलीला करना शुरू कर दिया। इससे धीरे-धीरे लोगों के बीच धर्म के प्रति जागृति शुरू हो गई।

उस जमाने में राम और कृष्ण, इन दो व्यक्तियों के बारे में बातचीत करने के लिए, भजन गाने के लिए, कथा करने के लिए अनेक धुरंधर संत हुए। सूरदास ने पूरा कृष्ण चरित्र, मीरा ने पूरा कृष्णप्रेम, तुलसीदासजी ने पूरी-की-पूरी रामभक्ति का प्रचार करना शुरू कर दिया। और उन्होंने कहीं-कहीं पर शिवजी को भी घुसा दिया, क्योंकि उस वक्त जितने भी राजा होते थे, वे सब त्रिपुण्डधारी होते थे, शैव होते थे। यह तो इतिहास की बात है। साधु-महात्मा तो इतिहास का ख्याल रखते हैं, मगर वे राजनीति के रास्ते से नहीं जाते, वे दूसरा रास्ता पकड़ते हैं। आखिर राजनीति क्या है? लोग हमारी बात सुनें, हमारी बात मानें, यही तो राजनीति है। उसी के रास्ते क्यों जाना? अपनी बात सुनाने के लिए दूसरे भी तो तरीके हैं। इन्हीं तरीकों को साधु-महात्मा अपनाते हैं।

धीरे-धीरे मीरा के भजन सब जगह गाए जाने लगे, रामचरितमानस की कथा हर गाँव में होने लगी। अभी तो कुछ नहीं है, मगर हमारे बचपन में

हर गाँव में हर रोज रामचरितमानस गाया जाता था। अनपढ़ लोगों को भी रामचरितमानस सुनते-सुनते याद हो गया था। उसी के साथ-साथ एक और पुस्तक उत्तरप्रदेश और बिहार में चली, जिसे बरसात के दिनों में गाया जाता था। आल्हा और ऊदल, ये उस पुस्तक के दो नायक हैं। यह वीरों की कहानी थी, तलवार की कहानी थी। आल्हा बहुत सुन्दर और ऊदल बहुत वीर था। बरसात के दिनों में बैठकर जब वह गाता था, तो जहाँ भी जाता था वहाँ सब राजकुमारियाँ उसके फेर में पड़ जाती थीं, तब लड़ाइयाँ होती थीं। वह धार्मिक पुस्तक नहीं थी। मार-पीट, राजाओं का लड़ाई-झगड़ा, शहजादियों के साथ प्रेम, शहजादी का अपहरण करना, इन सबका वर्णन उस पुस्तक में है। और सब उसको गाते थे।

उन दिनों हम अलमोड़ा में थे। वहाँ बागेश्वर मंदिर में बड़ा लंबा-चौड़ा अहाता था, वहाँ रामलीला होती थी। हर साल पता नहीं कहाँ-कहाँ से लोग आते थे। कुमाऊँ में पैदल चलना बहुत कठिन है, पाँच-छः घण्टे लगते हैं। लेकिन जिन नौ दिन रामलीला होती थी, अलमोड़ा खचाखच भरा रहता था। उसके बाद अलमोड़ा में उदय शंकर आए। उन्होंने अपना सांस्कृतिक केन्द्र खोला, जहाँ उन्होंने नए तरीके से रामायण दिखानी शुरू की – छाया रामायण। छाया का खेल। अलमोड़ा के उत्तर-पूर्व की तरफ एक जगह है, वहाँ बड़ा मंच बनाया, उसके पीछे से वे छाया प्रदर्शन करते थे। एक व्यक्ति रामायाण गाता जाता था और वह जो भी गाता था, उसे छाया के माध्यम से दिखाया जाता था। यह अश्विन नवरात्रि के समय होता था। उसके बाद रामलीला होती थी। उन दिनों रामलीला बहुत प्रचलित थी, गाँव-गाँव में रामलीला होती थी। रामलीला, राजा हरिश्चन्द्र, सत्यवान-सावित्री, नल-दमयंती, ये सब उस समय के बहुत मशहूर नाटक थे।

रासलीला भी तो होती होगी।

रासलीला तो अभी भी होती है। मथुरा की रासलीला बहुत मशहूर है, उसमें राधा और कृष्ण को एक लड़की और लड़के के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जहाँ-जहाँ रासलीला होती है, एक छोटी बच्ची राधा बन जाती है और छोटा लड़का कृष्ण बन जाता है। ऐसी बहुत-सी रासलीला मण्डलियाँ हैं। जैसे अयोध्या में रामलीला मण्डलियाँ हैं, वैसे मथुरा-वृंदावन में रास मण्डलियाँ हैं।

परन्तु असली रास सौराष्ट्र में होता है, डाण्डिया रास। उसमें न राधा है न कृष्ण, कोई व्यक्ति नहीं है। मगर रास वही है जो भगवान श्रीकृष्ण डण्डा लेकर किया करते थे। उसको डाण्डिया रास कहते हैं। पूरे सौराष्ट्र में डाण्डिया रास कम्पनियाँ हैं। दूसरी जगह भी हैं, दक्षिण भारत में भी हैं। केरल में दिव्यनाम-संकीर्तनम् करते हैं। एक बड़ा दीपक जला लेते हैं, उसके चारों ओर औरतें खड़ी हो जाती हैं, ताली बजाकर विघ्नविनायक गणेश के कीर्तन से शुरू करके नाचती जाती हैं।

अयोध्या में हर घर में एक रामायण मण्डली है। वे लोग कथा करने बाहर जाया करते हैं, यह उनका व्यवसाय है। अयोध्या में हजारों मण्डलियाँ हैं। वे सब रामायण कथा करते हैं, भजन-कीर्तन गाते हैं। बाप हारमोनियम बजाता है, बेटा तबला बजाता है और माँ कथा करती है। अयोध्या में जो रामायण मण्डलियाँ हैं, उनकी सबसे बड़ी माँग बिहार में है। बिहार में कुछ स्थान ऐसे हैं जो वैष्णवों के गढ़ हैं, जैसे बड़हिया। बड़ा मालदार गाँव है। वहाँ वैष्णवों के बड़े-बड़े मन्दिर हैं। बिहार में गाँव बहुत हैं और गाँव में जो बड़े किसान हैं, वे मालदार हैं। बाकी मजदूर भले ही गरीब हों, पर बिहार में जमींदार लोग बहुत मालदार हैं।

कथा करना या नृत्य-नाटक दिखाना, चाहे वह रामकथा हो या कृष्णलीला या गरबा या डाण्डिया-रास, यह सब हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा व्यवसाय है। चाहे तुम केरल जाओ, दक्षिण भारत जाओ, कलकत्ता जाओ या बंगाल जाओ, हर जगह गाँव-गाँव में कथा-कीर्तन होते रहते हैं। यह बहुत बड़ा व्यवसाय है, इससे बहुत-से लोगों का पेट भरता है। अब तो और भी अच्छा हो गया है। पहले तो एक आदमी अकेला कथा करता था, लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब कथाकार के साथ हारमोनियम, तबला, सितार, गिटार, मृदंग, झांझ और एक उसके पीछे बोलने वाला, संगत करनेवाला भी होता है। वे सब साथ-साथ जाते हैं, उनका पूरा-का-पूरा दल रहता है, और जो जितना अधिक प्रसिद्ध है उसकी उतनी ही ज्यादा माँग रहती है।

जब से टी.वी. और सिनेमा आया है, यह सब बदल गया है।

नहीं, समाज में अभी भी एक वर्ग है, जो सिनेमा वगैरह में नहीं जाता है। मगर दूसरा वर्ग शत-प्रतिशत जाता है।

रामायण, महाभारत, राजा हरिश्चन्द्र, इत्यादि पर फिल्म देखने में जो आनन्द आता था, वह आजकल की फिल्मों में नहीं है।

राजा हरिश्चन्द्र, सती-सावित्री, नल-दमयन्ती वगैरह के जो कहानी-किस्से हैं, ये वास्तविक घटनाएँ रही हैं। ऐसा कभी हुआ था। उस कहानी को लोगों ने कहना शुरू कर दिया। राजा नल ने जुआ खेला, जुए में सब कुछ खो दिया, हारने के बाद वह अपनी रानी और पुत्र को लेकर जंगल चला गया, जंगल में औरत को साँप ने काट लिया और वह उसे छोड़कर चला गया। फिर कहीं और जाकर नौकरी की, खाना बनाने लगा। अब यह एक साधारण-सी कहानी है। उसमें कुछ जोड़-तोड़ कर, सिलकर कहानी में कढ़ाई कर दी जाती है। किसी राजा ने जुआ खेला, राज छोड़ना पड़ा, उसकी औरत मायके चली गई, वह भी कहीं चला गया, बाद में एक-दूसरे को पहचान लिया, बस इतनी कहानी सच है और बाकी जो है उसमें कहानी लिखने वाले को दिमाग लगाना पड़ता है।

जब इसको फिर नाटक में परिवर्तित करते हो, तब एक साधारण कहानी और नाटक की कहानी में बहुत फर्क हो जाता है। अब देखो, रामचरितमानस में श्रीराम ने ताड़का को मारा, तो उसका वर्णन केवल दो पंक्तियों में है, जबकि नाटक में पन्द्रह मिनट लगते हैं। नाटक के समय कहानी का कथानक बड़ा हो जाता है। और नाटक में बहुत-सी चीजें ऐसी रखनी पड़ती हैं जो आदमी के मन पर असर करें। साहित्य में भाषा असर करती है, और नाटक में अभिनय और दृश्य।

ये जितनी भी कहानियाँ हैं, मनोरंजन के लिए नहीं हैं, इनके पीछे एक विषयवस्तु रहती है। जैसे मकान बनाते वक्त तुम दीवार, छत, फर्श, खिड़की-दरवाजे वगैरह बनाते हो, उसमें अच्छी तरह से कारीगरी कराते हो। यह उसका स्थापत्य है, वास्तुकला है, शैली है। उसी तरह से कहानी की भी एक शैली होती है। मगर उसकी मुख्य विषयवस्तु सामाजिक होती है। जो उस विषयवस्तु में चला गया, वह अमर हो गया। बड़े लोग तो हर जमाने में हुए हैं। आज के जमाने में भी बहुत-से नामी हैं। सरकार और दुनिया उनको बहुत मानती है, मगर उन लोगों ने जो किया, जो कहा, क्या लोग आज से हजार साल बाद उसका उपयोग कर सकेंगे? रामजी के जीवन की एक मर्यादा थी। हजारों साल बाद लोगों ने सोचा कि इस आदमी का जीवन हमें जरूर बताना चाहिए। यह समाज के लिए अच्छा है, परिवार के लिए अच्छा

है, मर्द-औरत, बाप-बेटे के लिए अच्छा है, सौतेली माँ के लिए भी अच्छा है और बदमाश लोगों के लिए भी अच्छा है। एकदम प्रथम श्रेणी का है! इसलिए रामजी अमर हो गए।

महात्मा गाँधी का जीवन भी बहुत अच्छा रहा। क्या वे भी अमर हो जाएँगे?

हम ने गाँधीजी के बारे में पढ़ा है और उन्हें देखा भी है। गाँधीजी की जीवनशैली एक साधारण आदमी की जीवनशैली नहीं थी। भले ही हम और आप संयमी हों, पर आम लोग संयमी कहाँ होते हैं? लोग तो खाते-पीते, मौज करते हैं। एक तो गाँधीजी की जीवनशैली उत्कृष्ट थी, दूसरा उनका राजनैतिक सिद्धान्त भी पराकाष्ठा पर था। जो बात गाँधीजी ने कही, वही बात महात्मा बुद्ध ने कही थी, वही जैनों के तीर्थंकर महावीर ने कही थी। उस समय का जो नारा था, जो सूत्र था, वह अहिंसा का था – *अहिंसा परमो धर्मः।* उसे लोगों ने बहुत पसंद किया, सोचा, 'लड़ाई खत्म हो जाएगी तो ठीक रहेगा। बेकार लड़ाई में सब लोग मर रहे हैं, गले कट रहे हैं, औरतें विधवा हो रही हैं, बच्चे अनाथ हो रहे हैं।' सबने अहिंसा के सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार किया। भगवान बुद्ध के दर्शन को इतनी मान्यता मिली कि जब सम्राट् अशोक उड़ीसा से लाखों सैनिकों को मरवाकर पाटलीपुत्र वापस आया तब उसको विषाद हो गया। वह वहाँ से पूरी तरह बदल कर लौटा। उसने अपना राजनैतिक दर्शन बदल दिया और अहिंसा को अपना लिया। भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों के अनुसार सब तरह के अस्त्र-शस्त्रों को हटाना शुरू कर दिया।

अशोक के राज में बौद्धों के नियम लागू हो गये। बौद्धों के जो पाँच शील होते हैं, जैसे, मैं शराब नहीं पीऊँगा, जुआ नहीं खेलूँगा, आदि, उसके अलावा दस नियम हैं, मैं जहर नहीं बेचूँगा, हथियार नहीं बेचूँगा, इत्यादि। इन नियमों का नतीजा क्या हुआ? किसी की दुकान में छुरा नहीं मिलता था, भाला नहीं मिलता था, जहर नहीं मिलता था। हिन्दुस्तान पर तो हमले हो ही रहे थे, हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा राष्ट्र जो हो गया था। अशोक ने देश को एकदम दक्षिण के छोर तक अखण्ड कर दिया था। और उत्तर में ईरान-अफगानिस्तान तक चला गया था। अब वहाँ के लोग यहाँ आने लगे, हमला होने लगा। वहाँ के लोग बड़े-बड़े शस्त्रों और घोड़ों के साथ आ रहे थे,

जबकि यहाँ सेना पर खर्च कम कर दिया गया था, भिक्षु संघ और बौद्ध विहार बनाए जा रहे थे। जहाँ साधु-महात्मा रहते हैं उसे विहार या मठ कहते हैं। इस देश में इतने विहार थे कि इस देश का नाम ही बिहार हो गया। परिणाम क्या हुआ? हिन्दुस्तान हमले का सामना नहीं कर सका। बौद्धवाद यहाँ से उखड़ गया। अब यहाँ किसी बौद्ध भिक्षु को नहीं देख पाओगे।

हमारे कहने का मतलब यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने जन्म-काल में कितना ही मशहूर, कितना भी जन-सम्मानित क्यों न हो, लेकिन जब देश पर मुसीबत आती है, उस समय उसकी कही हुई बात उस देश की मदद करेगी या नहीं, बस इतना भर देखना है। बौद्धवाद ने भारत को निराश किया, उसके काम नहीं आया। इसलिए यहाँ से बुद्धजी उखड़ गए और रामजी आ गए। महावीर भी उखड़ गए। केवल उनके मंदिर और भक्त लोग रह गए, उनका सामाजिक और राजनैतिक मार्गदर्शन खत्म हो गया।

उसके बाद यहाँ भगवान आए भी तो कैसे? राम, कृष्ण और हनुमान जैसे। या शिवजी जैसे, जो एक त्रिशूल मारें तो सारा संसार गिर जाए। या फिर विष्णुजी, जिनके हाथों से हमेशा अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण होता रहता है, कभी चक्र बनाते हैं तो कभी ब्रह्मास्त्र। बौद्धधर्म की जो बोधिसत्त्व की अवधारणा थी, वह जनसाधारण से पूरी तरह हट गयी। अब गाँधीजी के सिद्धान्त कितने दिन रहेंगे, किस मौके पर वे मदद करेंगे, यह कहना बड़ा मुश्किल है। हाँ, उनकी अपनी जीवनशैली बहुत अच्छी थी। कड़वे नीम की चटनी खाते थे, अपना शौचालय खुद साफ करते थे, अपने कपड़े खुद बुनते थे। यह एक आदर्श है। मगर यह उनका व्यक्तिगत जीवन था, जो एक अलग चीज है। पर एक मुल्क के लिए, एक समाज के लिए उन्होंने क्या उपदेश दिया?

मगर स्वामीजी, अहिंसा से उन्होंने आजादी तो दिलायी?

इसके बारे में भी विद्वानों में बहुत विवाद है। हम यहाँ निन्दा नहीं, समालोचना कर रहे हैं। क्या सचमुच भारत को स्वतंत्रता गाँधीजी के कारण मिली? अगर इस प्रश्न का उत्तर हाँ है, तो फिर सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम बोस, भगतसिंह, राजगुरु जैसे बड़े-बड़े क्रांतिकारियों का स्थान कहाँ है? फिर यह भी पूछना होगा कि यदि स्वतंत्रता गाँधीजी की वजह से मिली तो पाकिस्तान किसकी वजह से बना? आखिर यह भी तो बहुत बड़ा मुद्दा है। जहाँ स्वतंत्रता

हमारे देश का गौरवमय पक्ष है, वहाँ देश का विभाजन भी हमारे देश के लिए एक करुणामयी कहानी है।

कोई भी महापुरुष अपने जमाने में तो मशहूर होता ही है, क्योंकि उसको राजा मानता है, प्रजा मानती है, विचारक मानते हैं, मगर प्रत्येक महापुरुष की वास्तविक कसौटी इतिहास होता है। अब रामचन्द्रजी अच्छे आदमी थे, संकोची थे, झगड़ा वगैरह पसंद नहीं करते थे, मगर उनके पास शस्त्रविद्या थी। वे औरतों पर हाथ नहीं उठाते थे, मगर अन्त में उनके हाथों पूरी लंका ही खत्म हो गई। *'एक लख पूत, सवा लख नाती, लकड़ी न कोऊ धरी।'* रावण को तिलांजलि देने के लिए भी कोई जिंदा नहीं रहा। उसकी स्त्री मंदोदरी को श्राद्ध करना पड़ा।

जब मुगलों का आक्रमण हो रहा हो, चीनियों का आक्रमण हो रहा हो और कोई कहे, *'अहिंसा परमो धर्मः'*, तो क्या लोग ऐसे आदमी को पसंद करेंगे? वी.के. कृष्णमेनन से लोग क्यों नाराज हुए? वे भारत के सुरक्षा मंत्री थे। कहते हैं उनके समय रक्षा विभाग के कारखानों में बम और बंदूक के बदले चम्मच और केतली बन रही थी! मिसाइल के बदले साधारण चीजें बन रही थीं। क्यों? *अहिंसा परमो धर्मः।* इसलिए जब चीन के साथ लड़ाई हुई तब यहाँ दस हजार सैनिक मारे गए। हमें मालूम है। मुंगेर-जमालपुर होते हुए सब लाशें गई हैं। हमने देखा है। हम उस वक्त मुंगेर में ही थे। दस हजार सैनिक मारे गए, क्यों? उनके पास लड़ने के साधन नहीं थे। अमरीका के तीन सैनिक मारे जाते हैं तो हल्ला हो जाता है और यहाँ दस हजार सैनिक मारे गए! यह राष्ट्र के लिए शर्म की बात है। दस हजार औरतें विधवा हो गईं, दस हजार परिवार अनाथ हो गए। क्या इन्सान का कोई मूल्य नहीं है? हाँ, अगर देश को विजय दिलाते तो दस हजार क्या, बीस हजार भी मरते तो कोई बात नहीं। लेकिन वे तो हारकर आए।

नायक वही बनता है, जो समय पर राष्ट्र की स्थिति को सम्भालता है। राम और कृष्ण ने ऐसा किया, इसलिए वे रह गए, नहीं तो वे भी नहीं रहते। हनुमानजी क्यों रहे? वे वीरता के प्रतीक हैं। वैसे तो हनुमानजी भक्ति और दास्य भाव के बहुत बड़े उदाहरण हैं, परंतु सबसे बड़े उदाहरण हैं वीरता के। वे केवल वीर नहीं, बहुत बुद्धिमान् और बलवान् भी थे। कभी-कभी वीर मजबूत नहीं भी होते हैं। लेकिन वे बहुत मजबूत थे, बजरंग थे– *'वज्रदेह दानव दलन जय जय कपिशूर'*। क्या सरकार हमें आज कहती है कि हम सब

अपने घरों में हनुमानजी को पूजें? हनुमान जयंती मनाने के लिए सरकार कोई कार्यक्रम रखती है क्या? नहीं, परन्तु हम लोग मनाते हैं, क्योंकि हमें हनुमानजी अच्छे लगते हैं।

गाँधीजी का जीवन चरम स्तर पर था, लेकिन सामान्य व्यक्ति उस तरह से नहीं जी सकता। दूसरी बात अर्थशास्त्र से सम्बन्धित है। आज दुनिया की आबादी छः अरब पहुँच चुकी है। अब छः अरब लोगों को खिलाने के लिए गाँधीजी या स्वामी सत्यानन्द का दर्शन कहाँ तक मदद कर सकता है? पाँच साल से तो स्वामी सत्यानन्द ने यही तौलिया रखा है, मतलब इन पाँच सालों में दुकानवाले का एक ही तौलिया बिका है। उस बेचारे की मेरी वजह से आमदनी हुई नहीं। अगर हम हर महीने तौलिया खरीदते और फेंक देते तो उसके साल में बारह तौलिये बिकते। बिक्री होती तो उसको कमीशन मिलता और जहाँ तौलिये का निर्माण होता है, वहाँ भी मुनाफा होता। सरल, साधारण जीवन जीने से बाजार कमजोर होता है।

अगर तुम्हारे पास दस हजार रुपये हों और तुम एक हजार ही खर्च करो तो बाजार को कितने मिले? हजार ही तो मिले न। लेकिन अगर तुमने दस हजार खर्च किये तो बाजार में दस हजार बँटे। यह पाश्चात्य अर्थशास्त्र का सिद्धान्त है। आज पश्चिम के लोग इतने अमीर क्यों हैं? इसलिए कि वे पैसा बचाते नहीं, खर्च कर देते हैं। अगर मेरी दुकान से माल खरीदने के लिए तुम खर्चा करते हो, तो मुझे भी तो आगे खर्चा करना है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं, परिवार है। तुम भी भरपूर खर्चा करते हो, मैं भी भरपूर खर्चा करता हूँ, सब लोग भरपूर खर्चा करते हैं तो क्या होता है? सबकी अच्छी आमदनी होती है। पाश्चात्य देशों की सम्पन्नता का यही रहस्य है कि वे लोग पैसा बचाते नहीं, बल्कि पूरा खर्च कर देते हैं।

विदेशों में चीजें ऐसे बनाते हैं कि तीन-चार साल ही चलें। घड़ी हो या रेडियो, उन लोगों को बार-बार खरीदना ही पड़ता है।

मेरे पास एक घड़ी है जो समय बोलकर बताती है। वह मेरे पास तीस साल से है। इसका मतलब तीस साल में मेरी वजह से केवल एक घड़ी बिकी। अगर वह हर दो साल में खराब हो जाती तो दूसरी खरीदनी पड़ती, किसी की बिक्री होती। अब आप अखबार खरीदते हो और उसे पढ़ते हैं दस लोग। अगर दस आदमी खरीदते तो दस अखबारों की बिक्री होती। जब तक बिक्री नहीं होगी

तब तक सम्पत्ति बनेगी नहीं। बाजार का यही आधार है और बाजार पर ही समाज की सम्पन्नता निर्भर करती है।

भारत में गरीबी क्यों है? इसलिए कि हम लोग पैसा खर्च नहीं करते हैं। हर एक इन्सान के घर में सोना है, लेकिन वह सोना मिट्टी के बराबर है। उस सोने से कुछ कमा नहीं सकते। अगर हमारे पास दस तोला सोना है तो इसका मतलब हुआ चालीस हजार रुपये। चालीस हजार रुपये घरवाले की दुकान-व्यवसाय में चले जाएँगे तो उस बेचारे की आमदनी हो जाएगी। वह फिर दुकान के लिए खर्च करेगा, सब्जी, तेल, कपड़ा वगैरह खरीदेगा। उससे जिस-जिस की आमदनी होगी, वह भी आगे खर्चा करेगा। गोरी जात के पास जो पैसा है, उसका कारण केवल यही है। और कोई कारण नहीं है। वे लोग सोना-चाँदी घर में नहीं रखते हैं। उन लोगों के तो अपने घर भी नहीं होते, किराये पर रहते हैं। कभी भी मकान छोड़कर चले जाते हैं। पक्की नौकरी किसी की नहीं होती। साल या दो साल का ठेका होता है, फिर छोड़कर चले जाते हैं। उनके पास सोना-चाँदी के नाम पर शादी की एक अंगूठी होती है, बस। उनका पैसा बराबर चलता रहता है। जबकि हम लोगों का पैसा सोना-चाँदी में बन्द है। चालीस हजार आपके घर में बन्द है, दो लाख इनके घर में बन्द है, बीस हजार उनके घर में बन्द है। हिसाब लगा लो, कितना अरबों-खरबों रुपया बन्द पड़ा है, बाजार में नहीं जा रहा है। इसलिए हिन्दुस्तान गरीब है। पैसा जब तक चलेगा नहीं तब तक अमीरी आएगी नहीं। इसलिए सिक्के को गोल बनाया गया कि वह चलता रहे!

गाँधीजी का दर्शन अपने समय के अनुकूल था। लेकिन क्या उनका दर्शन हर युग में माना जाएगा? आज गाँधीजी हमारे देश के प्रतिष्ठित नेता हैं, राष्ट्र-पिता हैं। एक समय में भगवान बुद्ध भी इतने ही माने जाते थे। फिर क्या हुआ? भगवान बुद्ध को तो छोड़ो, बौद्ध लोगों तक को सामने आने की हिम्मत नहीं होती थी। लोग उनको मार डालते थे। बिहार में उनकी मूर्ति पर पत्थर फेंकते थे। बौद्ध धर्म यहाँ बिलकुल खत्म हो गया। बाबासाहेब अम्बेडकर के बाद कुछ बौद्ध बने हैं, नहीं तो सब खत्म हो गये थे। क्यों? बुद्ध ने कहा, शस्त्र मत रखो, अहिंसा धर्म का पालन करो। उधर हमलावर आकर हमारी औरतों को उठाकर ले गये, हमारे बच्चों का कत्ल कर दिया, हमारी सम्पत्तियाँ हड़प लीं, हमारे मन्दिर तोड़ दिये, और बौद्ध कहते हैं अहिंसा? मारो इन्हें। इस प्रकार बौद्धवाद खत्म हो गया।



महापुरुष उसे नहीं कहते जो अच्छी बात कहता है, महापुरुष उसे कहते हैं जो खरी बात, काम की बात कहता है। गाँधीजी तो कड़वे नीम की चटनी खाते थे, कितने लोग खायेंगे कड़वा नीम? सिर्फ एक धोती पहनते थे डेढ़ गज की। पाँच साल से हम यह तौलिया पहनते आ रहे हैं, अभी दस साल और चलेगा। अरे! हम हर महीने तौलिया मोल लेते तो बेचारे दुकानवाले की बिक्री होती। अहिंसा, सादगी, ये अच्छे गुण हैं, मगर जनता-जनार्दन के लिए नहीं। जनता-जनार्दन को तो पैसा चाहिए।

रामजी को भारत के लोगों ने खोजा है, चुना है। उस वक्त इतिहास में और भी लोग रहे होंगे। शिवजी, कृष्णजी और गणेशजी भी रहे होंगे, मगर लोगों ने रामजी को ही क्यों चुना? इसलिए कि रामजी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की जरूरतों के मुताबिक एक बहुत अच्छे नायक बने। वाल्मीकि ने नारदजी से पूछा कि बतलाइये कौन-सा आदमी ऐसा है जो चरित्रवान्, गुणवान्, विद्वान् और बलवान् हो –

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत: ॥

नारदजी ने कहा, ऐसा एक ही आदमी है, और वह है राम। बस, वही पक्का और कमाल का आदमी है। समाज अपने लिए एक ऐसा नायक चुनता है, जो उसके मन को भाता है। रामजी लोगों को पसंद थे। वे तुलसीदास को पसंद आये, वाल्मीकि को पसंद आये। रामजी का समय-समय पर इस्तेमाल किया गया, अलग-अलग कहानियाँ जोड़ी गईं।

आज बौद्ध धर्म जापान जैसे कुछ देशों में ही रह गया है, मगर जैसे हम लोगों के लिए रामजी हैं, वहाँ वैसा नहीं है। वे लोग भगवान बुद्ध की पूजा कर लेते हैं, मंत्र पढ़ लेते हैं, एक-आध कहानी बोल देते हैं, बस। वे भगवान बुद्ध के बारे में ज्यादा नहीं जानते। जितने भी बौद्ध धर्म या ईसाई धर्म वाले हैं, वे धर्म को मन्दिर तक ही सीमित रखते हैं। आज जितने भी ईसाई हैं, क्या वे ईसामसीह के कथनों का अनुसरण कर रहे हैं? बाइबिल में लिखा है कि जो तुमको एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसे तुम वापस थप्पड़ मत मारो, बल्कि दूसरा गाल दिखा दो। जो तुम्हारी कमीज उतारे, उसे अपना कोट भी उतार कर दे दो, झगड़ा मत करो, ऐसा लिखा है। मगर उन लोगों ने कभी ऐसा किया नहीं है। जो उन्हें एक थप्पड़ मारता है, उसे वे दस थप्पड़ मार देते हैं।

चीन में नव वर्ष पर लोग एक-दूसरे को संतरे या संतरे के छोटे पौधे उपहार में देते हैं, यहाँ संतरे का क्या महत्त्व है?

पहले एक व्यवस्था थी, जो अभी गरीबी की वजह से खत्म हो गयी है। जब भी कोई पर्व होता है, जैसे, होली या दीवाली, उस समय लोग एक-दूसरे को उपहार देते हैं। गाँवों में पहले यह प्रथा थी। जैसे, अगर हम संतरे की खेती करते हैं, तो हमने संतरे के सौ पौधे तैयार कर दिये। हमारे घर में लड़का हुआ तो संतरे के ये सौ पौधे या नारियल या बाँस के पौधे, ऐसा कुछ भी छोटा-सा उपहार गाँव वालों को दे दिया। हमारे यहाँ यह परम्परा थी कि गाँव में जो भी आदमी समर्थ है, उसे चाहिए कि दीवाली या दशहरे जैसे पर्व पर और कुछ नहीं तो कुछ अच्छे बीज या पौधे लोगों को दे। नींबू, संतरा, आम, अमरूद या केले का पौधा, क्योंकि ये सबके काम की चीजें हैं। खाने के लिए, बिक्री के लिए। संतरे के तो छिलके तक को खाया जाता है। हम यहाँ संतरे का छिलका नहीं फेंकते। जब भी संतरा आता है, छिलका निकाल देते हैं, उसका मुरब्बा बना देते हैं। उसको बोतल में रखते हैं और रोटी के साथ खाते हैं।

जैसे हम लोग तुलसी को मानते हैं, वैसे चीनी लोग अनार का पेड़ घर-घर में रखते हैं। उसे पवित्र मानते हैं और उसके पत्ते को औषधि के रूप में उपयोग करते हैं। आपके विचार में ऐसा क्यों करते हैं?

पीपल, अनार वगैरह जितने वृक्ष होते हैं, सभी पूज्य हैं। मगर आयुर्वेद के अनुसार तुलसी में औषधीय गुण सब से अधिक हैं। आयुर्वेद में तुलसी को सब औषधियों की महारानी कहा गया है। फिर तुलसी के बाद आता है पीपल। पीपल में भी बहुत औषधीय गुण हैं। उसके बाद बेल का नम्बर आता है। इसका मतलब यह नहीं कि जामुन या किसी दूसरे वृक्ष में गुण नहीं हैं। दुनिया में जितने भी वनस्पति हैं, सब में कुछ-न-कुछ औषधीय गुण रहता है, मगर सर्वाधिक गुण तुलसी में होते हैं।

तुलसी में एंटीबायोटिक गुण होते हैं। जब कोई घाव होता है जो भरता नहीं है या बुखार होता है जो ठीक नहीं होता, तब अस्पताल में क्या देते हैं? पाँच दिन के लिए एंटीबायोटिक्स। मनुष्य के शरीर में रोग के कीटाणुओं को मारने वाले तत्त्व को एंटीबायोटिक कहते हैं और यह एंटीबायोटिक तुलसी में होता है। हरिद्वार के पास कई हजार एकड़ की जमीन है, जहाँ तुलसी बोई जाती है और उसके पत्ते इकट्ठे किये जाते हैं। वहाँ एक सरकारी कम्पनी है, जिसका नाम है हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स। उन तुलसी पत्तों को लेकर वहाँ एंटीबायोटिक्स बनती हैं। तुलसी में फफूँदी पैदा किया जाता है। जब भोजन बासा हो जाता है, उसके ऊपर जो सफेद परत दिखाई देती है न, वह फफूँदी है। उसमें से ही एंटीबायोटिक्स निकाले जाते हैं।

पहले हम लोगों के गाँवों में अनपढ़ लोग यह सब नहीं जानते थे, इसलिए उन्हें कहा जाता था कि तुलसी को पूजो, इसे काटो मत। आयुर्वेद में तो तुलसी के बहुत-से गुण लिखे हैं। तुलसी वीर्यदोष, खाँसी और बुखार जैसी बीमारियों को दूर करती है और आजकल तो कहते हैं कि एड्स में भी तुलसी काम आएगी। अश्वगंधा, पीपल और तुलसी, इन जड़ी-बूटियों को मिलाकर आयुर्वेद में एड्स पर प्रयोग हो रहे हैं। आने वाले समय में सबसे बड़ी बीमारी एड्स होने वाली है, क्योंकि पहले के जमाने में तो यौन सम्बन्धों पर बहुत सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नियंत्रण था। परन्तु आज कुछ भी नियंत्रित नहीं है। आधुनिक समाज में कौन क्या कर रहा है, कुछ मालूम नहीं। आने वाले युग में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और भी अधिक बिगड़ेंगे। यह पक्की बात है, क्योंकि अब समाज पहले की तरह नहीं रहा। आज से

चालीस साल पहले जो चीज असम्भव थी, आने वाले जमाने में सामान्य हो जाएगी। स्त्री-पुरुष के गलत सम्बन्धों को लेकर जो बीमारी उत्पन्न होती है, वह है एड्स। इस बीमारी का इलाज अभी तक निकला नहीं है। अभी तक वैज्ञानिक लोग एड्स के वाइरस, एच.आई.वी. की जीन्स को पहचान नहीं पाए हैं, पृथक् नहीं कर पाए हैं। समाज में विचारों की स्वतंत्रता और व्यवहार में स्वच्छंदता के कारण यह बहुत तेजी से फैल रहा है। अगली शताब्दी में इस बीमारी का फैलना निश्चित है और इसकी दवाई है – अश्वगंधा, पीपल, तुलसी, इत्यादि।

अनार में भी गुण होते हैं। नारियल में भी गुण होते हैं, घास में भी गुण होते हैं, मगर तुलसी के साथ उनकी तुलना नहीं कर सकते। आखिर हिन्दुस्तान बहुत पुराना देश है। यहाँ सभ्यता ने सबसे पहले जन्म लिया, क्योंकि यह जगह सभ्यता के लायक है। यहाँ जीवित रहने की ज्यादा सम्भावना है। कोई यह नहीं कह सकता कि स्वीडन में सभ्यता पहले बनी। वहाँ बन ही नहीं सकती, वहाँ इतनी प्रतिकूल जलवायु जो है। यहाँ दो महीने गर्मी है, दो महीने ठण्ढ है, दो महीने बरसात है, तो दो महीने बसन्त भी। यहाँ कोई मौसम ज्यादा दिन नहीं चलता। गर्मी के दिनों में भी तापमान अगर बढ़ता है तो बादल आते हैं, गरजते-बरसते हैं, मौसम बदल जाता है। पानी भरपूर, जंगल भरपूर, पहाड़ भरपूर – यह हिन्दुस्तान में सब जगह है। बर्फ से लेकर समुद्र तक कोई भी जलवायु ऐसी नहीं जो हिन्दुस्तान में न हो। ऐसी ही जगह पर, जहाँ आदमी आराम से लंगोटी पहन कर भी जी सकता है और एक छप्पर बनाकर जीवन बिता सकता है, वहीं सभ्यता जीवित रह सकती है। जहाँ आदमी को गर्म पानी चाहिए, जहाँ शरीर को गर्म रखने के लिए शराब चाहिए, जहाँ शरीर को मजबूत रखने के लिए माँस, अण्डा, मुर्गी चाहिए, वह सभ्यता ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहती, क्योंकि वहाँ जो चाहिए अगर वह नहीं मिला तो? यहाँ तो जो चीज है उसी से काम चल जाता है। इस देश ने बहुत अनुसंधान किये हैं, बहुत चीजों का विकास किया है।

हिन्दुस्तान के लोगों की एक और विशेषता है। हिन्दुस्तान का आदमी अगर देखता है कि दूसरे के पास बढ़िया चीज है तो अपने लिए भी लेने की कोशिश करता है। उसमें ग्रहणशीलता का गुण है। ऐसा नहीं की फलानी चीज तो मुसलमानों की चीज है, फालतू है, छोड़ो, हटाओ। कुर्सी पर बैठकर खाना अँग्रेजों की चीज है, हटाओ। नहीं, यह हम लोगों की प्रवृत्ति

नहीं है। हमारे यहाँ कुर्सी भी आएगी, मेज भी आएगा, गैस का चूल्हा भी आएगा। हम दूसरों को देखकर उनकी उपयोगी चीजों को ले लेते हैं।

अब हम लोगों ने अफ्रीका से कोई चीज नहीं ली, जबकि वह बगल में है। अफ्रीका के बारे में हम जानते भी बहुत कम हैं। चीन भी बहुत नजदीक है, पहाड़ पार करो तो चीन है। लेकिन हम जानते क्या हैं चीन के बारे में? किसी को कुछ भी तो नहीं मालूम। आखिर उनके पास है ही क्या हमारे लेने लायक। उनकी भाषा इतनी कठिन, उनके सामाजिक नियम इतने बेढंग! वे मेंढक, साँप और चूहा खाते हैं, बन्दर की खोपड़ी काटकर खाते हैं। नहीं भाई, हमें ये सब चीजें नहीं चाहिए। और पहुँच गये हम कहाँ? इंग्लैंड। हम से कितना दूर है, लेकिन उस देश की भाषा ले ली, मेज-कुर्सी ले ली, उनकी संस्कृति से वे सब चीजें ले लीं जो हमारे काम के लायक हैं।

यह हिन्दुस्तान की ग्रहणशीलता का लक्षण है। जो काम की चीज हो, वह ले लेनी चाहिए। यही व्यावहारिकता है। हिन्दुस्तान के आदमी ने हमेशा दूसरी सभ्यताओं से सीखा है। यह अच्छा गुण है, इसे नकल नहीं कहेंगे। मुसलमानों से बहुत कुछ सीखा, अँग्रेजों से बहुत कुछ लिया। मगर वह जापानियों का 'अन्दर की चप्पल अलग और बाहर की चप्पल अलग' वाला रिवाज हम लोगों ने नहीं सीखा। भले ही बाहर चप्पल छोड़कर अन्दर नंगे पाँव जायेंगे, मगर अन्दर की चप्पल दूसरी हो, यह हिन्दुस्तान में कभी नहीं आएगा, क्योंकि यह अव्यावहारिक है।

इस तरह की चीजों पर यहाँ के लोगों ने बहुत सोच-विचार किया है और एक निर्णय पर पहुँचे हैं। दवाइयों, सामाजिक सम्बन्धों, विवाह-प्रजनन, स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्धों, गोत्र-अगोत्र, अनुलोम-विलोम, जन्म-अन्त्येष्टि, साधु-महात्माओं, ब्रह्मचर्य आदि के बारे में बहुत चर्चाएँ हुई हैं यहाँ। ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए या नहीं। शादी करनी चाहिए या नहीं। आखिर शादी क्यों करोगे? शादी स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध ही तो होता है न। मत करो। इस तरह इन विषयों पर बहुत चर्चा हुई है। हिन्दुस्तान में ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों तक बातचीत की है, तर्क-वितर्क किया है, दूसरी सभ्यताओं से बातचीत की है, उनके तौर-तरीके देखे हैं। तब जाकर हम लोगों ने निर्णय लिया है।

अब हम यहाँ से तुलसी को निकालकर अनार का पेड़ लगा दें, यह हमसे नहीं होगा। हमारे यहाँ अनार का पेड़ भी है, पीपल का पेड़ भी है, मगर तुलसीजी को हमारी सभ्यता में वनस्पतियों की महारानी कहा है और वह

महारानी है भी। अब देखो, मुझे यहाँ आये आठ साल हो गए और मैं अपने ही ढंग से रहता हूँ। अन्दर रहना चाहूँ तो अन्दर, बाहर रहना चाहूँ तो बाहर। आठ साल में मुझे नाम की भी सर्दी-खाँसी नहीं हुई और एक दिन भी मेरा अनुष्ठान नहीं छूटा है। एक दिन तो क्या, एक बार का भी नहीं छूटा है। केवल तुलसीजी की वजह से, क्योंकि उन्हें हमने अपने आश्रम की इष्टदेवी माना है। हमने उनसे कह दिया है कि अब हमें कुछ नहीं चाहिए। क्या करेंगे? आश्रम बनाना नहीं, घर बनाना नहीं, शादी करनी नहीं, पैसा कमाना नहीं, केवल भजन करना है। उसके लिए जब तक जिन्दा रहें, हम अपना नियम पूरा करें। हमारे रहने का जो स्तर था, पहले ऐसा थोड़े ही था। हम 24 घण्टे वातानुकूलित कमरे में रहते थे। हम ऐसे कपड़े थोड़े ही पहनते थे। हम तो आराम से रहने वाले जीव थे। लेकिन जब आठ साल से कुछ भी बीमारी नहीं हुई, तब तुलसीजी को कैसे नहीं मानेंगे? आठ साल कोई छोटा अरसा तो होता नहीं।

आयुर्वेद हम लोगों का बहुत पुराना शास्त्र है। धनवन्तरी उसके आदिगुरु थे, फिर उसके बाद सुषेण, चरक, सुश्रुत जैसे बहुत वैद्य हुए। सुश्रुत ऋषि शल्यक्रिया करते थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें सब औषधियों के गुण लिखे हैं। किस औषधि का क्या गुण होता है, वह कहाँ पैदा होती है, और उससे कौन-सी दवाइयाँ बनती हैं, यह सब लिखा है।

– 26 सितम्बर, 1997





अध्याय 18

यद्यपि माता-पिता बच्चों के हितैषी होते हैं, फिर भी माता-पिता के जीवन में बच्चों के सम्बन्ध में कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनका बच्चों के व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जो बच्चे हमेशा माता-पिता के साथ रहते हैं, वे हमेशा संरक्षित रहते हैं और संरक्षित रहना, आश्रित रहना किसी भी व्यक्ति के लिए सकारात्मक उपलब्धि नहीं है। जिस देश में बच्चे हमेशा माता-पिता के साथ रहे हैं, वह देश कभी आगे नहीं बढ़ा है और वहाँ सामाजिक परिवर्तन भी नहीं हुआ है। राजनैतिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, वैज्ञानिक क्षेत्र में जोखिम उठाना पड़ता है। हजार साल पहले भारत में जो समाज था, वही आज भी है। तुम लोग भले ही पढ़े-लिखे हो, ऊँचे घराने के हो, सूट-बूट, कोट-पैंट पहनते हो, मगर जहाँ तक सामाजिक दर्शन का सवाल है, वह वैसा ही है जैसा हजार साल पहले था।

इतिहास यही बतलाता है कि जब समाज स्थिर हो जाता है तब उसका वही हाल होता है जो बहते जल का एक तालाब में बन्द हो जाने पर होता है। नाला जब तक बहता रहता है तब तक पवित्र रहता है, स्वच्छ रहता है, मगर जब वह तालाब में मिल जाता है और वहाँ स्थिर हो जाता है, तो वह सड़ जाता है, उसमें वायरस और बैक्टीरिया पैदा होते हैं।

बच्चे अगर होस्टल में रहें तो कई मामलों में स्वावलम्बी हो सकते हैं। वहाँ उन्हें 24 घण्टे देखने और कहने के लिए माँ नहीं होती। वहाँ किसी की छत्र-छाया नहीं। जिस बच्चे पर माता-पिता की छत्र-छाया हमेशा बनी रहती है वह बच्चा कभी उठ नहीं सकता। वह विभूति नहीं बन सकता, प्रतिभा-सम्पन्न नहीं बन सकता। माता-पिता का कर्त्तव्य केवल बच्चे का खर्चा देना

है। जितनी उसकी जरूरत हो। बच्चों की सोच पर माता-पिता को अंकुश नहीं रखना चाहिए।

दूसरे देशों को देखो, उन्होंने कितनी उन्नति की है। विज्ञान, शिक्षा व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, सब में उन्नति की है। लड़के-लड़कियों को साथ रखा है, समान अधिकार दिये हैं, समान अवसर दिये हैं। यह नहीं कहा कि औरत को यह पहनना चाहिए, यह नहीं पहनना चाहिए। अस्त्र-शस्त्रों में कितनी उन्नति की है। दूसरे ग्रहों में जाकर कम्प्यूटर से रोबोट चलाते हैं।

आदि काल में मनुष्य ने जब अग्नि का पता लगाया तब उस वक्त मानव सभ्यता में पहली उन्नति हुई। दूसरी उन्नति तब हुई जब बिजली पैदा हुई। मानव सभ्यता में ये दो मुख्य उन्नतियाँ हुईं। अगर अग्नि नहीं होती तो अन्दाज लगा सकते हो क्या होता आज? और यदि बिजली की खोज नहीं होती तो कुछ नहीं होता। भागलपुर से यहाँ तक बैलगाड़ी में आना पड़ता। इसलिए स्वतन्त्रता की उपासना करो। लेकिन साथ ही स्वतन्त्र पुरुष, स्त्री या बालक को कुछ नियम भी बनाने पड़ते हैं, नहीं तो गाड़ी रास्ते में बिगड़ सकती है। गाड़ी का स्टियरिंग ठीक रहना चाहिए। मतलब अच्छी आदतें, अच्छी रीतियाँ होनी चाहिए।

माता-पिता को चाहिए कि बच्चों को खूब पढ़ायें, और उन्हें अधिक-से-अधिक जानकारियाँ दें। शादी बच्चों को खुद करनी चाहिए, वह माता-पिता का कर्त्तव्य नहीं है। शादी व्यक्ति की जरूरत है, माता-पिता की नहीं। आज के समाज में जहाँ लड़के-लड़कियाँ पढ़े-लिखे हैं, जहाँ उन्हें बहुत-से सामाजिक आयामों के बारे में पता है, उन लोगों को अपने मुताबिक, अपने लायक जीवन साथी चुनना चाहिए। हमारा तो यही विचार है। अगर वे जीवन-साथी चुनने में गलती कर सकते हैं तो माता-पिता भी तो गलती करते आए हैं। मगर माता-पिता यदि गलती करते हैं तो उसे छिपा देते हैं, बाहर नहीं आने देते, चुप हो जाते हैं। बच्चे गलती करते हैं तो अखबारों में छाप देते हैं। जहाँ तक जीवन साथी का चुनाव है, यह तो हमेशा से एक जुआ रहा है।

वैदिक सभ्यता

हमारे वेदों में बलि, हवन, विवाह, अन्त्येष्टि आदि अनेक विषयों पर विचार किया गया है। उनमें नर बलि भी है, पशु बलि भी है, स्वर्ग भी है, नरक भी है, यमराज भी है, वरुण भी है। मतलब अनेक विषयों पर चर्चाएँ

की हैं। वैसे वेद तीन होते हैं, चार नहीं। ऋग्वेद को जब गाया जाता है तब वह सामवेद बन जाता है। विषयवस्तु केवल तीन हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद।

ऋग्वेद से उत्पन्न होते हैं आरण्य ग्रन्थ, जो वानप्रस्थियों के लिए हैं, मतलब पचास साल से ऊपर वालों के लिए। फिर ब्राह्मण ग्रन्थ होते हैं, जिनमें बतलाया गया है कि शादी, नामकरण, अन्त्येष्टि, श्राद्ध आदि कैसे करना है। गृहस्थों के लिए जो विधि-विधान और संस्कार हैं, उनको कहते हैं ब्राह्मण ग्रन्थ। ब्राह्मण ग्रन्थ का तात्पर्य ब्राह्मण जाति से नहीं है। भारत में तो अलग-अलग प्रकार की परम्परायें हैं, कहीं अमावस को पूजा करते हैं, तो कहीं पूर्णिमा को। कहीं मामा-भांजी में शादी हो जाती है, कहीं नहीं होती। अनुलोम गोत्र और विलोम गोत्र, कई प्रकार के झंझट हैं। कहीं पर शादियाँ होती हैं तो रामजी का जूता चुरा लेते हैं। भगाई हुई औरत की शादी कैसी होनी चाहिए, गंधर्व विवाह कैसे होना चाहिए, वैदिक विवाह कैसे होना चाहिए, अगर दूसरी जाति में शादी हो तो कैसे होनी चाहिए, यह सब ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा हुआ है। इसके बाद संहिताएँ हैं। संहिता का मतलब होता है मन्त्र। पूजा-पाठ के समय पण्डित जो मन्त्र पढ़ते हैं, जैसे *'ॐ नमो भगवते रुद्राय'* आदि, उनके संग्रह को संहिता कहते हैं। फिर उपनिषद् हैं, जो संन्यासियों और त्यागियों के लिए हैं।

उपनिषद् अन्तिम हैं, इन्हें वेदान्त भी कहते हैं। अन्त का मतलब यहाँ आखिर नहीं है। यहाँ अन्त शब्द का मतलब निचोड़ या सार है। दूध का सार क्या है? घी। जैसे दूध का अन्त घी होता है, वैसे वेद का अन्त वेदान्त है। वेदों का सार, वेदों का निचोड़ वेदान्त है। वेद का अन्त संहिता नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं, आरण्य ग्रन्थ नहीं, बल्कि उपनिषद् हैं। और उपनिषदों में क्या है? जीवात्मा और परमात्मा दो नहीं, एक हैं। ईश्वर और तुममें इतना ही फर्क है जितना कि सोने में और जिस खनिज से सोना निकला था उसमें। खनिज में सोने के अलावा कुछ अशुद्ध पदार्थ भी रहता है, जिसे हटाया जाता है। उस अशुद्ध पदार्थ को हमारे यहाँ माया कहते हैं। माया को हटा दो, ब्रह्म हो जाओगे। कोई माया कहता है, कोई संसार, नाम अलग-अलग हैं, मगर असल में सोना उसी के अन्दर है। यह उपनिषदों का सिद्धान्त है। *'ईशावास्यमिदं सर्वम्'* – यह यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय का पहला मन्त्र है।

सामाजिक व्यवस्था

समाज हर युग में कुछ जरूरतें लेकर आता है। समाज हर समय कुछ चीजों को जरूरी मानता है और कुछ चीजें अनावश्यक हो जाती हैं। पहले के जमाने में शिक्षा जरूरी नहीं थी, अब शिक्षा एकदम आवश्यक हो गई है। हमारे जमाने में पैसा जरूरी नहीं था, वस्तु जरूरी थी। आज पैसा जरूरी हो गया है, वस्तु जरूरी नहीं है। अगर हम किसी को साइकिल के बदले 600 रुपये देंगे, तो वह रुपये लेना ज्यादा पसन्द करेगा। समाज हर समय राजनैतिक परिस्थितियों, राजा-प्रजा के सम्बन्धों, अपनी विशेषताओं या कुछ बुनियादी जरूरतों को लेकर आता है, और कुछ अन्य चीजों की जरूरत कम हो जाती है या उनकी जरूरत ही नहीं पड़ती। एक छोटा-सा उदाहरण है, शादी। यह हमारे आधुनिक समाज में सब जगह एक बहुत बड़ा कार्यक्रम है। पैसे के दृष्टिकोण से, जश्न की दृष्टि से, हर दृष्टि से शादी बहुत बड़ी चीज हो गई है।

अब अगर हम कहें कि शादी संक्षिप्त और सूक्ष्म होनी चाहिए, तो तुम कहोगे, 'पर हमारे वेदों में तो ऐसा लिखा है।' नहीं, वेदों में ऐसा नहीं लिखा है। हमारे वेदों में हर कर्म के लिए, चाहे वह विवाह हो या अन्त्येष्टि, दो स्वीकृतियाँ दी गयी हैं– वैदिक विधि और लौकिक विधि। वैदिक का मतलब जो वेदों में लिखी गयी है, और लौकिक का मतलब जो तुम लोगों की संस्कृति में है। जैसे, आदिवासियों, आसामियों, कश्मीरियों, पंजाबियों या बिहारियों के समाज में विवाह की अलग-अलग रीतियाँ होती हैं। इन्हें लौकिक रीतियाँ कहते हैं। और एक रीति है वेद में। कन्यादान, पाणिग्रहण, अग्नि साक्षी, सात फेरे–वैदिक रीति में केवल इतनी ही चीजें हैं, बाकी कुछ नहीं है।

बाजा बजाना, दहेज देना, यह सब तुम लोगों ने अपने-अपने ढंग से जोड़ कर रखा है। यहाँ नारियल देते हैं तो दूसरी जगह सुपारी देते हैं। जहाँ सुपारी ज्यादा हो वहाँ सुपारी देंगे। अब हमारे कुमाऊँ में नारियल होता ही नहीं तो कहाँ से देंगे नारियल? मिथिला में मखाने का रिवाज था। मखाना, अर्थात् *'मख अन्नम्'*। मख का मतलब होता है यज्ञ। यज्ञ के अन्न को मखाना कहते हैं। चूँकि वह ताल में होता है, इसलिए उसका नाम है तालमखाना।

असली वैदिक ढंग से जो शादी की जाती है, वह बस आधे-पौन घण्टे की होती है। और उसके पूजा-पाठ में कुछ ढाई-तीन सौ रुपये खर्च होते हैं।

आर्य-समाज में ऐसे ही शादियाँ होती हैं। अब यह आज की आवश्यकता है। बदलते हुए समाज में बहुत चीजें सूक्ष्म होती जाती हैं। खर्चा भी कम, समय भी कम, झंझट भी कम। अब रही अन्त्येष्टि। पहले डोम को बुलाना पड़ता था, वह आग तैयार करके देता था। अब सीधा ले जाओ क्रिमेटोरियम में, दो-तीन सौ रुपये, ऐसा कुछ खर्चा है उसका। वहाँ शव को चंदन से नहला दो, धूप दिखला दो, फूल चढ़ा दो और अन्दर डाल दो। अगर तुम्हें भस्म प्रयागराज में डालनी है तो दूसरे दिन बोतल में मिल भी जायेगी।

कहने का मतलब यह कि तुम्हें अपने आप को समाज के अनुसार बदलना चाहिए और यह नहीं कहना चाहिए कि ऐसा हमारे धर्म में लिखा है। नहीं। दुनिया में बहुत-से धर्म अनम्य और रूढ़िवादी हैं। लेकिन हमारा धर्म अनम्य नहीं है, इसमें काफी लचीलापन है। वैदिक धर्म कहता है कि धर्म मनुष्य की भलाई के लिए है। इसलिए सुविधानुसार उस धर्म को परिवर्तित करना है। तुम कपड़े क्यों पहनते हो? इसलिए कि तुम्हें जरूरत है। पर गर्मी में भी स्वेटर और जाड़ों में भी पतला कपड़ा पहन कर रहोगे? नहीं। जिस तरह के कपड़े की जरूरत है उसी तरह का पहनोगे, और जरूरत के मुताबिक बदलोगे। वैसे ही रीति-रिवाज भी जरूरतें हैं और समय के मुताबिक इन्हें भी बदलना चाहिए, सूक्ष्म करना चाहिए। आज का युग बहुत तेजी से चलता है। हम एक बार सुपरसॉनिक विमान से लन्दन से न्यूयॉर्क गये। हम लन्दन से सुबह का नाश्ता करके गए और जब न्यूयार्क पहुँचे तब वहाँ भी नाश्ते का समय था। दो बार नाश्ता मिला! हमने कई बच्चों को देखा है जो दो साल की अवस्था में टी.वी. कार्यक्रमों का विवेचन करते हैं। दो साल का बच्चा टी.वी. देख रहा है और कहता है, 'मम्मी, इस प्रोग्राम को हटाओ, दूसरा प्रोग्राम लगाओ।' याने बच्चों का विकास कितना तेज है। इनकी हॉर्मोनल प्रणाली कितनी तेजी से काम करती होगी। इसको कहते हैं तेज युग। ऐसे युग की सामाजिक व्यवस्था में आदमी को भी तेजी से जाना चाहिए।

कहते हैं कि आर्य बाहर से आये, भारत के नहीं हैं। क्या यह सच है?

नहीं। इतिहास में तो अभी तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो जाये कि आर्य बाहर से आये थे। कहीं भी, किसी पत्थर में, किसी शिला में कुछ नहीं मिला, केवल आधुनिक विद्वानों ने अनुमान लगाकर मान लिया। यह केवल एक कल्पना है।

आर्यों के भारत के साथ सम्बन्ध का एक सुस्पष्ट, सकारात्मक प्रमाण है। अब जैसे पारसी लोग ईरान से यहाँ आये। वे माने या न माने, मगर यही सच है। अगर आज वे अपने को हिन्दुस्तानी भी कहते हैं तो भी पूजा-पाठ के समय वहीं की नदियों और पहाड़ों का नाम लेते हैं। मुसलमान अपने को हिन्दुस्तानी कहें, तो कहें। मगर जिस समय वे कुरान पढ़ते हैं, उस समय पश्चिम की ओर ही मुँह करते हैं, क्योंकि वहीं मक्का साहब और मदीना साहब हैं। पर वेदों में कहीं पर भी भारत के बाहर के भूगोल का जिक्र नहीं है –

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

वैदिक मंत्रों में स्थानीय नदियों के ही नाम आते हैं, यूरोप या मध्य एशिया की नदियों के नहीं। और अगर तुम कहो कि जब यह सब वैदिक साहित्य विकसित हुआ, उस समय तक आर्य यहाँ आकर बस चुके थे, तो यह बात भी उन्हें कहीं-न-कहीं लिखनी चाहिए थी। उनकी पुस्तकों में इस तथ्य का भी सन्दर्भ होना चाहिए।

मानव-विज्ञान के रिकॉर्ड्स के हिसाब से हमारी खोपड़ी का जो आकार और संरचना है, वह मध्य एशिया की ही है।

यह मैं मानने को तैयार हूँ कि किसी क्षेत्र विशेष में आदमी-आदमी का शारीरिक ढाँचा एक ही प्रकार का होता है। पंजाब और अफगानिस्तान के लोगों का शारीरिक ढाँचा मिलता-जुलता है। मैं यह मानने को तैयार हूँ, क्योंकि हम लोगों के अनुसार महाभारत के युद्ध में जिन लोगों ने भाग लिया था वे गांधार, उज़बेकिस्तान, यहाँ तक कि तुर्किस्तान के थे। हम तो कहते हैं कि हमारी और उनकी एक जात है। मजहब बेशक अलग हैं। उनकी आँखें काली हैं, हमारी आँखें भी काली हैं। जितनी भी शारीरिक विशेषताएँ हैं, वे समान हैं।

दो बातें याद रखनी चाहिए। जो भी ऐतिहासिक वास्तविकता होगी उसकी परछाई लोक संगीत, लोक कथाओं, लोक रीतियों में कहीं-न-कहीं होनी चाहिए। इन्द्र को मानना चाहिए, क्योंकि बरसात वही देता है। नहीं तो हमारी खेती नहीं होगी। यह परम्परा आर्यों में थी। वेदों में तीन प्रमुख देवताओं के नाम आते हैं – इन्द्र, वरुण और मातरिश्वन्। वरुण का मतलब पानी हुआ,



और मातरिश्वन् का वायु। इनके अलावा जितने देवी-देवता हैं, सबका वेदों में उल्लेख आता है। साथ ही यह प्रार्थना आती है – हे भगवान! हमारे बैल मजबूत रहें, पेड़ों में खूब फल हों, जमीन में खूब अन्न हो, परजनिया ठीक समय पर बरसे। यहाँ जितने यज्ञ होते थे, इसी दृष्टिकोण से होते थे। जो जनजातियाँ वैदिक नहीं हैं, उनमें इस प्रकार की लोक-रीतियाँ नहीं होती हैं।

यूरोप के लोग अवैदिक जनजातियों के थे। अब तो वे वहाँ बस गये हैं, लेकिन उनकी लोक-रीतियाँ, उनकी भाषाएँ बतलाती हैं कि वे अवैदिक जनजातियों के थे, भले ही वे कहीं से भी आए हों। उनकी भाषा में एक शब्द मिलता है डेनिश का, एक शब्द मिलता है लैटिन का, एक शब्द मिलता है ग्रीक का। संस्कृत में हर अक्षर, हर शब्द का एक ही उच्चारण होता है, स्वर-व्यंजनों की संधि होती है। संस्कृत में कहीं कोई अपवाद नहीं है, जबकि अवैदिक भाषाओं की एक विशेषता है कि उनमें कोई निश्चित नियम या प्रणाली नहीं रहती, बड़े ही बेतरतीब ढंग से सब कुछ रचा रहता है। उनका लोक-संगीत कई जगह से मिश्रित रहता है। उनके नृत्य की परम्परा, वस्त्रों की परम्परा, स्त्री-पुरुष के बीच व्यवहार की परम्परा और सामाजिक व्यवस्था को देखो, इनमें भिन्नताएँ हैं। जो परम्परा, जो जाति एक जगह पर सैकड़ों या हजारों सालों तक रहती है, वह एक प्रकार के नियमों का पालन करती है, एक व्यवस्था को बनाकर रखती है, परिवर्तित

नहीं करती। शादी ऐसे ही होनी चाहिए, अन्त्येष्टि ऐसे ही होनी चाहिए, बच्चों का नामकरण ऐसे ही होना चाहिए।

करीब आठ सौ साल पहले हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के आक्रमण हुए, जिससे यहाँ के नाचने वाले, गाने वाले, बैंड बजाने वाले, चित्रकारी करने वाले, माने कलाकारों का समुदाय यहाँ से भाग गया। हजारों-लाखों की संख्या में लोग देश छोड़कर पश्चिम की ओर गए। पश्चिम में ये जिप्सी कहलाये और आज तक कहीं नहीं बस पाये। न फ्राँस में बस पाये, न रोमानिया में। इनकी जितनी भी कुल रीतियाँ हैं, रिवाज हैं, सब सूक्ष्म और संक्षिप्त हैं। लड़की को पकड़ा दिया, शादी हो गयी। हमारे यहाँ तो शादी में बहुत दिन लग जाते हैं।

कहने का मतलब यह कि आर्य लोग कहाँ से आए, कैसे आए, इस पर वाद-विवाद करना बिल्कुल बेकार है। कारण यह कि आर्यों ने कभी भी लिखित रूप से यह नहीं छोड़ा कि वे किसी दूसरे देश के थे। नदियों और पहाड़ों में उन्होंने यहीं का नाम दिया। दुनिया के किसी भी साहित्य में सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेद है। ऋग्वेद लिखने के पहले भाषा और व्याकरण में कितनी उन्नति हुई होगी? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि जंगली आदमियों ने ऋग्वेद लिखना शुरू कर दिया? उस समय व्याकरण होगी, छन्द होंगे। जितने भी वेद हैं, उनकी भाषा स्वतंत्र नहीं है। सब छन्दों पर आधारित हैं, गायत्री, त्रिष्टुप, जगती आदि। उनमें लघु-गुरु, लघु-गुरु मात्राओं का जोड़ है, जो बहुत कठिन है। कविता और शब्दों का चयन एकदम गजब का है।

ऋग्वेद में सोम रस पर एक अध्याय है, सोम सूक्त। सोम रस एक प्रकार का द्रव्य होता था, जिसे पीकर लोग चेतना के अन्य आयाम में चले जाते थे। यह सोम स्तुति पढ़ने लायक है। केवल भाषा या व्याकरण की दृष्टि से नहीं, आखिर मनुष्य की भावना भी तो होती है न। उस समय के मनुष्य की भावना को देखना चाहिए कि कितने सुन्दर ढंग से अपने को व्यक्त किया है। उसके पहले कितनी शताब्दियाँ बीत चुकी होंगी, जब व्याकरण, भाषा, छन्दों, अलंकारों और नव रसों का विकास हुआ होगा। तब जाकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद आए और इन वेदों में कहीं पर एक लक्षण नहीं है कि आर्य बाहर से आए। किसी गैर-हिन्दुस्तानी पहाड़ी का नाम नहीं है। हिमालय, विन्ध्याचल, सह्याद्रि – यही नाम बताए हैं। जिन नदियों, समुद्रों और जनजातियों का नाम आता है, वे यहीं की हैं। कहीं पर एक बार भी उन लोगों ने उस ठण्ढक का

उल्लेख किया होता, जो उत्तरी और मध्य एशिया में होती है, जहाँ आदमी काँप जाए। वह खेती का देश थोड़े ही है। पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया, ये कृषि देश नहीं हैं। बेशक वहाँ शाक-सब्जी उगाते हैं, पर तुम उन्हें कृषि देश नहीं कह सकते।

कृषि देश वह होता है जहाँ छः ऋतुएँ होती हैं। दो महीने कम गर्मी, दो महीने बहुत गर्मी, दो महीने बसन्त, दो महीने ठण्ढ, दो महीने वर्षा। सिर्फ गर्मी या बरसात हो तो क्या खेती करोगे? छः महीने तक बर्फ गिर रही है, लोग इतना मोटा कपड़ा पहने हुए हैं, मांस के बिना उन लोगों की जिन्दगी नहीं चल सकती। वे लोग शाकाहारी भोजन के बारे में सोच भी नहीं सकते हैं। पूर्वी या पश्चिमी रशिया, यहाँ तक कि जर्मनी आदि में शाकाहार के बारे में सोच भी नहीं सकते, वे तो मर जायेंगे। हिन्दुस्तान के बाहर किसी भी राष्ट्र की यह कल्पना नहीं है कि शाकाहार नाम का कोई भोजन होता है। हाँ, सब्जी खाते हैं, मगर रोटी-दाल-सब्जी खाकर ही रह सकते हैं, यह नहीं मान सकते। जबकि वेदों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि ऋषि-मुनि लोग कन्द-मूल-फल खाया करते थे। यह तो नहीं लिखा है कि पाठा खाते थे। खाते होते तो लिखा तो होता न?

इसी तरह ब्रह्मचर्य की कल्पना है। हनुमान जी को अखण्ड ब्रह्मचारी मानते हैं। ब्रह्मचर्य की कल्पना दुनिया में कहीं नहीं है, सिवाय भारत के। यहाँ तक कि ईसाई धर्म में भी ब्रह्मचर्य का तात्पर्य विवाह न करने तक सीमित है। अविवाहित होना और ब्रह्मचारी होना, दोनों अलग चीजें हैं। ब्रह्मचर्य की कल्पना इस देश की है, हमारे वेदों और उपनिषदों की है।

जिन लोगों ने ये पुस्तकें लिखी थीं, उनका ऐसी जातियों से सामना जरूर हुआ जो समय-समय पर भारत आती रहीं, जैसे, शक, हूण, अफ्रीकन, मंगोल और कम्बोज। इसका उल्लेख मिलता है। रामजी के जीवन में उल्लेख आता है। विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच जब द्वन्द्व हुआ था, उसका भी उल्लेख है, जिसमें खर, म्लेच्छ, यवन, कम्बोज और हूण जाति के लोग आए थे। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, ये भी उस समय की जातियों के नाम हैं। हम लोग इस बात को मानते हैं कि पहले एक समय ऐसा था जब भारतवर्ष एक बहुत बड़ा राष्ट्र था, जो उत्तर में काबुल और हिन्दुकुश तक फैला हुआ था, दक्षिण-पूर्वी एशिया तक फैला हुआ था। जैसे आजकल अमरीका सोने की चिड़िया है, उस वक्त इस देश को सोने की चिड़िया कहते थे। हर राष्ट्र के

जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं। धीरे-धीरे यह राष्ट्र भी विघटित होता गया। कुछ रेगिस्तान हट गया, अफगानिस्तान अलग हट गया। राणा सांगा तो बराबर अफगानिस्तान, ईरान वगैरह जाते थे। वह उनका इलाका था।

आर्यों का भारत के बाहर से आना कोई ऐतिहासिक सत्य नहीं है। यह जबरदस्ती डाला गया है। एक बात और हम अपने अनुभव से कह रहे हैं। गंगोत्री में हमारी गुफा है, साधन भी है, पर हम वहाँ नहीं ठहरे। क्यों? वहाँ गुफा में केवल चार महीने टिक सकते हैं, बाकी समय नीचे उतरना पड़ेगा, उत्तरकाशी आना पड़ेगा। मैंने कहा छोड़ो, आना-जाना हमको पसन्द नहीं। यहाँ रहेंगे, तो जमकर साधना करेंगे। इसलिए हमने यह जगह चुनी। न गर्म, न ठण्ढा। जो जगह प्रतिकूल नहीं होती, जहाँ का मौसम कठोर नहीं होता, वहाँ का समाज स्थिर समाज होता है। गाँवों में एक-एक परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहता आया है। हिन्दुस्तान में ऐसा ही हुआ है।

हाँ, इतनी बात मानने के लिए जरूर तैयार हैं कि हिन्दुस्तान में बाहर के देशों से बहुत लोग आए हैं। अफ्रीका से लोग आए हैं, सुमालिया से आए हैं, वे केरल में बसे। दक्षिण-पूर्व एशिया से आये तो बंगाल और उड़ीसा मे बसे। अनेक जातियों के लोग यहाँ आए हैं और जो मूल आर्य थे वे अब करीब-करीब मिट ही चुके हैं। वे अधिकतर इन जातियों के साथ मिल चुके हैं। आर्यों की मूल भाषा संस्कृत थी, और वे मूलतः कृषक थे। खेती करने वालों के बारे में विद्वानों की यही राय है कि खेती वही समाज करता है जो टिकता है। व्यापार तो कहीं पर भी जाकर कर सकते हैं, मगर खेती में तो तुमको एक जगह ही टिकना है। यह एक सुरक्षित समाज ही कर सकता है। आर्य लोग खेती करते थे, जानवर पालते थे और छोटा-मोटा व्यापार करते थे। कृषि, गौरक्ष्य और वाणिज्य – ये तीन शब्द आए हैं हमारे यहाँ।

वेदों में सबसे पहला शब्द आता है अग्नि – *अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।* आर्य अग्नि की उपासना करते थे। जब इनको अग्नि का पता चला तब इन्होंने गाँव में कुछ लोगों को अग्नि संभाल कर रखने को कहा। उनका काम केवल अग्नि को रखना ही था। जिनको जरूरत पड़ती थी वे उन लोगों से आग माँग लेते थे। वे आगे जाकर अग्निहोत्री ब्राह्मण बने। वेदों में, देवताओं में गणेश जी का स्थान सबसे प्रथम है। किसी भी शुभ कार्य से पहले पूजा गणेश जी की ही होगी। चाहे तुम वैष्णव हो, शैव हो या शाक्त। माना नास्तिकों को कोई फर्क नहीं पड़ता, पर पूजा के समय

पहले गणेश की ही पूजा होती है। वेदों में आता है *'ॐ गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे'*। कोई भी पूजा गणेशजी के मन्त्र से ही शुरू होती है। आर्य लोग अनेक देवी-देवताओं को मानते थे, यद्यपि वे जानते थे कि परमपिता एक है। वे जानते थे कि हर व्यक्ति की अपनी मान्यता होती है। दक्षिण भारत के लोग आए तो उन्होंने शिवजी को माना, बंगाल के लोग आए तो उन्होंने देवीजी को माना, पंजाब के लोग आए तो उन्होंने गुरुजी को माना, उत्तर प्रदेश के लोग आए तो उन्होंने राम-कृष्ण को माना। केवल एक ही देवी या देवता को मानने से समाज नहीं चल सकता। अच्छा है कि अलग-अलग देवी-देवता को मानो। इससे समाज का बहुत अच्छा एकीकरण होता है।

तन्त्र में तो मांस और मदिरा के सेवन का भी अनुमोदन है।

तन्त्र यह नहीं कहता कि तुम मांस खाओ या मदिरा पियो, बल्कि यह कहता है कि यदि तुम मांस खाते हो या मदिरा पीते हो तब भी तुम अभ्यास कर सकते हो, क्योंकि ध्यान और कुण्डलिनी योग का अभ्यास किसी के लिए वर्जित नहीं है। आखिर संसार में इतने अरब लोग हैं, इनमें केवल थोड़े ही लोग योग कर सकेंगे क्या? तन्त्र में यह नहीं कहा गया है कि मांस खाना या मदिरा पीना एक अनिवार्य क्रिया है। ऐसा करना जरूरी नहीं है। कहने का मतलब यही है कि यदि तुम मांसाहारी हो तो भी अभ्यास कर सकते हो।

दूसरी बात यह है कि हिन्दुस्तान में अनेक देशों और जातियों के लोग आए और वे अपनी-अपनी क्रियाओं, रीति-रिवाजों और पूजा-पद्धतियों को लेकर आए। उनमें से एक यह भी है। हर जाति में कुछ विशेष पूजा-पद्धतियाँ प्रचलित होती हैं। वे जातियाँ जब इन पद्धतियों को अपने साथ लायीं तो भारत के लोगों ने कहा, ठीक है, करो। इसे जाति के रीति-रिवाज के रूप में लिया गया। तुम कभी कामाख्या गए होगे तो वहाँ पण्डितों को हाथों में कबूतर लेकर घूमते देखा होगा। उसी कबूतर की बलि चढ़ाते हैं, उसी कबूतर का रक्त प्रसाद रूप में देते हैं। उन लोगों की जाति में यह स्वीकृत है। हमारे आस-पास जितने छोटे-बड़े मन्दिर हैं, सब जगह पाठा कटता है। खाने के लिए नहीं, पूजा के लिए। लड़का हुआ, पाठा काटो। दुकान लग गयी, पाठा काटो। मकान बन गया, पाठा काटो। शादी हो गयी, पाठा काटो। किसी की कोई भी मनोकामना पूरी हुई तो पाठा काटो। हम कहते हैं, ठीक है भाई, जब तुम लोगों का यही रिवाज है तो इसकी निन्दा

क्यों करें। हम इस रिवाज को नहीं मानते, मगर तुम इसे मानते हो और हम तुम्हारी मान्यताओं और विश्वासों को तोड़ना नहीं चाहते।



इस तरह से इस देश में शैव भी आये और शाक्त भी। ईसामसीह भी आ गये, और मरियम भी। संत फ्रान्सिस भी आ गये और इस्लाम भी। कितने लोग आ गए यहाँ! हम लोगों की यही मान्यता है कि आने दो, क्या फर्क पड़ता है। यहाँ पहले सरसों के तेल का दिया जलता था। अब लोग मोमबत्ती जलाने लग गये हैं। कोई नुकसान नहीं है। क्या मोमबत्ती का ईसाई धर्म से और सरसों तेल का हिन्दू धर्म से कोई सम्बन्ध है? अरे, यहाँ खेती वाले लोग थे, सरसों की फसल होती थी, उसी के तेल से दीपक जला देते थे। ऐसे ही ईसाई लोग मोमबत्ती जला लेते हैं।

इस देश में सभी प्रकार के रीति-रिवाजों को, सभी प्रकार के धर्म-सम्प्रदायों को, सभी प्रकार के साधु-सन्तों को स्वीकार किया गया है, क्योंकि हम लोग जानते हैं कि इसमें कोई नुकसान नहीं है, बल्कि फायदा ही है। तन्त्र में पंच-मकार हैं – मांस, मद्य, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन, और पाँचों समाज द्वारा अस्वीकार्य हैं। मगर फिर भी समाज ने तन्त्र दर्शन को स्वीकार किया है।

सृष्टि में तीन चीजें बराबर चल रही हैं – जन्म, मरण और उन दोनों के बीच जीवन। तीनों में संतुलन होता है। ये तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में हमारे सामने आते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, ये तीन मौलिक सिद्धान्त हैं। अगर तुम लोग मृत्यु या विनाश को दोष के रूप में देखते हो और सोचते हो कि किसी जीव का नाश कर रहे हैं, जीवन मर रहा है, तो

सबसे पहले तुम साग-सब्जी खाना छोड़ दो, क्योंकि सब्जी में भी उतना ही जीवन है जितना पाठे में। चाकू लगने से जितनी प्रतिक्रिया पाठे के शरीर में होती है, ठीक उतनी ही प्रतिक्रिया लौकी में भी होती है। एक मनुष्य में, एक पाठे में और एक पालक के पत्ते में जो प्रतिक्रिया होती है, वह बराबर है। किर्लियन फोटोग्राफी ने इसे सिद्ध किया है। जीवन सर्वव्यापी और सार्वभौमिक है। सब जीवों में जीवन है और जहाँ जीवन है वहाँ परिवर्तन भी है। परिवर्तन का मतलब विकास और विनाश दोनों होता है। मिट्टी पत्थर बनती है, पत्थर मिट्टी बनता है। वास्तव में देखा जाए तो मृत्यु सृष्टि में संतुलन की प्रतिक्रिया है। सृष्टि में जितना मूल्य एक पाठे या मछली का है, उतना ही मूल्य एक लौकी का भी है। तुम इन तीनों का बराबर मूल्यांकन करो या फिर चुप हो जाओ। समझ में आ रहा है न?

जहाँ तक मारने की बात है, आजकल तो सब जगह कहते हैं कि शेर को भी मत मारो, बन्दर को भी मत मारो, सड़े हुये कुत्ते को भी मत मारो, कीड़े को भी मत मारो। जैन लोग कहते हैं कि मुँह भी बन्द रखो ताकि कीटाणु न मरें। यह दर्शन की अति है। तुम आज से पाँच सौ साल पहले की बात सोचो, जब हिन्दुस्तान की आबादी एक तिहाई से भी कम थी। जंगल ही जंगल थे। खेतों में धान या गेहूँ लगा हुआ है, अचानक पाँच हजार चिड़ियाँ खेत पर आ उतरती हैं। हो गयी खेती खत्म। जंगलों से मृगों का झुण्ड आता है और खेत में कूद पड़ता है। हमने तो अपनी आँखों से देखा है। जब खेत में बासमती चावल जमा रहता है, उसकी सुगन्ध से मोहित होकर हिरणों के झुण्ड आते हैं। गोलियाँ चलती रहती हैं, हिरण मरते रहते हैं पर फिर भी वे खाते ही रहते हैं। उस समय वे पागल हो जाते हैं। वैसे तो किसी भी धान के खेत में सुगन्ध बहुत आती है, मगर बासमती की सुगन्ध से तो हिरण पागल हो जाते हैं। उस जमाने के लोग क्या अहिंसा का राग अलापते थे? नहीं। इसीलिए शिकार खेलने का रिवाज चला। ठाकुर लोग शाम को अपनी बन्दूक लेकर चले जाते थे जंगल में और खट्-खट्-खट्, सबको मारते जाते थे। क्योंकि ये पशु-पक्षी कृषि के लिए घातक होते हैं।

अभी भी गाँवों में इस वजह से बहुत मुश्किल होती है। बहुत नुकसान होता है। हम लोगों के यहाँ जो परिवार खेत की रखवाली करता था उसको नियमित आय के अलावा सालाना सोने की चवन्नी देते थे। उसका काम चौबीसों घण्टे जानवरों और चिड़ियों को मारना था। हम लोग कारतूस वाली

बन्दूक नहीं रखते थे, छर्रे वाली बन्दूक रखते थे। वह फैल कर मारती है, उस बंदूक से 40-50 चिड़ियाँ वहीं ढेर हो जाती थीं।

अब पर्यावरण शास्त्र आ गया है। यह पर्यावरण शास्त्र जो तुम यूरोप और अमरीका से लेकर पढ़ रहे हो, यह सब उन लोगों की बदमाशी है। इसमें सच्चाई नहीं है। बहुत बड़ा षड्यन्त्र है यह। उन्होंने तो अपने जंगल काट दिये, कारखाने बना लिये, शहर बसा लिये। कोई बोलने वाला था नहीं उस समय। आज वे हम लोगों को बोल रहे हैं कि कारखाने नहीं बनाने चाहिए। पर्यावरण विज्ञान की ओट में एक बहुत बड़ा खेल खेला जा रहा है, जिसमें हम सब उनका साथ दे रहे हैं। जो तुम अखबारों में पढ़ते हो, फिल्मों में देखते हो, वह सब गलत है। हम जानते हैं। हम तो घुमक्कड़ आदमी रहे हैं। सारा हिन्दुस्तान घूमा हुआ है। हम तो चप्पा-चप्पा जानते हैं, किस देश में क्या हो रहा है। आसाम से लेकर श्रीलंका तक के सब नदी-पहाड़ों, गाँव-नगरों के नाम जानते हैं, सारा नक्शा जानते हैं। कहाँ कौन-सा पेड़ होता है, सब जानते हैं।

बात सिर्फ इतनी है कि उन लोगों को गरीब देशों के विकास में कोई-न-कोई रोड़ा डालना है। और वे कई प्रकार के रोड़े अटका रहे हैं। एक तो यह मुद्दा है, और दूसरा है मानव-अधिकार। मानव-अधिकार राजनीति के क्षेत्र में बहुत बड़ा रोड़ा है। इससे सारा राजनैतिक तन्त्र बिगड़ जाएगा। प्रजातन्त्र में हर आदमी को अगर मानव-अधिकार दे दिये जायें तो सभी अपराधी और खूनी छूट जायेंगे। ये सब हथकण्डे हैं जो भारत जैसे देशों के विकास में बाधा उत्पन्न करने के लिए लगाए जा रहे हैं। सामान्य मुद्दों पर नहीं, आदर्शवाद के नाम पर यह सब चल रहा है। इसमें सच्चाई कुछ नहीं है। हिन्दुस्तान एकदम ठीक है। जहाँ कारखाना बनाना चाहो, वहाँ बनाओ। जहाँ तक गंदगी का सवाल है, माना कि कलकत्ता में गंदगी है, भागलपुर में गंदगी है, हलवाई की दुकान के आगे गंदगी है, लेकिन गंदगी तो उनके यहाँ भी है। उनके यहाँ कितना औद्योगिक कचरा है! और जहाँ तक गरीबी का सवाल है, जितने गरीब लोग यहाँ हैं, उतने वहाँ भी हैं। शायद ज्यादा ही हों। इंग्लैण्ड से कहो कि अपना रोजगार भत्ता बन्द करके देखे। कितने ही लोगों को खाने को नहीं मिलेगा, रातों-रात निमोनिया से मर जायेंगे, इतना ठण्डा देश है। अमरीका का भी यही हाल है।

लेकिन वहाँ जनसंख्या कम है। यहाँ समस्या यह है कि जनसंख्या बहुत ज्यादा है।

तुम ठीक कहते हो, लेकिन वहाँ जनसंख्या कम होते हुए भी यहाँ से ज्यादा गरीब लोग हैं। बस फर्क इतना है कि उनकी सरकार दूसरे मुल्कों में झगड़ा करवाकर, उन्हें अपने अस्त्र-शस्त्र बेचकर, अपने गरीबों को हफ्ता दे देती है। वे बेचारे चुपचाप पावरोटी-मक्खन खाकर सो जाते हैं। इंग्लैण्ड की बात कहते हैं, वहाँ के गरीब बेरोज़गारों को हफ्ते में 5-6 पौंड, ऐसा कुछ मिलता है। जिसकी जैसी योग्यता होती है, उसे उसके मुताबिक देते हैं। अगर आज इस हफ्ते को बन्द कर दें, तो सब सड़क पर आ जायेंगे।

जब मैं विदेश जाता था, वहाँ के लोग मुझसे कहते थे, 'तुम्हारे यहाँ बहुत गरीबी है।' हम कहते थे, 'गरीबी तो तुम्हारे यहाँ भी बहुत है। हमारे यहाँ गरीब दिखते हैं, तुम्हारे यहाँ गरीब दिखते नहीं हैं। हफ्ता बन्द कर दो, सब सड़क पर आ जायेंगे। तब दिखेंगे वे लोग।' वे कहते थे कि तुम्हारा देश गन्दा है। हम कहते थे, 'हमारे पास घरेलू कचरा है तो तुम्हारे पास औद्योगिक कचरा है। तुम औद्योगिक कचरा साफ करो, हम घर का कचरा साफ करेंगे।' पाश्चात्य जगत् के औद्योगिक देश आदर्शों के नाम पर विकासशील देशों पर अनुचित दबाव डाल रहे हैं। जानवरों को मारने में कोई नुकसान नहीं है। साँप निकल आएगा तो नहीं मारोगे क्या? मच्छर नहीं मारोगे?

प्रजातंत्र के अलग-अलग स्तर होते हैं। अपने देश में जो प्रजातंत्र है, उसका विश्लेषण करो। यहाँ 100 प्रतिशत प्रजातंत्र दे दिया है। बुरे आदमी के भी उतने ही हक हैं, जितने अच्छे आदमी के। इस प्रकार का प्रजातंत्र वहीं सफल होता है जहाँ कानून के हाथ बहुत लम्बे होते हैं, जहाँ पुलिस के अधिकार बहुत अधिक होते हैं। वहाँ भी पूरी तरह सफल नहीं हो पाता है। अमरीका में इतनी सतर्क पुलिस है, उसके पास इतने साधन हैं, फिर भी वहाँ अपराध होते हैं, दिन-दहाड़े खून-डकैती हो जाती है, कुछ भी हो जाता है। पहले आदमी लड़ाई में मरते थे, अब इन सब में मरेंगे। राजतंत्र में भी लोग मरते थे, तानाशाही में भी लोग मरते थे, और अब प्रजातंत्र में लोग मरते हैं। समाज आज तक राम-राज्य के लिए कोई सिद्धान्त नहीं निकाल पाया।

आज किसी भी विकसित देश को देख लो। अमरीका में कितनी हत्याएँ और बलात्कार होते हैं, जबकि वहाँ इतनी सतर्क पुलिस है। स्वीडन दुनिया

का सबसे कल्याणकारी देश है, मगर वहाँ आत्महत्याओं के आँकड़े देखो तो विश्वास नहीं होता। घर में सब-कुछ है, खाने-पीने को है, नौकरी निश्चित है, बिजली चौबीस घण्टे रहती है, हीटर भी है, मकान भी है, शादी की भी जरूरत नहीं, साथ में लड़की रख सकते हो, फिर भी आत्महत्या क्यों? यह समाज की कमजोरी है या राजनैतिक प्रणाली की? यह राजनीति की कमजोरी है। राजनैतिक व्यवस्था जब असफल होती है तब उसका समाज पर असर पड़ता है। जिस देश में सरकार तुम्हें रोटी, कपड़ा और मकान दे दे, हफ्ता भी दे दे, यह भी कह दे कि तुम शादी करो या न करो, लड़की साथ रख सकते हो, वहाँ तो संघर्ष ही खत्म हो गया। समझ में आया? जहाँ कोई संघर्ष नहीं होता वहाँ विषाद होता है। इस विषाद को दूर करने के लिए ही प्रकृति ने संघर्ष बनाया है। बी.ए. पढ़ो, एम.ए. पढ़ो, नौकरी करो, दुकान खोलो, घर बसाओ, लड़की की शादी की तैयारी करो – यह सब संघर्ष दिमाग को चौकन्ना रखता है। लेकिन पश्चिम के लोगों के जीवन में संघर्ष ही नहीं है और यही चीज एक दिन पाश्चात्य जगत् को ले जाने वाली है। संघर्ष के अभाव से पाश्चात्य जगत् का अंत होगा और भारत संघर्ष के बल पर तरक्की करेगा।

तुम्हारे पिताजी के पास खूब पैसा है, पतिदेव के पास पैसा है, बेटाराम के पास पैसा है, यह पर्याप्त नहीं। संघर्ष का मतलब जीवन में कुछ ऐसा भी होना चाहिए जिसे हम प्राप्त नहीं कर पायें। इतना काफी नहीं कि तुम्हारी शादी हो चुकी है, बच्चे हैं, परिवार है। इसके अलावा भी अगर तुम कुछ करने का प्रयास करते हो तो यही संघर्ष है। तुम्हें सोचना चाहिए कि मुझे कुछ और करना है। दिमाग को बराबर चालू रखो नहीं तो इसमें जंग लग जायेगा। स्वीडन में आत्महत्या का कारण यही है। हमने उन लोगों से कहा, 'तुम्हारी राजनैतिक व्यवस्था गलत है। हफ्ता बन्द हो जाना चाहिए। तुम लोगों के यहाँ लड़के-लड़कियों के बीच जो मुक्त सम्बन्ध हैं, उन पर अंकुश लगना चाहिए। तुम्हारे धर्मगुरुओं को इस बात पर जोर देना चाहिए कि लोग बकायदा शादी करें, क्योंकि शादी अपने में सबसे बड़ा संघर्ष है।' अगर कोई सही ढंग से शादी करके रहे तो बहुत बड़ा झंझट है न? लेकिन लड़का-लड़की केवल साथ में रहें तो कोई झंझट नहीं है। जब चाहो छोड़ दो। वास्तव में शादीशुदा जीवन का संघर्ष ही अच्छा है।

– 27 सितम्बर, 1997



अध्याय 19

पुरुष तो कभी स्त्री का प्रतिदान नहीं कर सकता। स्त्री का, माँ का हम पर जो उपकार है, उसकी कभी भरपाई नहीं हो सकती। स्त्री की कोख से शंकराचार्य, विवेकानन्द और आइन्स्टाइन जैसी, राम और कृष्ण जैसी विभूतियाँ आईं। भगवान को भी तो वही अवतार देती है। जिस विधि से तुम पैदा हुए, उसी विधि से राम और कृष्ण भी पैदा हुए। इसलिए स्त्री के प्रति मेरा ख्याल हमेशा ऊँचा रहता है। और मैं इसे गुप्त नहीं रखता। यहाँ आश्रम आने वाली लड़कियों और महिलाओं के प्रति मेरा विशेष ख्याल रहता है।

स्वामीजी, स्त्रियाँ पैरों में बिछिया क्यों पहनती हैं?

इसलिए कि जब वे खेतों में काम करती हैं, तब अंगुलियों के बीच फंगस न लगे। जब अंगुलियाँ सटी रहती हैं तब उनमें फंगस लग जाता है, पर जब बिछिया पहनती हैं तो अंगुलियाँ अलग-अलग रहती हैं। हमारे हिन्दुस्तान में हर बात के पीछे दो अर्थ रहते हैं, एक धार्मिक और दूसरा लौकिक या व्यावहारिक। कोई भी परम्परा जब केवल धार्मिक अर्थ से सम्बन्ध रखती है तो वह साम्प्रदायिक हो जाती है, पर यदि वह लौकिक भी हो तो वह व्यापक हो जाती है। और यह सोना-चाँदी क्यों? इसके पीछे सीधा-सा कारण है। हिन्दुस्तान में किसी जमाने में इतना सोना था कि इसे सोने की चिड़िया कहते थे। इतना सोना कहाँ चला गया? जितने भी राजा-महाराजा और शासक आए, सब लोगों ने अपने-अपने तरीके से खा लिया, बेच दिया, यह किया, वह किया। सरकार का सोना तो हिन्दुस्तान में खत्म हो गया, मगर जनता का सोना खत्म नहीं हुआ। सरकारी सोना तो हमारे काम नहीं आया, मगर

हमारी माँ का बचाया हुआ सोना हमारे काम आया। जिसे आप लोग घर का सोना कहते हो।

गरीब-से-गरीब घर में भी 40-50 हजार रुपये का सोना जरूर होगा। यह कन्याधन है, स्त्री-धन है, परिवार का धन है, और इस पर मर्द हाथ नहीं लगा सकता। यहाँ हर परिवार के पास कम-से-कम लाख, दो लाख का सोना-चाँदी रहना ही चाहिए, ताकि यदि सरकार गिरे या लुट जाए या हमलावर आएँ, जिसको आना है आए, हमारे पास तो अपना सोना है। शासन आए, शासन जाए, हम परवाह नहीं करते। शासन में सभी सरकारें नि:स्वार्थ नहीं होतीं। देश को बेचने वाली सरकारें भी दुनिया में हुई हैं। तब सरकार पर कैसे विश्वास किया जाए? यहाँ इन निरक्षर देहातियों के पास विश्वास करने के लिए कोई साधन भी नहीं हैं। न अखबार पढ़ते हैं, न टी.वी. देखते हैं, न राजनीति में हैं। सवेरे से शाम तक लकड़ी चुनते रहते हैं, उसी पर खाना बना लेते हैं। इनको फुरसत कहाँ है। कम-से-कम 70 प्रतिशत भारत की यही हालत है। हम तो सब जगह घूमे हुए हैं, औसत बता रहे हैं। इसलिए जब भी यहाँ सीता-कल्याणम् के लिए आते हो, यहाँ फूल-बताशा नहीं देना। वह स्वामी सत्यानन्द को दे सकते हो, रामजी को दे सकते हो, लेकिन सीताजी को नहीं दे सकते। जो भी दो, उनकी मर्यादा के अनुसार ही देना।

संगीत और नृत्य

हम लोगों के यहाँ मुख्य रूप से संगीत के दो ही भेद माने गये हैं, हिन्दुस्तानी और कर्नाटक, पर विद्वान् लोग आगे जाकर संगीत का जो विभाजन करते हैं, वह कण्ठ के हिसाब से करते हैं। गले से जो स्वर निकलता है वह एक समान नहीं होता। द्रविड देश वालों का 'सा' स्वर यहाँ जैसा नहीं निकलेगा। स्वर वही है लेकिन उसका तरीका भिन्न है, लय अलग है। बंगालियों का अलग स्वर निकलता है, पंजाबियों का दूसरा है, और पाँचवाँ भेद है राजस्थान वालों का। स्वर वही है 'सा', और स्वरों की संख्या भी उतनी ही है, राग पद्धति भी वही है, वर्जित स्वर, आरोह-अवरोह इत्यादि के नियम वही हैं, किन्तु कर्नाटक और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में मौलिक भेद कण्ठ का है। दूसरा भेद संगीत के प्रस्तुतिकरण का है। जहाँ हिन्दुस्तानी संगीत में एक राग को पूरा करने में, कम-से-कम आधा घण्टा लगता है, वहाँ दक्षिण के लोग उसे पाँच मिनट में पूरा कर लेते हैं। संगीत की जो पूरी-की-पूरी प्रस्तुति है–

आलाप, गमक, तराना इत्यादि, उसे वे लोग संक्षिप्त कर देते हैं। हमारे यहाँ आलाप विस्तार के साथ गाते हैं, वे लोग संक्षिप्त करके गाते हैं। कर्नाटक संगीत की किसी भी प्रस्तुति में दस मिनट से ज्यादा समय नहीं लगता।

हमने कर्नाटक संगीत सीखा है। हमारा संस्कृत अध्ययन भी दक्षिणी परम्परा से हुआ है। वैसे तो हमने बचपन में संस्कृत सीखी थी, मगर जब हम ऋषिकेश आये तब हमें लगा, 'बाप रे! हम तो गलत उच्चारण करते हैं।' तब हमने वेदों का दाक्षिणात्य ढंग से पाठ चालू किया, संगीत भी दाक्षिणात्य ढंग से सीखना शुरू किया। नृत्य भी जानते थे, उसे भी हमने दक्षिण की पद्धति में बदला।

उस वक्त मैं बहुत कम उम्र का था। नृत्य भी बहुत अच्छा कर लेता था। सन् 1962 तक तो मैं बराबर स्टेज पर नृत्य प्रदर्शन करता रहता था। भरतनाट्यम् और कुचीपुड़ी, दोनों का मिश्रण। अभी भी मुझे शास्त्रीय नृत्य की कोई वीडियो कैसेट मिलती है तो मैं देखता हूँ। और उस पर समालोचना भी दे सकता हूँ। पिछले साल तो काफी नृत्य हुए थे यहाँ, कुचीपुड़ी भी हुआ था, भरतनाट्यम भी हुआ था, उडीसी भी हुआ था। हम उन सब पर अपनी राय दे सकते हैं।

हमें अल्मोड़ा में सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि उदय शंकर ने वहाँ बहुत बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र खोला था। देश-विदेश से लोग वहाँ नृत्य और संगीत सीखने के लिए आते थे। उस जमाने के मशहूर संगीतकार वहाँ आकर प्रशिक्षण देते थे। अल्मोड़ा में हमारी उम्र के लड़के वहाँ नृत्य सीखने के फेरे में रहते थे। कुमाऊँ में रामलीला बहुत अच्छी होती थी। नौ-नौ दिन तक गाँव के गाँव खाली हो जाते थे। शहरों में पैर रखने को जगह नहीं होती थी। यह 1940 के पहले की बात बोल रहा हूँ, पचास साल पहले की बात। कुमाऊँ के गाँव यहाँ के गाँव जैसे नहीं होते। पाँच मील चलने में छः घण्टे लगते हैं। वहाँ सीधा चलना ही नहीं होता, चढ़ना-उतरना पड़ता है। फिर भी गाँव के गाँव खाली होते थे। रामलीला में हम लोगों का प्रदर्शन होता था। किसी को एक रुपया मिल जाता था, किसी को दो। उस वक्त के लड़के लोग नृत्य और नाटक के पीछे पागल थे।

नृत्य एक बहुत बड़ी विद्या है। जैसे 'क ख ग घ ङ' आदि अक्षरों को जोड़कर शब्द, वाक्य, विचार, विषय और साहित्य बन गये, वैसे ही नृत्य की भी एक भाषा है। और वह भाषा है शरीर की मुद्राओं की, चाहे वह

नेत्रों की भंगिमा हो, हाथों की मुद्रा हो, चेहरे का भाव हो या और कुछ हो। जैसे 'क' अक्षर 'भ' से अलग होता है, वैसे ही नेत्र-भंगिमा अंग-भंगिमा से भिन्न होती है। यह नृत्य की मूल भाषा है जिसे भरत जी के नाट्य-शास्त्र में बतलाया गया है।

भरत जी का नाट्य-शास्त्र संस्कृत में श्लोक-बद्ध ग्रंथ है। यूँ समझ लो कि जैसे संस्कृत में पाणिनी का व्याकरण है, वैसे ही नृत्य में भरत का नाट्य-शास्त्र है। यह शरीर की भाषा का व्याकरण है। जब भी तुम शरीर हिलाते हो तो कुछ बोध कराते हो। भाव, गति, भंगिमा, मुद्रा – ये सब नृत्य की भाषा के स्वर-व्यंजन हैं।

नृत्य में एक और चीज है – *कथा कलाक्षेपम्,* नृत्य पर आधारित कथा। वह नृत्य ही है मगर शुद्ध नृत्य नहीं है। वह नृत्य का प्रायोगिक पक्ष है। जैसे कुमारसम्भवम् कार्तिकेय के जन्म की कथा है। उसमें क्या-क्या आता है? पार्वती जी का भगवान शिव से विवाह, उसके पहले उनकी तपस्या, उसके पूर्व नारद जी का वचन, उसके पूर्व शिवजी का व्याकुल होकर दसों दिशाओं में सती जी को लेकर घूमना। कुमारसम्भवम् में पार्वती जी की तपस्या का जो वर्णन कालीदास ने किया, वाह! कमाल का है। पार्वती जी की भुजाओं के बाजूबंद खिसककर केहुनी तक आ गए, फिर कलाई तक आ गए, फिर बाहर निकल आए। इसका मतलब क्या होता है?

अब इसको नृत्य के द्वारा बतलाना है। जिस तरह भाषा में गद्य, पद्य, आदि होता है, उसी तरह से नृत्य में भी कथा कहने के तरीके होते हैं। इसे कहते हैं कथा कलाक्षेपम्। इसमें नृत्य की एक खास पद्धति को लेकर कोई कहानी गढ़ी जाती है। कहानी गढ़ते वक्त मुख्य घटना को मुद्राओं के द्वारा इंगित किया जाता है। मुद्राओं के द्वारा किस तरह इंगित किया जाना चाहिए, उसका पूरा का पूरा व्याकरण भरत-नाट्यम् में है। अपनी मर्जी से तुम नहीं कर सकते। भरत-नाट्यम् बतलाता है कि हृदय-कमल को या मूलाधार के कमल को या शीर्षस्थ कमल को या लक्ष्मी जी के कमल को किस तरह तुम मुद्राओं द्वारा इंगित करोगे।

ईश्वर-प्राप्ति की प्रबल इच्छा है। इसका मार्ग क्या है?

मैं तो अब सेवा-निवृत्त हो चुका हूँ। अब जितने भी ये मसले हैं, स्वामी निरंजन के सामने रखो। मैं तो यहाँ केवल औपचारिकता निभाने के लिए

बातचीत कर रहा हूँ। मुझे अब किसी को मार्ग दिखलाने में कोई दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि मेरा वह काम खत्म हो चुका है। जितने दिन तक मुझे वह काम करना था, मैंने आनन्द के साथ किया। मुश्किल यह है कि मैं भी तो खुद मार्ग ढूँढ रहा हूँ। मैं तुम्हें क्या रास्ता बतलाऊँगा! मैं खुद रास्ते का पथिक हूँ, और पथिक मागदर्शक नहीं हो सकता। आगे का रास्ता कोई किसी को नहीं बतलाएगा, क्योंकि वह रास्ता अन्दर है। मेरा रास्ता मेरे अन्दर है, तुम्हारा रास्ता तुम्हारे अन्दर है। और अपने अन्दर के रास्ते को देखने के लिए तुम्हें अपना दिया जलाना पड़ेगा। मेरी टॉर्च-लाईट से काम नहीं चलेगा।

सब संत-महात्माओं की यही राय है। मेरा रास्ता मेरा व्यक्तिगत रास्ता है और तुम्हारा रास्ता तुम्हारा व्यक्तिगत रास्ता। बहुत दूर तक रास्ते एक-समान होते हैं। उनपर तुम भी जाते हो, हम भी जाते हैं, किन्तु कुछ समय के बाद सब रास्ते व्यक्तिगत हो जाते हैं। और इसके लिए तुम्हें अपने ही पुरुषार्थ को, विचार शक्ति को बढ़ाना पड़ेगा। पर यह सहसा नहीं होता। हाँ, आदि शंकराचार्य या स्वामी विवेकानन्द में छोटी उम्र में सहसा हो गया, मगर वे सामान्य पुरुष नहीं थे।

सबसे आसान रास्ता वही लगा जो आपने बतलाया पिछले वर्षों में – भगवान से रिश्ता जोड़ना।

कोई रास्ता आसान नहीं है। अगर आसान होता तो कोई किसी से पूछता नहीं, कोई किसी को बतलाता नहीं और इसके बारे में ऋषि-मुनि इतना वाद-विवाद और तर्क-वितर्क नहीं करते। मैं अभी सिर्फ वैदिक साहित्य की बात कर रहा हूँ, इस्लाम या ईसाई साहित्य की नहीं। केवल ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषद ग्रंथों, आरण्यक ग्रंथों, पुराणों और इतिहासों में कितना तर्क-वितर्क हुआ है। ईश्वर एक है कि अनेक है? *'किं कारणं ब्रह्म कुत: स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा:'* – यह श्वेताश्वतर उपनिषद् का पहला मंत्र है, जिसमें ब्रह्म और जीव की उत्पत्ति के बारे में पूछा गया है। इस तरह के प्रश्न बराबर चले लेकिन उनका अन्तिम उत्तर किसी ने नहीं दिया है। नेति-नेति कहकर छोड़ दिया है।

आज तक किसी ने इस बात का उत्तर नहीं पाया कि पोटाशियम सायनाइड खट्टा होता है कि मीठा। जिस तरह आज तक पोटाशियम सायनाइड का स्वाद किसी ने बतलाया नहीं, उसी प्रकार परमात्मा तक पहुँचने का या

उसकी आवाज सुनने का या उसकी झांकी पाने का अंतिम मार्ग किसी ने नहीं बतलाया है। वह बादलों की तरह है क्या? या अग्नि की तरह? या प्रकाश की तरह? वह सुन्दर स्त्री की तरह है या सुन्दर पुरुष की तरह? या सर्प के रूप में है? ऋषि-मुनियों ने कहा, 'सब है, लेकिन नेति-नेति।' नेति अर्थात् 'न इति'। यह मेरी परिभाषा का अंत नहीं है।

इसलिए रास्ता तो सबको खुद खोजना होगा। यह इतना सरल नहीं कि स्वामी सत्यानन्द सबको बतला दे। भगवान भी तुम्हें समझाने आयेंगे तो तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा, क्योंकि भगवान जिस भाषा में बोलते हैं वह भाषा तुम्हें समझ नहीं आती। वे बोलते जायेंगे, पर तुम कुछ नहीं समझोगे। पहले तो भगवान की भाषा को समझने की अकल होनी चाहिए। और भगवान की भाषा है मौन की भाषा – *'मौनं सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'*

मौन कई प्रकार का होता है। पहला है इन्द्रियों का मौन। बाप रे बाप! बहुत मुश्किल है इन्द्रियों को शान्त करना। ड्राइवर को यह कहकर सम्हाला जा सकता है कि भाई कम शराब पीयो, मगर घोड़ों को कौन सम्हाले? खासकर उन घोड़ों को जिन्हें प्रशिक्षण ही नहीं दिया गया है। जंगली घोड़े, जिन्हें खाली लगाम से बांध दिया है, एक दाहिनी तरफ भाग रहा है, दूसरा बाईं तरफ। दुर्घटना तो होगी ही।

मन का मौन भी धारण नहीं हो पाता है। मन बोलते ही रहता है, मन के अन्दर विचारों की तरंगें चलती ही रहती हैं, एक क्षण के लिए भी यह प्रक्रिया बंद नहीं होती। रात को सोते हैं तो भी स्वप्न के रूप में चलती रहती है। मनीषी लोग तो कहते हैं कि मरने के बाद भी मन जीवित रहता है। शरीर मरता है, इन्द्रियों के आधार मरते हैं, लेकिन उनकी जो क्रिया है, वह बीज रूप में रह जाती है, मरती नहीं है। धान का पौधा कट गया, मगर बीज तो रह गया न? यह रास्ता इतना सरल नहीं है। *'जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं, अंत राम कहि आवत नाहीं।'* बार-बार, अनेक जन्मों में, तुम-हम जैसे नहीं, मुनि लोग जतन करते हैं। मुनि मतलब पहुँचे हुए लोग। फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते। यह रास्ता एक-दो जन्मों का नहीं है। एक ही साल में कोई एम.बी.बी.एस. नहीं हो जाता। एक ही साल में कोई ग्रेजुएट नहीं बन जाता। जैसे ग्रेजुएट बनने में पन्द्रह-सोलह साल लगते हैं, वैसे ही यहाँ पर ग्रेजुएट होने में कम-से-कम चौरासी लाख योनियाँ पार करनी पड़ेंगी। अभी तो अंतिम योनि में हो। मनुष्य जन्म अंतिम योनि है। एक तरह से

विश्वविद्यालय स्तर पर हो अभी। इसके पहले कुरंग-मातंग-पतंग-भृंग आदि योनियों में प्राइमरी और मिडिल स्कूल चल रहा था तुम्हारा।

बच्चों के लिए योग शिक्षा

बच्चों को सिखाना एक विज्ञान है, जिसको अँग्रेजी में 'पेडागॉगी' कहते हैं। कोई भी चीज अगर बच्चों को सिखलाओ तो बाल-मनोविज्ञान का ख्याल रखना पड़ता है। पेडागॉगी शास्त्र के अनुसार बच्चों को अगर योग सिखाना है तो उन्हें योग निद्रा से सिखाना शुरू करना चाहिए, शारीरिक अभ्यास से नहीं। जिन लोगों ने इस क्षेत्र में काफी काम किया है, उनका ऐसा ही मत है।

फ्राँस में हमारी एक योग शिक्षिका है, स्वामी योगभक्ति, जो वहाँ के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अँग्रेजी सिखाती थी। उसके दिमाग में यह विचार बैठ गया और उसने बच्चों को योग सिखाना शुरू किया। करते-करते उसने अपने एक सेमीनार में हमें बुलाया। सेमीनार में उसने यही कहा कि बच्चे जिस चीज को पसंद करते हैं उसे बड़ी दिलचस्पी से करते हैं, लेकिन जिस चीज को वे पसंद नहीं करते, उस चीज को बिल्कुल नहीं करते। इसलिए पहले बच्चों की दिलचस्पी की जानकारी प्राप्त की जाए



और वहाँ से शुरू किया जाए। तो उसने पहले बच्चों को योग निद्रा करानी शुरू की। योग निद्रा करने से बच्चों के मन को थोड़ी शान्ति मिली और फिर बच्चे धीरे-धीरे दूसरे अभ्यास करने लगे। उसने इस विषय पर योगा पत्रिका में कई बार लिखा भी है। स्वामी निरंजन को भी तो पहले हमने योग निद्रा ही सिखायी। योग निद्रा द्वारा शिक्षक का बच्चे के मन पर एक प्रकार का सम्मोहक असर पड़ जाता है।

बच्चों के अभिभावकों को इससे आपत्ति नहीं होती क्या?

अभिभावकों को तो दुनिया भर में आपत्ति होती है। अभिभावक बच्चों को विद्या प्राप्त कराने के लिए नहीं, बल्कि इम्तहान में पास होने के लिए स्कूल भेजते हैं। यही उनका मुख्य लक्ष्य है। वैसे पास होना भी मुख्य लक्ष्य नहीं है, नौकरी मिलनी चाहिए, यही मुख्य चीज है।

आज की विद्या का लक्ष्य अर्थकरी है। अगर अभिभावकों को पता चलेगा कि तुम उनके बच्चों को जो सिखला रहे हो उससे उनके अर्थ-संग्रह की क्षमता पर अच्छा असर होगा, तो वे निश्चित रूप से 'हाँ' बोलेंगे, वरना 'नहीं' बोलेंगे। आज का जमाना कलियुग का है। अर्थ और काम ही इस युग के मुख्य पुरुषार्थ हैं, धर्म और मोक्ष नहीं। मतलब जो भी प्रयत्न मनुष्य करेगा, वह अर्थ और काम हेतु ही करेगा। कैलास-मानसरोवर की कठिन यात्रा भी करेगा तो इसी हेतु करेगा। गुरुजी की सेवा भी इसी हेतु करेगा, बैद्यनाथ धाम में पाँच सौ लीटर दूध भी इसीलिए चढ़ाएगा।

इस युग में यदि मनुष्य को धर्म और मोक्ष के रास्ते पर चलाना है तो प्रवेश-द्वार अर्थ और काम ही है। योग, पूजा, तपस्या, समाधि, प्राणायाम – जो भी सिखाना चाहो लेकिन दरवाजा अर्थ और काम वाला ही खुला मिलेगा। धर्म और मोक्ष के रास्ते से बच्चों को ले जाना चाहोगे तो अभिभावक सीधे 'ना' बोल देंगे। 'अरे क्या करेगा योग से, साधु बनेगा क्या?' लेकिन अगर उन्हें कहोगे कि योग में डिग्री लेकर दस-पन्द्रह हजार की नौकरी कर सकते हैं, विदेश जा सकते हैं, तो वे तुरंत मान जाएँगे।

जब शुरू-शुरू में हमने मुंगेर के लाल दरवाजा में आश्रम खोला था, तब वहाँ पन्द्रह दिन का आवासीय योग सत्र चलाते थे, जिसके लिए 21 रुपये लेते थे। लोग टीका-टिप्पणी करते थे, 'कैसा साधु है, योग को बेचता है!' खैर हमारी तो आदत रही है, एक कान से सुनते हैं, दूसरे से निकाल देते

हैं। हम अपना काम करते रहे। आज जब हमने योग सिखाना बंद कर दिया, दुनिया भर में लाखों लोग योग सिखा रहे हैं।

भारत में तो योग शिक्षा इतनी सुव्यवस्थित नहीं है, लेकिन विदेश में बहुत अच्छी व्यवस्था है। हर गाँव और शहर में एक-एक योग विद्यालय! वहाँ अब बड़ी संख्या में घर की औरतें योग सिखाने लगी हैं। घर बैठे-बैठे उनकी अच्छी कमाई हो जाती है। एक फ्लैट खरीद लिया, उसमें एक कमरा योग के लिए तैयार कर लिया, एक-दो लोगों को एक-एक घण्टा योग सिखा दिया और फिर चार महीने छुट्टी करके हिन्दुस्तान आ जाते हैं 'रिफ्रेशर कोर्स' के लिए। हर साल उनकी अच्छी आमदनी हो जाती है।

हम लोगों को बताया गया है कि बच्चों को आठ वर्ष की अवस्था से ही सिखाना चाहिए। ऐसा क्यों?

आधुनिक मनोविज्ञान और हमारे प्राचीन शास्त्र कहते हैं कि सात सालों में बच्चों की संस्कारों की शिक्षा पूरी हो जाती है। इसके बाद वे संस्कार ग्रहण नहीं करते। संस्कार का तात्पर्य तुम्हारे व्यक्तित्व के बीज से है, जिसके बल पर तुम चोर, डाकू, साधु, ज्ञानी, बदमाश, खूनी या करोड़पति बने हो। वह बीज सात साल में पूर्ण होता है और इस बीज का रक्षण करने वाली माँ होती है, बाप नहीं। बाप तो बच्चे के लिए एक अजनबी जैसा है।

पूरा सम्बन्ध तो बच्चे का माँ के साथ रहता है, लेकिन वह माँ गँवार, जाहिल, अनपढ़, अबूझ है। पलना झुलाना और लोरी सुनाना, इसके अलावा और क्या कर सकती है? क्या उसे मालूम है कि यह जो बच्चा पैदा हुआ है, वह अनजान और अबोध नहीं, बल्कि एक सुपर-फास्ट कैमरा है जो हर एक चीज को ग्रहण कर रहा है, हर एक आवाज को सुन रहा है। माँ-बाप के बीच का झगड़ा उसके अन्दर में रिकॉर्ड हो रहा है। माँ की सारी बदमाशी उसके अन्दर रिकॉर्ड हो रही है। माँ जितनी बार उसको गाली देती है, पीटती है, पड़ोसन से लड़ाई करती है या ननद से झगड़ती है, वह सब रिकॉर्ड हो रहा है। इसलिए कहा गया है – *'माता प्रथमो गुरुः।'* माता केवल जननी नहीं, मार्गदर्शक है, गुरु है। माता शब्द का यही मतलब होता है।

सात साल के बाद बच्चे के दिमाग का प्रशिक्षण शुरू होता है। 'सच बोलो, झूठ मत बोलो, झगड़ा मत करो, खाने के पहले हाथ धो लो' – ये बातें बच्चा बुद्धि के माध्यम से समझता है। जो विद्या समझ करके ग्रहण की जाती

है वह मनुष्य का असली व्यक्तित्व नहीं है। वह उसका बाहरी व्यक्तित्व, उसका सामाजिक व्यक्तित्व है। तुम लोग जब एक-दूसरे से मिलकर बात करते हो, वह तुम्हारा सामाजिक व्यक्तित्व है, मगर जो तुम दूसरों के बारे में दिल में सोचते हो, वह तुम्हारा असली व्यक्तित्व है। और वह तुम्हें मिला है सात साल में। इसीलिए मनोविज्ञान कहता है कि सात साल में आन्तरिक शिक्षा खत्म हो जाती है।

आदमी का क्या कहना, कुत्ते का भी यही हाल है। छः महीने में कुत्ते का प्रशिक्षण पूरा हो जाता है। बाद में वह कुछ नहीं पकड़ता। छः महीने के पहले उसको बोलो, 'वहाँ टट्टी करो, यहाँ मत करो', वह जिन्दगी भर वही करेगा। हमारा भोलेनाथ यहाँ टट्टी नहीं करता। असम्भव। जहाँ उसकी जगह बनी है, सीधा वहीं जायेगा। क्योंकि उसे छः महीने के पहले सिखलाया गया है। अब बड़ा हो गया है, तुम पर अगर हमला करेगा और हम मना करेंगे तो रुक जायेगा जरूर, मगर दुबारा फिर से हमला करेगा। यह अब उसके व्यक्तित्व का अंग नहीं बन पाता है क्योंकि वह सीखने की उम्र पार कर चुका है।

हम लोगों का वास्तविक प्रशिक्षण सात साल तक ही होता है। इसलिए हमें अपनी लड़कियों और बहनों को अपने से ज्यादा शिक्षा, समझ, योग्यता, अधिकार और अवसर देना चाहिए। घर में ताला-बन्द लड़कियाँ अच्छी माँ नहीं बन सकतीं। आज की लड़कियों को समाज का ज्ञान और अनुभव होना चाहिए। सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, राजनीति, युद्ध, घृणा, प्रेम, चोरों, व्यभिचारियों, वेश्याओं, बदमाशों – सब की जानकारी उन्हें होनी चाहिए। उन्हें यह सब तुमसे ज्यादा मालूम होना चाहिए। समस्या यह है कि माँ को तो कुछ मालूम नहीं, मालूम सब बाप को है। मगर बाप बेचारा क्या करेगा, उसका बच्चे के साथ सीधा सम्बन्ध है ही नहीं। वह बच्चे की माँ का पति है, इसलिए उसका बाप है। बच्चे के लिए सुशिक्षित, संस्कारी माँ लाजिमी है।

जिस बच्चे की माँ दो-चार साल की उम्र में मर जाये, उस बच्चे में संस्कार का बीज कैसे जायेगा?

उसके लिए दूसरी माँ रखो। भले ही अपने लिए दूसरी पत्नी मत रखो, मगर बच्चे के लिए दूसरी माँ रखो। उसे दूसरी माँ की जरूरत है। बच्चा बचपन में स्त्री के साथ ही रहता है, यह उसकी नियति है।

जब लड़की अठारह-बीस साल की हो, जब उसकी शादी हो रही हो, जब वह पति के घर जा रही हो, जब वह माँ बनने जा रही हो, तब उसे जानना चाहिए कि उसके विचार, भोजन, चाल-चलन, बातचीत – सब कुछ गर्भ में पल रहे बच्चे को प्रभावित कर रहे हैं। माँ की हर क्रिया पर बच्चे की प्रतिक्रिया होती है। माँ सोचती है कि आज इसका बाप आए तो उसके साथ लड़ाई करूँगी। आते ही मुँह बना लेती है। बाप पूछता है, 'चाय नहीं है क्या?' वह जवाब देती है, 'खुद बना लीजिये, मुझे फुरसत नहीं है।' इन सब चीजों पर बच्चा अन्दर में प्रतिक्रिया कर रहा है, क्योंकि वह माँ के शरीर और मन का एक अभिन्न अंग है। जैसे अंगूठा या नाक शरीर का एक अंग है, वैसे ही गर्भस्थ शिशु भी माँ के शरीर का एक अंग है। नौ महीने तक वह उसका पोषण करती है। माँ की हर भावना का उस पर असर पड़ता है।

शायद इसीलिए हमारे यहाँ कहा जाता है जब माँ बच्चे को दूध पिलाती है, उसे रोना नहीं चाहिए वरना वह दूध नहीं, आँसू पिला रही है। और कोई खराब विचार भी नहीं लाने चाहिए बच्चे को दूध पिलाते समय।

यह तो वैज्ञानिक सिद्धान्त है। जब तुम्हें गुस्सा आता है या डर लगता है, तुम्हारे शरीर में एड्रीनलीन हॉरमोन का स्राव होता है। यह देखा गया है कि जब जानवरों को कसाईखाने ले जाया जाता है, उस वक्त डर के मारे उनमें एड्रीनलीन बहुत ज्यादा बहता है, और बाद में वही एड्रीनलीन-युक्त मांस जब तुम खाते हो, तुम्हारे अन्दर भय चला जाता है। मांसाहारी लोग प्राय: क्रूर क्यों होते हैं? भय के कारण। निर्भय व्यक्ति कभी क्रूर नहीं हो सकता। जिसको डर लगता है, वही डण्डा उठाता है।

ऐसी बहुत-सी चीजें अब हम लोगों को अपने प्रजनन-शास्त्र में जोड़नी पड़ेंगी और लड़कियों को समझाना पड़ेगा। यह माँ का दायित्व है। बच्चे का पैदा होना किसी करिश्मे से कम नहीं। एक छोटी-सी कोशिका से एक 72000 नाड़ी वाला, 10 इन्द्रियों वाला, इतनी बड़ी खोपड़ी वाला, इतना बड़ा जीव पैदा कर देना कोई मामूली चीज है क्या! इसीलिए प्रजनन-शास्त्र एक बहुत महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। इसी पर समाज कायम है, और आगे भी इस पर ही कायम रहेगा। अगर माँ बच्चे को ठीक तरह से पैदा करे और ठीक तरह से उसे प्रशिक्षण दे तो एक अलग किस्म की सभ्यता का निर्माण हो सकता

है। सबसे आवश्यक चीज है आध्यात्मिक पुस्तकों का सेवन, अच्छे साधु-महात्माओं और सात्त्विक, वीर पुरुषों की कहानियाँ। और जो भोजन है, वह सात्त्विक होने के साथ-साथ शरीर का पोषण करने वाला भी हो।

भारत देश में शाकाहार को सर्वोत्तम भोजन माना गया है और दुनिया के वे देश जो मांसाहार-प्रधान हैं, वे भी मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार को ही श्रेष्ठ मानते हैं। बेशक वे शाकाहारी भोजन पर पूरी तरह निर्वाह नहीं कर सकते, उनकी अपनी मजबूरियाँ हैं। हम लोगों के यहाँ जो दाल, भात, सब्जी, आदि है, यह बहुत अच्छा भोजन है। मैं नहीं समझता कि इस संतुलित आहार में कोई खास परिवर्तन करने की जरूरत है। हाँ, चावल के बदले खिचड़ी खा लो या पुलाव खा लो, कोई खास फर्क नहीं पड़ता। हम तो दुनिया में सभी जगह गए हैं, वहाँ का भोजन खाए हैं, पर सच पूछो तो हिन्दुस्तानी भोजन दुनिया में सर्वोत्तम है।

हम अपने विद्यालय में बच्चों से चित्रकारी करा हैं। उसमें उनकी रुचि और लगन बढ़ती जा रही है।

हाँ, बच्चों को चित्रकारी बहुत पसन्द है। यहाँ गाँव के बच्चे तस्वीर बनाकर मुझे भेजते हैं। आढ़ी-तिरछी लकीर खींचना, रंग भरना, यह इनके संस्कारों में है। यह इनके मन का एक हिस्सा मालूम पड़ता है। इसलिए हम यहाँ के बच्चों को ड्रॉइंग बुक, कलर पेंसिल, वॉटर कलर, आदि देते हैं। सब चित्र बनाते हैं। कोई शिवजी का तो कोई गणेशजी का। कई लोग मेरा भी बना देते हैं। यहाँ के बच्चों में चित्रकारी की प्रवृत्ति स्वाभाविक है, सिखाना नहीं पड़ता।

बच्चों को जो चीज अच्छी लगे उसी के द्वारा उन्हें सिखाओ। बच्चों को खेलना बहुत अच्छा लगता है। नाचना-गाना और उधम मचाना भी। बगल के मिडिल स्कूल में रामचरितमानस सिखाया तो लड़के लोगों ने एकदम रट लिया। यहाँ से हम सुनते थे तो लगता था उनको बरसों का अभ्यास है। ऐसी चीजों के माध्यम से ही बच्चों के व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए।

बच्चों को जो स्कूल में पढ़ाया जाता है, वह उनके लिए उपयुक्त नहीं है। यह मैं आलोचक की दृष्टि से नहीं, समालोचक की दृष्टि से बोल रहा हूँ। हमारी शिक्षा प्रणाली गलत है। अभी हम शहरों की पढ़ाई के बारे में नहीं बोल रहे हैं, हालाँकि शहरों पर भी हम टिप्पणी कर सकते हैं। गाँवों में पढ़ाई की बात हो रही है। गाँव में लड़का मिडिल या मैट्रिक के बाद क्या

करेगा? खेती, गो-पालन या मजदूरी में जायेगा और इनके बारे में उसे कुछ पता नहीं। स्कूल में तो उसे सिखाया गया है इतिहास। किसका? अशोक, अकबर और औरंगजेब का। गलत बोल रहा हूँ क्या!

गाँव के बच्चों को मौसम का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। आज बरसात हो सकती है या नहीं, हवा पूर्वी बहेगी या पछिया। हमने बनारस से 'भडरी की कहावत' मंगाकर यहाँ के मुखिया, टेटू रमाणी को दी। हमने कहा, 'टेटू, इसे पढ़ो। तब तुम्हें मौसम का हिसाब-किताब पता चलेगा। चैत के महीने में ही पता चल जायेगा कि इस साल अकाल पड़ेगा या नहीं।' इन लोगों को नक्षत्रों की जानकारी होनी चाहिए। कौन-सा नक्षत्र आज आया है, कल शाम सूर्य कितने बजे अस्त हुआ, यह सब जानकारी होनी चाहिए। किसानों के बेटे गाय पालते हैं, उन्हें गाय की नस्लों की जानकारी होनी चाहिए। कितनी प्रकार की नस्लें होती हैं, किस नस्ल से ज्यादा दूध मिल सकता है। पर स्कूलों में ऐसा कुछ नहीं बतलाते। न बीजों के बारे में सिखाते हैं, न खेती के बारे में, न जानवर के बारे में। अरे! कुछ नहीं तो उनको ऑटो-रिक्शा चलाना ही सिखा दो। पर नहीं, रेखागणित और बीजगणित जैसी फालतू चीजें पढ़ाते हैं। ये सब चीजें पैसे वालों के लिए हैं, जो बी.ए-एम.ए. में उनके काम आयेंगी। पर ये सब तो पिछड़े वर्ग के लड़के हैं, इनमें से एक-दो भी बाहर नहीं निकलेंगे। इनके पास कोई सुविधा नहीं है आगे बढ़ने की। इनको पढ़ने-लिखने के लिए पैसा भी दो तो इनका बाप शादी-ब्याह जैसे कामों में खर्चा कर देता है। आखिर लड़की की शादी नहीं करेंगे तो जात से बाहर कर दिये जायेंगे। दहेज का पैसा इकट्ठा नहीं कर पायेंगे तो लड़की की शादी बूढ़े के साथ करा देंगे। इन सामाजिक समस्याओं की तो किसी को जानकारी है नहीं।

भारत में शहरी और ग्रामीण समाज एकदम अलग हैं। दोनों के तौर-तरीके, विचार और समस्याएँ अलग हैं। इसलिए जब बच्चों को सिखाया जाए तब पहले यह देखा जाए कि बच्चों की पृष्ठभूमि क्या है। शिक्षा की जो प्रणाली यहाँ चल रही है, जिस पर सरकार लाखों-करोड़ों खर्चा भी कर रही है, वह बदलनी होगी। अक्षर ज्ञान और थोड़ा बहुत गणित, इतना भर अनिवार्य होना चाहिए। इसके बाद फिर वही चीज सिखानी चाहिए जो बच्चे के काम आए। असल में गाँधीजी का बुनियादी शिक्षा का सिद्धान्त बहुत अच्छा था। उन दिनों हम भी मुजफ्फरपुर वगैरह जाते थे, बुनियादी शिक्षा

देते थे। वहाँ रहकर खेती-बाड़ी, जानवर, बीज, दवाई, आदि के बारे में सब सिखाते थे।

बुनियादी शिक्षा गाँव के लोगों के लिए इसलिए आवश्यक है कि गाँव के निन्यानवे प्रतिशत लोग अभी उस परिस्थिति से बाहर नहीं निकल सकते। हाँ, अमरीका जैसा पैसा यहाँ आ जाए तो बहुत अच्छा है। यहाँ पर कोई बड़ा कारखाना खुल जाएगा जिसमें सब लोग काम करेंगे। पर वैसा तो है नहीं। गरीब राष्ट्र में गरीब राष्ट्र के मुताबिक ही शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है, क्योंकि इसी से उपार्जन होता है। जिस परिवार में उपार्जन नहीं होता, वह परिवार टूट जाता है। वहाँ पति और पत्नी दोनों मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं, पुत्र भी मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं। लड़ाई-झगड़ा होने लगता है और यदि पुत्र आक्रामक स्वभाव के रहे तो अपराध में भी जा सकते हैं। 'हम मारेंगे-लूटेंगे, जैसे भी हो, हम खाना खाएँगे।' एक बार कोई अपराध में चला गया, तो दूसरे भी उसके पीछे-पीछे चले जाते हैं। इसलिए शिक्षा में तो आमूल परिवर्तन होना चाहिए। आज की शिक्षा किसी काम की नहीं है।

यह परिवर्तन कैसे लाया जाए? सरकार को ही तो करना पड़ेगा न!

प्रजातंत्र में सरकार की परिभाषा क्या है? वह संस्था जो तुम्हारी जरूरतों का प्रतिनिधित्व करे। रिखिया एक पंचायत है जिसमें दस हजार लोग रहते हैं। क्या इनका सरकार में कोई प्रतिनिधित्व है? इनमें अधिकांश लोग मजदूर हैं, कुछ खेती-बाड़ी करते हैं, दो-चार देवघर में जाकर बिजली का काम या मोटरगाड़ी मरम्मत वगैरह कर लेते हैं। इनमें कोई ऑफिसर है क्या? एक भी नहीं।

केवल रिखिया पंचायत ही नहीं, हिन्दुस्तान की लाखों पंचायतों का यही हाल है। भारत में कम-से-कम साठ प्रतिशत लोग छोटे-मोटे किसान या खेतीहर मजदूर हैं, पर उनके बेटे जब स्कूलों में पढ़ते हैं तो मैट्रिक करने के बाद खेती करना उनको खराब लगता है। लड़कियाँ मैट्रिक पढ़कर ससुराल जाती हैं तो दहेज बढ़ जाता है! हम इस चीज को जानते हैं, इन लोगों से खुलकर बातचीत जो की है।

एक दस-बारह साल की लड़की, सुनीता यहाँ आश्रम में आती है। वह हमसे कहती है, 'पढ़कर हम करेंगे क्या स्वामीजी? ससुराल में तो हमको गोबर ही उठाना है, बर्त्तन ही मांजने हैं, कपड़े ही धोने हैं, सास के पैर ही दबाने हैं, बच्चे ही तो पैदा करने हैं। इसके सिवा और क्या करना है? कोई

कलेक्टर, कमिश्नर तो बनना है नहीं।' हम इन लड़कियों और औरतों को एक ही चीज कहते हैं, 'देखो जी, तुमको न तो बैंक पासबुक में दस्तखत करना है, न कोई सरकारी दस्तावेज पढ़ना है, न इन्कम-टैक्स का फॉर्म भरना है। सिर्फ एक चीज के लिए साक्षर बनो, रामचरितमानस पढ़ सको तुम।' और यह तरीका काम कर रहा है।

हिन्दुस्तान के कम-से-कम साठ प्रतिशत लोगों की यही नियति है। ऊपरी तबके के लोगों की शिक्षा सारे समाज पर हावी हो गई है। जो शिक्षा दस या बीस प्रतिशत लोगों के लिए आवश्यक है, वह तुम शत-प्रतिशत को दे रहे हो। असली त्रुटि यही है। शिक्षा को समाज के अल्पसंख्यक वर्ग की नहीं, बहुसंख्यक वर्ग की जरूरत पूरी करनी चाहिए। जब हिन्दुस्तान के सभी लोगों में यह जागरूकता और जानकारी आयेगी, तब जाकर शिक्षा प्रणाली बदलेगी।

बच्चों की स्मरण शक्ति बढ़ाने का क्या उपाय है? मेरे बड़े लड़के की स्मरण शक्ति बहुत कमजोर है, कुछ भी याद नहीं कर पाता है।

उसे बोलो कि वही रास्ता खोजे। उसी को पता लगाने दो कि स्मरण शक्ति बढ़ाने का तरीका क्या है। तुम बोलोगे तो उस पर असर नहीं पड़ेगा। जब वह खुद खोजेगा, और एक दिन उसे पता चल जाएगा कि ऐसा करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है, तो वह किसी से पूछे बिना वह उपाय करेगा।

हम लोगों की सबसे बड़ी कमी यह है कि हम अपने बच्चों को अपने ढंग से बनाना चाहते हैं। किसी जमाने में यह एक सामाजिक आवश्यकता थी, हम लोगों को अपने समाज को अच्छी तरह से जोड़ना था। इसलिए सबको एक जैसा बनाने पर जोर दिया, जैसे साम्यवाद में होता है। लेकिन आज जमाना बदल गया है। नवयुवकों के सामने बहुत बड़ा भविष्य है, वे कुछ भी बन सकते हैं।

अगर मैं अपने घर में रहा होता तो आज पुलिस इन्स्पेक्टर होता, क्योंकि मेरा बाप पुलिस में था। मैं भी पुलिस में भर्ती हो जाता, ज्यादा-से-ज्यादा डी.एस.पी. या एस.पी. बन जाता। ठीक है, वह भी एक ऊँचा पद है लेकिन जो संतोष आज हमें अपने जीवन की उपलब्धियों से है, वह नहीं होता, क्योंकि मनुष्य अपने जीवन में तभी संतुष्ट होता है जब वह अपनी इच्छानुसार कुछ बनता है। यह सिद्धान्त हम लोग अपने समाज में लागू नहीं कर पा रहे हैं। माता-पिता बुढ़ापे तक बच्चे के अभिभावक बने रहते हैं,

जबकि चौदह-पन्द्रह साल के बाद उन्हें अपनी छत्र-छाया हटा लेनी चाहिए। बच्चों के ऊपर से माता-पिता की छत्र-छाया जितनी जल्दी हटे उतना अच्छा है बच्चों के लिए, और माता-पिता के लिए भी। दुनिया में जितने देशों ने तरक्की की है वहाँ यही हुआ है।

कहने का मतलब यह कि हम लोगों को अपने बच्चों की योग्यता पर भरोसा होना चाहिए। जो संस्कृति अपने नागरिकों को आजादी दे सकती है, वही संस्कृति आबाद रह सकती है। जब तुम्हारे बच्चे आजाद नहीं, जब तुम आजाद नहीं, जब तुम्हारे पिताजी आजाद नहीं थे, तब मुल्क कैसे आजाद होता? आजादी का मतलब हर व्यक्ति अपनी योग्यता को प्रदर्शित कर सके। और यह तभी हो सकता है, जब आदमी जुआ खेले। देखा जाए तो सारी जिन्दगी एक तरह का जुआ है। हम माँ के पेट से पैदा हुए, जुआ ही तो था। शादी किये, वह भी तो एक जुआ है।

बच्चों को धीरे-धीरे अपनी छत्र-छाया के बाहर करना होगा। उन्हें कहना होगा, 'भाई, काफी बड़े हो गए, अब तुम खुद सोचो।' 'हाँ बाबूजी, जी बाबूजी,' कब तक चलेगा? बच्चे भी यह सब नहीं करना चाहते हैं। अगर करते भी हैं तो सिर्फ इसलिए कि बाप की विरासत न चली जाए। यहाँ कानून जो है कि बाप की जायदाद बेटे को मिलेगी। दूसरे देशों में ऐसा कानून नहीं है। वहाँ बाप वसीयत लिखकर जाता है। प्राय: जितने भी गोरे लोग मरते हैं, उन सबकी जमीन-जायदाद किसी चर्च, स्कूल-कॉलेज, दातव्य संस्था या शोध संस्थान को चली जाती है। बेटे को कुछ नहीं मिलता। अगर मिलेगा तो बेटा खराब हो जाएगा। समाज के निर्माण का यही तरीका है। समाज तभी मजबूत बनेगा जब उसके सदस्य जोखिम उठाना सीख सकें।

तुम्हारा समाज कमजोर क्यों है? ऐसे बहुत-से प्रश्न हैं जिनका उत्तर समाज को देना होगा। सम्राट् हर्षवर्द्धन की बहन, राज्यश्री का अपहरण क्यों हुआ? एक राजपुत्री का अपहरण हो जाए, कोई मामूली बात है क्या? कैसे हुआ यह? उसके पास आत्मरक्षण का सरल साधन नहीं था। कराटे सीखा होता तो सीधा एक पैर उठाती, दे मारती! चप्पल उठाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं जिनका उत्तर देना होगा समाज को। रानी पद्मिनी की घटना है। साठ हजार औरतों ने चित्तौड़ में जौहर किया था न? इसका उत्तरदायी समाज है, हमलावर नहीं। उनका तो काम ही था औरतों की चोरी ताकि ज्यादा बच्चे पैदा कर सकें। मगर हम लोग अपनी औरतों को क्यों



नहीं बचा सके? क्योंकि हमने अपनी लड़के-लड़कियों को वह प्रशिक्षण ही नहीं दिया जो आदमी को मजबूत बनाता है, लड़ने लायक बनाता है।

इसलिए बच्चों के ऊपर से अभिभावकों की क्षत्र-छाया तो हटनी चाहिए। 50 साल के बाद हर आदमी को आधा सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए। नौकरी से नहीं, गृहस्थी से। और 60-65 साल में पूर्ण सेवानिवृत्ति हो जानी चाहिए। सोचना चाहिए कि नहीं, अब हम घर में नहीं रहेंगे। आश्रम में चलेंगे, वहीं कुछ काम करेंगे, दाल-रोटी खायेंगे, आराम से रहेंगे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का पालन करना चाहिए। यह बहुत जरूरी है।

– 28 सितम्बर, 1997



अध्याय 20

आज चिकित्सा-विज्ञान बहुत गहन और व्यापक हो गया है, पर फिर भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो अभी तक चिकित्सा-विज्ञान की परिधि में नहीं आए हैं। उदाहरण के तौर पर, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है? घर में झगड़ा हो रहा है, पत्नी पागल है या बेटा बिगड़ गया है, ये सब परिस्थितियाँ हैं। ऐसी हजारों परिस्थितियाँ होती हैं। घर में चोरी हो गई, मकान में आग लग गई या असमय पति की मृत्यु हो गई। ये परिस्थितियाँ शरीर को कितना और किस तरह से प्रभावित करती हैं? विचार शरीर को किस तरह प्रभावित करते हैं? भय शरीर को किस प्रकार प्रभावित करता है, कौन-कौन सी बीमारियों को लाता है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, इन सब का क्या असर पड़ता है?

पढ़े-लिखे लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, हिंसा, भय, आदि पर अभी तक तो ध्यान नहीं देते थे। जब साधु-संत कहा करते थे कि क्रोध मत करो, अपनी इच्छाओं और वासनाओं पर संयम रखो, तब लोग बोलते थे कि साधुओं की तो आदत हो गई है यह सब बोलने की। पर अब पता चल रहा है कि इन चीजों का मनुष्य के शरीर पर असर पड़ता है। विस्तृत परीक्षण नहीं हुआ है, मगर वैज्ञानिकों को संकेत मिला है कि भय का एड्रिनल ग्रन्थि पर असर पड़ता है, वासना का टेस्टॉस्टेरोन जैसे हॉरमोन्स पर असर पड़ता है, चिन्ता का शरीर के रक्त-संचार पर असर पड़ता है। इस प्रकार की बहुत-सी चीजों को अब चिकित्सा-विज्ञान में जोड़ना होगा।

मनुष्य के मन में जो विचार उठता है, आखिर उसका शरीर पर क्या असर पड़ता है? मान लो, तुमने हमारे बारे में बुरा सोचा। तुम्हें लगता

है, 'ठीक है, सोच लिया, क्या फर्क पड़ता है?' लेकिन अब विज्ञान में यह आ गया है कि जब मनुष्य किसी भी प्रकार का विचार करता है, तब उसके मस्तिष्क में तरंगें चलती हैं, विद्युत-क्रिया चलती है। वह विद्युत-क्रिया उसके रक्तचाप, रक्त-संचार, चयापचय, आदि को प्रभावित करती है। मतलब बीमारी का सम्बन्ध शरीर, मन और आत्मा, तीनों से लगाना पड़ेगा। जिन्होंने चिकित्सा-विज्ञान पढ़ा है, वे लोग इस दिशा में चिंतन करेंगे तो उन्हें काफी सफलता मिलेगी। यदि कोई पेट-दर्द की शिकायत लेकर आता है, तो उस पेट-दर्द के कई कारण हो सकते हैं। कारण खराब खाना भी हो सकता है, पित्ताशय भी हो सकता है या फिर उसकी खोपड़ी में कुछ गड़बड़ भी हो सकती है। हमारे विचार से पहले उसकी खोपड़ी से ही शुरू करो। खोपड़ी शान्त हो जाए तो शायद वह बीमारी ठीक हो जाए। और यह विचार हमें कहाँ से मिला, यह भी तुमको बता दें। गाँवों में हमने देखा कि कई बीमारियाँ झाड़-फूँक से ठीक हो जाती हैं। यह अन्धविश्वास नहीं है। हम यह नहीं कहते कि सब बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं, मगर बहुत-सी बीमारियों को हमने ऐसे ही ठीक होते देखा है। तब हमें लगा कि यह बीमारी झाड़-फूँक से नहीं, मरीज की खोपड़ी के ठीक होने से दूर हुई है। झाड़-फूँक तो बस मनुष्य के विश्वास का आधार होता है। असली चीज होती है खोपड़ी। तब हमें अहसास हुआ कि सचमुच मनुष्य की खोपड़ी बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। चिकित्सा क्षेत्र में काम करने वाले लोग इस पर थोड़ा विचार करें।

दुनिया में मानसिक बीमारियाँ बहुत बड़ी संख्या में हैं। जापान, अमरीका, यूरोप और ऑस्ट्रेलिया जैसे आधुनिक देशों में भी ऐसी बीमारियाँ बहुत अधिक हैं। वहाँ चिकित्सा सुविधाओं या डॉक्टरों की कोई कमी नहीं है, मगर फिर भी बीमारियाँ कम नहीं। मल्टिपल स्क्लेरोसिस, शरीर की विकलांगता तो बहुत ही ज्यादा है। इंग्लैंड में ऐसे बहुत-से मरीज हैं। वहाँ तीस-चालीस साल की अनेक औरतें मिलकर, नर्सिंग-होम जैसा एक छोटा-सा होस्टल बना कर, मल्टिपल स्क्लेरोसिस वाले बच्चों को रख लेती हैं। उन मरीजों को रखने का सरकार उन्हें पैसा देती है। यूरोप में मल्टिपल स्क्लेरोसिस वालों को घर में रखना सम्भव नहीं है। मियाँ-बीवी दोनों को काम पर जाना पड़ता है, घर में तो कोई रहता नहीं। इसलिए मरीजों को नर्सिंग-होम में रखते हैं। बहुत-से लोग तो वहाँ ऐसे हैं जो चौबीस घण्टे व्हील-चेयर पर ही रहते हैं,

उसी पर सोते हैं। उन्हें उसी पर टेढ़ा-मेढ़ा करके सब कुछ कराना पड़ता है। ऐसी खराब हालत है।

इन लोगों के बीच योग को लाने का सबसे पहला प्रयास स्वामी प्रज्ञामूर्ति ने किया। उसने इन लोगों के नर्सिंग-होम जाना शुरू किया, चार-पाँच बच्चों को लिया, उन्हें आसन-प्राणायाम सिखाना शुरू किया। धीरे-धीरे सफलता मिलने लगी। जब सफलता मिली तो फिर सरकार की तरफ से उन्हें नियुक्त किया गया। सरकार से उन्हें प्रति रोगी पैसा मिलता है। अब तो वहाँ मल्टिपल स्क्लेरोसिस वालों को सिखाने वाले बहुत-से शिक्षक हैं। अब स्वामी प्रज्ञामूर्ति एड्स के रोगियों को योग सिखाती है। कितनी सफलता मिली है, यह तो हमें नहीं मालूम, मगर सरकार ने उन्हें ऐसे मरीजों को योग सिखाने के लिए भी नियुक्त कर दिया है।

यह बात तो सही है कि हिन्दुस्तान में बहुत गरीबी है और बीमारियाँ भी हैं, परन्तु जो हालत अमरीका और यूरोप की है, यहाँ उससे तो बेहतर स्थिति है, गरीबी को छोड़कर। गरीबी के अलावा बाकी हालत बहुत अच्छी है। जैसा लोगों को अक्सर कहा जाता है, वह सही नहीं है। इंग्लैंड और अमरीका में भी बहुत गरीबी है। तुम लोग जब वहाँ जाते हो तो बड़े होटलों में रहते हो। जहाँ गरीब लोग रहते हैं, वहाँ तुम लोग जाते नहीं। वे लोग न तो देश छोड़ पाते हैं, और न ही कोई नौकरी कर पाते हैं। और जहाँ तक शिक्षा का सवाल है, यह दावा कि वहाँ शत-प्रतिशत साक्षरता है, वह भी सही नहीं है। वहाँ भी अनपढ़ और अँगूठाछाप लोग हैं।

अनेक दृष्टियों से हमने देखा है, हिन्दुस्तान एक बेहतर देश है। इसलिए नहीं कि हम यहाँ पैदा हुए, बल्कि आबो-हवा और ऋतुओं के दृष्टिकोण से; विभिन्न विचारों, सम्प्रदायों एवं धर्मों के प्रति लोगों की मान्यता के दृष्टिकोण से; अनेक भाषाओं, पर्वों और त्योहारों के दृष्टिकोण से भारत श्रेष्ठ है। रामजी के मन्दिर में देवीजी भी आ गई हैं। रामजी का मन्दिर तो वैष्णव होता है न! वैष्णव माने लहसुन-प्याज भी वहाँ नहीं चलता। जबकि देवीजी के यहाँ सब चलता है। पर देवीजी को भी वहाँ ले आए, माने इतना एकीकरण! कुछ समय में अल्लाह मियाँ भी आ जायेंगे। क्राइस्ट तो आ ही गये हैं। घरों में उनकी फोटो आ गई है, कुछ समय में वे भी आ जाएँगे, उनकी भी कुछ आरती बन जाएगी। ऐसा ढंग दुनिया में आपको कहीं नहीं मिलेगा। धर्मों, सम्प्रदायों और विचारों में इतनी स्वतंत्रता कहीं नहीं मिलेगी।

मन में संन्यास लेने का विचार है, पर यह नहीं मालूम कि संन्यास के योग्य हूँ भी या नहीं?

संन्यास में सबसे बड़ी बाधा है विवाहित जीवन की इच्छा। लेकिन एक बार व्यक्ति के मन में आ जाए कि विवाह नहीं करना, तब फिर गृहस्थ आश्रम में रहने से कोई मतलब नहीं, क्योंकि फिर गृहस्थ आश्रम में ज्यादा कुछ मिलने वाला नहीं। फिर संन्यास में ही सब कुछ मिल सकता है। अगर किसी आदमी के मन में यह भाव आ जाए कि छोड़ो, क्या रखा है संसारी गृहस्थ जीवन में, तो वह आदमी संन्यास के योग्य है।

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, आदि हमारे संस्कारों के कारण होते हैं या शारीरिक गड़बड़ी के कारण?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। प्रकृति ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि को मनुष्य की उन्नति के लिए पैदा किया है। प्रकृति ने मनुष्य के अन्दर तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण से युक्त कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ दी हैं और वे प्रवृत्तियाँ इसलिए दी हैं कि मनुष्य कुछ-न-कुछ करता रहे। अगर लोगों में काम, क्रोध या लोभ खत्म हो जाए, तो सब-के-सब गोबर-गणेश बन जायेंगे, सब्जी-भाजी बन जायेंगे। कुछ करेंगे ही नहीं। काम, क्रोध, लोभ और मोह प्राणियों के अन्दर प्रेरक शक्तियाँ हैं। केवल मनुष्यों में नहीं, बल्कि हर प्राणी में। मनुष्य जो भी कर्म करता है, इच्छाओं से प्रेरित होकर करता है। अगर इच्छा खत्म हो जाए तो कर्म नहीं करेगा। मनुष्य को इच्छा कब नहीं होती? जब दिमाग विषादग्रस्त होता है। विषाद मस्तिष्क की एक ऐसी अवस्था है जिसमें आदमी आत्महत्या भी कर सकता है। आत्महत्या करने वाले अधिकांश लोग विषाद की अवस्था में ही आत्महत्या करते हैं।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह – ये सब मनुष्य को कर्म की ओर प्रेरित करते हैं। कर्म की ओर प्रेरित होकर ही मनुष्य ने घर बनाया, समाज बनाया, धर्म बनाए, मन्दिर बनाए, राजा-महाराजा बनाए, जाति-वर्ण बनाए, ब्राह्मण-ठाकुर-शूद्र बनाए, अस्त्र-शस्त्र बनाए, ताला-चाबी बनाए। कुत्ते, बिल्ली, हाथी, ऊँट, साँप, मेंढक या चिड़िया को देखो, उनकी मूल-प्रवृत्तियों पर गौर करो। ये प्रवृत्तियाँ सब में हैं, कोई भी जीव इनसे मुक्त नहीं है।

चाहे वह काम हो अथवा क्रोध, लोभ या मोह, यह हम लोगों ने प्रवृत्ति विशेष को एक नाम दिया है। हमें कोई चीज चाहिए, उसे कह दिया काम।

हमें कोई चीज पसन्द नहीं है, उसे कह दिया क्रोध। कोई चीज बहुत अच्छी है, हमारे पास भी होनी चाहिए – लोभ। हड्डी को देखकर कुत्ते के मुँह में पानी आता है न, यह लोभ हो गया। ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य के साथ अनादि काल से, चौरासी लाख योनियों में साथ रही हैं, और इन्हीं की वजह से मनुष्य ने अपनी माया का विस्तार किया है।

माया का विस्तार इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण हुआ है। नहीं तो परमात्मा यानि पुरुष अकर्ता है। भागवत, रामायण, गीता और वेदों-उपनिषदों में यही लिखा है कि ईश्वर अकर्ता है, आत्मा अकर्ता है। असली कर्ता है माया शक्ति। वही सब करती है और वही भोगती भी है। पुरुष तो अभोक्ता है, अकर्ता है। माया पुरुष की छाया है, उसकी संगिनी है, उसका एक भाग है। माया भी दो तरह की होती है। एक होती है शुद्ध माया, जैसे देवी, चण्डी इत्यादि और दूसरी होती है अशुद्ध माया, संसार की माया। यह भी ईश्वर का ही रूप है और यही सब कुछ करती है।

प्रकृति जो कुछ भी करती है उसका आधार सत्त्व, रजस् और तमस् – ये तीन गुण होते हैं। सात्त्विक का मतलब शान्त, राजसिक का मतलब सक्रिय और तामसिक का मतलब एकदम अंधेरा। इन तीनों गुणों के आपसी मेल-जोल से अरबों-खरबों नाम-रूप बन जाते हैं। सारी दुनिया अँग्रेजी, हिन्दी, अरबी या फारसी जैसी भाषाएँ जो बोलती है, वह किन चीजों का सम्मिश्रण है? अ, उ और म – केवल तीन ध्वनियों का। दो से नहीं होता, कम-से-कम तीन चाहिए। सारी दुनिया में जितनी भी बातचीत होती है, जितनी भी वाणियाँ, भाषाएँ, ग्रंथ और शब्द हैं, वे सब ॐ का ही विस्तार हैं। उसी तरह से सारी सृष्टि सिर्फ सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का ही विस्तार है। उसमें कभी सतोगुण प्रबल होता है, कभी रजोगुण तो कभी तमोगुण। प्राचीनकाल में सतोगुण प्रबल था, रजोगुण और तमोगुण कम थे। इस युग में रजोगुण और तमोगुण प्रबल हैं, सतोगुण कम है।

इसलिए हम काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, लोभ, मोह, आदि को अनावश्यक नहीं मानते। मनुष्य में घृणा होनी आवश्यक है, मगर अशुभ के प्रति, शुभ के प्रति नहीं। क्रोध होना चाहिए, मगर दानवी स्वभाव के प्रति, दैवी स्वभाव के प्रति नहीं। इच्छा होनी चाहिए, क्यों नहीं? मगर इच्छा मोक्ष की होनी चाहिए, बन्धन की नहीं। मतलब प्रकृति के उन्हीं नियमों की दिशा और प्रयोजन को तुम बदल दो। इतना भर तो तुम कर सकते हो।

आखिर काम क्या है? किसी चीज को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा। और ये इच्छाएँ कितनी प्रकार की होती हैं? दुनिया में जितनी भी इच्छाएँ हैं, उन्हें तुम तीन श्रेणियों के अन्तर्गत ला सकते हो – वित्तेषणा, पुत्रेषणा और दारेषणा। इनके अलावा चौथी इच्छा है ही नहीं। पहली है वित्तेषणा – रुपया-पैसा, धन-सम्पत्ति, खेत-खलिहान, आभूषण-साड़ी वगैरह पाने की इच्छा। दूसरी है पुत्र की कामना। बेटा हो, बेटी हो, पोता हो, खानदान हो, वारिस हो। तीसरी है दारा की इच्छा यानी स्त्री की इच्छा, पुरुष की इच्छा, शादी की इच्छा। सारी कामनाएँ इन तीनों कामनाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। इनके अलावा कभी-कभी कुछ लोगों में यश और प्रतिष्ठा की कामना भी होती है। मगर सामान्यत: लोगों में यह कामना नहीं होती। वित्तेषणा, पुत्रेषणा और दारेषणा, बस यही काम है।

यह कामना क्यों होती है? गीता कहती है – *संगात्संजायते काम:*। जब तुम्हारा मन किसी चीज के सम्पर्क में आता है, तब उस चीज की इच्छा होती है। जब तक हमने टी.वी. को नहीं देखा था, तब तक टी.वी. की कामना भी नहीं होती थी। हमारे पूर्वजों ने कभी कार नहीं देखी थी तो कार की कामना ही नहीं होती थी। इंग्लैंड के लोगों ने हाथी नहीं देखा, तो वहाँ कोई हाथी की कामना नहीं करता। हमारे ऋषि-मुनि लोग कहते हैं कि समस्त कामनाओं का आधार विषय-वस्तु के साथ सम्पर्क है –

ध्यायतो विषयान्पुंस: संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥
क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम:।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥

सन्त-महात्मा हमेशा कहा करते हैं कि जब काम, क्रोध, लोभ या मोह बहुत तीव्र हो जाए, तभी उसे जीतने की कोशिश करो। जब उसका अतिरेक हो जाए, तभी उसे सम्भालने और नियंत्रण में लाने की कोशिश करो। जब तक सामान्य चल रहा है, तब तक उसमें हस्तक्षेप मत करो, क्योंकि उसके साथ अनावश्यक हस्तक्षेप करने से मनुष्य के जीवन में उन्नति की सम्भावना खत्म हो जाती है। इच्छा तो प्रबल शक्ति है। शादी न हुई हो, बच्चा न हो, परिवार न हो, माँ-बाप न हों, तो क्या इच्छा करोगे? खाली दो रोटी की ही तो इच्छा होगी न? किसी के जीवन में केवल दो रोटी की इच्छा हो, यह भी कोई जीवन है?

यह दो रोटी की इच्छा उन्हीं लोगों के लिए कही गई है, जिन्होंने इच्छाओं के ऊपर महावत की तरह अंकुश लगाया है। हाँ, हम कहते हैं, हमें बस दो रोटी, एक लंगोटी चाहिए, क्योंकि अब हमारे अन्दर इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं। हम अपनी व्यक्तिगत बात बोल रहे हैं। पर फिर भी, हमारे अन्दर संकल्प जरूर है। याद रखो, कामना और संकल्प में भेद होता है। भले ही ऊपर से भेद नहीं दिखता। आखिर पीतल और सोने में भी ऊपर से कोई भेद नहीं दिखता, जस्ता और चाँदी भी एक सरीखा दिखता है, काँच और हीरा भी एक सरीखा दिखता है। संकल्प दूसरी चीज है। इच्छा अपने लिए होती है, जबकि संकल्प दूसरे के लिए होता है। जब मनुष्य के मन में संकल्प की सृष्टि हो जाए और स्वयं के लिए कामनाएँ खत्म हो जाएँ, तब कहा जाएगा, 'केवल दो रोटी, दो लंगोटी।'

पूरी गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया, उसका सार यही है कि कर्म करने में कोई हर्ज नहीं है। यह तो हमारा अधिकार है। *कर्मण्येवाधिकारस्ते*– तुम्हारा कर्म पर अधिकार है, तुम कर्म कर सकते हो, लेकिन *मा फलेषु कदाचन,* फल पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। कर्म में कोई हर्ज नहीं है। तुम घर-गृहस्थी बसाओ, पैसा इकट्ठा करो, बच्चे पालो, अस्पताल खोलो, सम्पत्ति इकट्ठी करो, अनाथालय खोलो, गरीबों के घर जाओ, लम्बा-चौड़ा लंगर चलाओ, लोगों को दाल-भात खिलाओ, दूध पिलाओ, कोई हर्ज नहीं। मगर यह कामना से प्रेरित होकर नहीं, संकल्प से प्रेरित होकर करना चाहिए।

काम, क्रोध, लोभ, मोह – ये सब महामाया के रूप हैं। तुम चण्डी के 108 नाम पढ़ो, ललिता के हजार नाम पढ़ो, किसी भी देवी के नाम पढ़ो, उसमें यही उल्लेख आयेगा कि तुम कामरूपिणी हो, तुम क्रोधरूपिणी हो। यह सब महामाया का ही रूप है। इसे अपने जीवन से पूरी तरह निकाल देना सम्भव नहीं। ऋषि-मुनि भी इसको नहीं कर सके।

यहाँ तक कि दुर्वासा और विश्वामित्र जैसे महान् ऋषियों में भी इतना क्रोध था! छोटी-सी बात पर श्राप दे देते थे।

नहीं, तुम लोगों को ऐसा बताया गया है, पर अगर दुर्वासा ऋषि या विश्वामित्र ऋषि की पूरी कहानी पढ़ोगे तब मालूम पड़ेगा। ऋषि एक प्रकार का सम्प्रदाय था। जैसे आजकल डॉक्टर, वकील, सम्पादक, लेखक, चित्रकार या संगीतज्ञ

होते हैं, वैसे ही उस समय एक सम्प्रदाय था जो ऋषि कहलाता था। यह विचारकों का सम्प्रदाय था। ऋषि साधक थे और सरल जीवन पसन्द करते थे। उनका दिमाग बड़ा तेज रहता था। विशेषकर ऋषि वशिष्ठ का दिमाग बहुत तेज था। ऋषि लोग विवाहित जीवन यापन करते थे। विवाहित जीवन आध्यात्मिक जीवन में बाधा है, ऐसा कहीं किसी ने नहीं कहा है। विवाहित जीवन के बारे में शास्त्र में कहीं पर भी कोई अड़चन नहीं है। यद्यपि संन्यास को सर्वश्रेष्ठ माना है और यह श्रेष्ठ है भी, मगर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मोक्ष के मार्ग में कभी भी बाधा नहीं माना गया है। ऋषि भरद्वाज की बेटी थी लोपामुद्रा, जिसका अगस्त्य जी के साथ प्रेम था। यह कहानी शास्त्रों में आती है। मगर उनके यश, प्रतिष्ठा, ज्ञान या ऊँचाई पर आज तक किसी ने आक्षेप नहीं किया है।

विश्वामित्र ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय थे। ऋषि वशिष्ठ के साथ उनका झगड़ा हुआ, तब उन्होंने तपस्या करनी शुरू की। बहुत तप किया, पर फिर भी सब उन्हें विश्वामित्र मुनि ही कहते थे। विश्वामित्र ब्रह्मर्षि की उपाधि चाहते थे पर लोगों ने कहा, 'नहीं तुम मुनि ही रहो।' विश्वामित्र ने इतना तप किया कि अन्तत: उन्हें गायत्री का साक्षात्कार हुआ। विश्वामित्र गायत्री मन्त्र के ऋषि हैं, खोजकर्ता हैं। उनके बारे में जो तुम कह रहे हो कि वे इतने बड़े ऋषि होकर क्रोध करते थे, वह अलग बात है। विश्वामित्र को गायत्री का दर्शन हुआ। वेदों में लिखा है। बाद में भले ही त्रिशंकु राजा को लेकर देवताओं से भिड़ गये, मगर जब ताड़का, सुबाहु और मारीच ने मिलकर उनके यज्ञ का विध्वंस शुरू किया, तब उन्होंने उन पर न शस्त्र का प्रयोग किया और न ही उन्हें श्राप दिया, बल्कि मदद के लिए अयोध्या पहुँचे। वहाँ पहुँचकर इक्ष्वाकु सेना भी नहीं माँगी, केवल रामजी को माँगा।

जहाँ तक श्राप की बात है, वह केवल प्राचीन काल में ही नहीं, आज भी लगता है। मगर सबका नहीं लगता। मान लो कि तुम्हारा-हमारा झगड़ा हो गया है। अब तुम हमें श्राप दे दो तो भला हमें क्यों लगेगा? श्राप तब लगता है, जब श्राप देने वाला व्यक्ति बिल्कुल निरपराध होता है। कबीरदासजी ने कहा भी है –

दुर्बल को मत सताइये जाकी मोटी हाय।
मरे खाल की साँस से लौह भस्म हो जाय।।

जो व्यक्ति दुर्बल है, असहाय है, उसकी आह लगती है। अब इसे तुम चाहे श्राप कहो या आह कहो। दुर्वासा जैसे महात्मा को तो दुनिया में किसी से कोई मतलब था नहीं। रोटी के दो टुकड़े माँग कर खाते थे। कोई तंग करता तो कहते थे, 'धत्त!' गुस्सा आ जाता था। पहले के जमाने में श्राप ज्यादा लगता था, क्योंकि उस समय अच्छे लोग ज्यादा थे।

महाभारत का युद्ध वास्तव में कहाँ हुआ था?

इतिहासकारों और पौराणिकों में इस बारे में बहुत विवाद है। इतिहासकारों को जो भी प्रमाण और प्रलेख मिले हैं, उनसे ऐसा मालूम पड़ता है कि महाभारत जहाँ हुआ, वह देश अब अफगानिस्तान है। इसमें दो बातें याद रखने की हैं। पहली बात स्थान और दूसरी बात लड़ने वाले लोग। अगर आज हिन्दुस्तान के लोगों – मारवाड़ियों, बिहारियों, राजस्थानियों, गुजरातियों, बंगालियों, आदि को देखो और उनकी मनोभावनाओं, मानसिकता और दर्शन का अध्ययन करो, तो वे कहीं पर भी कौरवों और पाण्डवों से मिलते-जुलते नहीं हैं। द्रौपदी, धृष्टद्युम्न, पाण्डवों और कौरवों की एक अलग मानसिकता थी। वह मानसिकता, वह प्रवृत्ति, इन लोगों में नहीं है। सब डरपोक हैं, सब लड़ाई से दूर रहना चाहते हैं। जबकि महाभारत काल के लोग कहते थे, 'जीतें या मरें, लड़ेंगे जरूर।' गीता में श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन से कहा था –

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय: ॥2.37॥

'मरोगे तो स्वर्ग जाओगे, और जियोगे तो राज्य भोगोगे। इसलिए उठो, लड़ने की तैयारी करो।' यह बोलने की हिम्मत यहाँ के साधु-महात्माओं में नहीं है। वे तो लड़ने से मना करते हैं। लड़ाई करने वाले तो पंजाबी हैं, अफगानिस्तानी हैं, फ्रंटियर वाले हैं। इनका स्वभाव दूसरा है। जात के दृष्टिकोण से पंजाबी लड़ाकू जात है। गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह – सिख गुरुओं की कहानी से पता चलता है कि वे लड़ाकू थे। अभी हरियाणा में देखो, मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं। हरियाणा वाले सीधे बन्दूक से बातें करते हैं। यह लड़ाकू जात का लक्षण है।

इसलिए जहाँ तक महाभारत युद्ध के स्थान का सम्बन्ध है, उसके बारे में इतिहास दूसरा निर्णय करता है। इस सम्बन्ध में अनेक पुरातात्त्विक अवशेष

मिले हैं, अनेक लोक-कथाएँ मिली हैं। खैर, वास्तविकता जो भी हो, पर वनवास के समय पाण्डव मुख्यत: हिमालय के नीचे ही रहे। अन्त में अपना राज्य परीक्षित को देने के बाद पाँचों भाई बद्रीनाथ से होते हुए शतोपंथ और स्वर्गारोहण की ओर निकले। बद्रीनाथ के आगे करीब 6-7 दिन के रास्ते पर एक बहुत बड़ी झील है। वहाँ आदमी नहीं जाते। वह हिमालय के मध्य में है। उसे शतोपंथ कहते हैं और उसके बाद जो पहाड़ी है, उसे स्वर्गाहोरण कहते हैं। वहाँ वे बर्फ में गल गये। इतना भर मालूम है।

हो सकता है उस समय हिमालय इतना ऊँचा न रहा हो?

नहीं, ऐसा नहीं है। बड़े स्तर पर जो कॉन्टिनेंटल शिफ्ट अर्थात् भूमि का स्थानांतरण होता है, उसमें कई लाख साल लग जाते हैं। भूमि का स्थानांतरण हमेशा उत्तर की तरफ रहा है। दक्षिण में पानी ज्यादा है, तुम देखते ही हो। और उत्तर में भूमि ज्यादा। कॉन्टिनेंटल शिफ्ट उत्तर की तरफ होते रहता है। द्वापर युग और कलि युग के बीच तीन-चार हजार वर्षों में बड़े स्तर पर स्थानांतरण नहीं हुआ, क्योंकि जब भी ऐसा होता है, वह एक प्रकार से अनर्थकारी और प्रलयकारी होता है। बहुत-से द्वीप गिरते हैं, बहुत-से द्वीप उठते हैं, बहुत जगह बाढ़ आती है, बहुत जगह भूकम्प आते हैं, कई तरह के विनाश होते हैं। फिर विनाश के बाद दुबारा सृजन में हजारों-लाखों साल लग जाते हैं।

पर इतनी बात तो निश्चित है कि हिमालय विन्ध्याचल की अपेक्षा नया है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, कहीं पर भी जाओ, वहाँ पहाड़ों में गोल पत्थर मिलेंगे, जैसे समुद्र में मिलते हैं। पहाड़ों में ये गोल पत्थर आये कहाँ से? और हिमालय पर्वत अभी भी ढीला है, जबकि विन्ध्याचल ठोस हो चुका है। पहाड़ जब पुराना हो जाता है तब उसमें से हवा निकल जाती है और मिट्टी नीचे धँस जाती है। वह स्थिर और ठोस हो जाता है। लेकिन जो पहाड़ नया-नया उठता है वह ठोस नहीं रहता। इसलिए उसमें भू-स्खलन ज्यादा होते हैं। हिमालय में ही ज्यादा भू-स्खलन होते हैं, विन्ध्याचल में ज्यादा नहीं होते। हिमालय की उत्पत्ति को इतिहास न कहकर प्रागैतिहासिक घटना कह सकते हो। यह इतिहास के पूर्व की घटना है, हमारे शास्त्रों में इसका कहीं पर भी प्रमाण नहीं मिलता। शास्त्रों में, वेदों में हिमालय की उत्पत्ति का उल्लेख आता ही नहीं है। मगर उनमें हिमालय पर्वतों का तो

भरपूर उल्लेख है। आयुर्वेद में जितनी भी जड़ी-बूटियाँ हैं, वे सब हिमालय से ही तो आयी हैं। द्रोण पर्वत, गन्धमाधन पर्वत, ये सब पर्वत हिमालय में ही तो हैं। जिस युग में आयुर्वेद रचा गया, उस युग तक हिमालय अपनी जगह स्थित हो चुका था।

अगस्त्य मुनि उत्तर भारत के थे, किन्तु वे दक्षिण की ओर चले गये। विन्ध्याचल पार करके वे दक्षिण भारत चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने कुछ काम किये। सबसे पहले तो द्रविड़ भाषा का व्याकरण लिखा। जिसे तुम लोग तमिल कहते हो, उसे द्रविड़ भाषा भी कहते हैं। उस भाषा का उन्होंने व्याकरण लिखा। इसलिए तमिल लोग आज भी अगस्त्य जी को मानते हैं। दूसरा, वे कावेरी नदी को लाये। इन दो कामों की वजह से दक्षिण भारत में अगस्त्य जी को बहुत ही पूज्य माना जाता है।

दक्षिण भारत में जो पंचांग चलता है, वह सौर-सिद्धान्त पर चलता है। जबकि उत्तर भारत में प्रचलित पंचांग चन्द्रमा की गति पर आधारित है। मुसलमानों के पंचांग को जन्त्री कहते हैं, वह जन्त्री भी चन्द्रमा पर आधारित है। मगर जो द्रविड देश के हैं, वे सूर्य की गति को मानते हैं क्योंकि सूर्य की गति निश्चित होती है। साल भर समान रहती है। चान्द्र वर्ष में हर साल दस दिन का फर्क पड़ता है, इसलिए तीन साल में अधिक मास बनाकर उसे बराबर करना पड़ता है।

किन्तु कुछ दृष्टियों से चान्द्र पंचांग बहुत उपयोगी है। नक्षत्रों का आना और मौसम का पूर्वानुमान करना चान्द्र पंचांग में ज्यादा सरल है। सूर्य ॠतुओं का राजा नहीं है, ॠतुओं का राजा है चन्द्रमा। वही वनस्पतियों का राजा, समस्त रसों का राजा है। इसलिए लोग पंचांग में देखते हैं कि कब हस्ती नक्षत्र आयेगा, कब उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र तो कब चित्रा नक्षत्र आने वाला है। नक्षत्रों का आवागमन चन्द्रमा की अनुकूलता से होता है। उत्तर भारत में प्रायः सब शुभ काम पूर्णिमा को होते हैं जबकि दक्षिण भारत में अमावस्या को।

अगस्त्य मुनि के अलावा दक्षिण के अन्य प्रसिद्ध ॠषि परशुराम थे। आज भी उनके नाम से परशुराम-क्षेत्र प्रसिद्ध है। परशुराम का क्षेत्र कहाँ से शुरू होता है, मालूम है? बम्बई से निकलकर थोड़ा आगे बढ़ो तो एक जगह मिलती है, चिपलुण। चिपलुण एक छोटा-सा तटवर्ती गाँव है। उस गाँव के पास एक बहुत प्राचीन मन्दिर है, जिसे काला रामजी का मन्दिर कहते हैं। वहाँ दो राम हैं, एक काला राम, दूसरा गोरा राम। काला राम हुये अयोध्या

के राम जी, और गोरा राम हुये दक्षिण भारत के राम जी। जब लोग वहाँ जाते हैं तो पण्डित लोग समझाते हैं कि कौन उत्तर भारत के हैं और कौन दक्षिण भारत के। यह क्षेत्र उत्तर और दक्षिण भारत की संगम भूमि है, ऐसा कहा जाता है। चिपलुण से लेकर केरल तक का पूरा तटवर्ती इलाका परशुराम-क्षेत्र माना जाता है। वहाँ पर सरकार का नोटिस भी है कि यहाँ से परशुराम-क्षेत्र प्रारम्भ होता है।

भारत में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस कहाँ लिखी थी? वाराह-क्षेत्र में। वैसे ही यह परशुराम-क्षेत्र है। ऋषि परशुराम के पूर्वजों ने केरल की भूमि को समुद्र से वापस मांगा था। अब कहानियाँ तो पौराणिक ढंग से, चमत्कारी ढंग से वर्णित हैं कि पृथ्वी समुद्र से निकल आयी, मगर हमारी आधुनिक भाषा में बोलना चाहिए कि उन्होंने केरल की भूमि का समुद्र से पुनरुद्धार कर उसे कृषि करने योग्य बनाया था।

रामायण में उल्लेख आता है कि समुद्र की खुदाई महाराज सगर ने करवायी थी। उन्होंने कैसे खोदा होगा? उस समय इतना विज्ञान था?

या तो हमसे विज्ञान की बात करो या पुराणों की बात। पुराणों में उल्लेख आता है कि अगस्त्य मुनि विन्ध्याचल पार करके दक्षिण चले गये। उन्होंने विन्ध्याचल से कहा, 'नीचे हो जाओ' और वह नीचे हो गया। यह उल्लेख भी आता है कि वे पूरे का पूरा समुद्र पी गये। पर क्या तुम जानते हो कि अगस्त्य नाम का नक्षत्र भी होता है? जब अगस्त्य नक्षत्र का उदय होता है तब पृथ्वी पर बरसात का पानी सूखने लगता है। वह पानी सूर्य से नहीं सूखता। 'अगस्त पंथ जल सूखा'– अगस्त्य नक्षत्र के उदय होने पर पृथ्वी में नमी कम हो जाती है। मतलब वह अगस्त्य नक्षत्र समुद्र को सुखा सकता है। अभी विज्ञान की बात नहीं करना। अगस्त्य एक ऐसा नक्षत्र है जो पानी को सुखा सकता है। समुद्र में क्या होता है? पानी ही तो होता है न। अगस्त्य ने समुद्र को सुखाया, कोई गलत बात तो नहीं कही पुराणों ने।

मगर यहाँ उस अगस्त्य नक्षत्र की बात नहीं हो रही है। यहाँ उस अगस्त्य की बात हो रही है, जिसके दो हाथ और दो पैर हैं, जिसे तुम मुनि मानते हो। एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व की बात हो रही है। अब जैसे ध्रुव नक्षत्र है या राजा उत्तानपाद का पुत्र? ध्रुव उत्तानपाद का पुत्र भी था और ध्रुव उत्तरी आकाश में तारा भी है। पृथ्वी तो घूमती रहती है, पर उत्तरीय ध्रुव पर जो तारा होगा वह

कैसे हिलेगा? इसलिये वह ध्रुव हो गया, अचल हो गया। ध्रुव का मतलब अटल। अब राजा का वह पुत्र ध्रुव, तपस्या में अटल रहा तो उसकी स्मृति में उस नक्षत्र का नाम उस पर रख दिया गया। आज लोग चन्द्रमा पर जा रहे हैं। चन्द्रमा में जितने पर्वत और द्वीप हैं, उनका नामकरण ईसाई सन्तों और वैज्ञानिकों के नाम पर हो रहा है। उसी तरह एक नक्षत्र को ध्रुव का नाम दे दिया गया। वह महान् व्यक्ति था, उसने पाँच साल की उम्र में तपस्या की थी और उसे भगवान नारायण का दर्शन हुआ था। इतना महान् आदमी, जो पाँच साल की उम्र में जंगल चला जाए, जिसे भगवान के दर्शन हो जायें, उसे अमर नहीं बनाओगे क्या?

ऐसे ही अगस्त्य नक्षत्र भी है। अगस्त्य नक्षत्र पानी को सुखाता है और अगस्त्य एक सन्त भी थे, जो दक्षिण भारत गये थे। अब इन दो अगस्त्यों को पुराणों में जोड़ दिया गया। जिस अगस्त्य ने पानी सुखाया, क्या वही तमिल व्याकरण लिखने वाला अगस्त्य भी था? गड़बड़ हो जाती है न समझने में! जैसे भगीरथ गंगा जी को खींच कर लाया, वैसे ही अगस्त्य कावेरी को महाबलेश्वरम् से लाये। बम्बई के पास महाबलेश्वरम् एक पहाड़ी स्थान है, जहाँ शिवजी का ज्योतिर्लिंग है। वहाँ से कावेरी बहुत पतली धारा में निकलती है। जैसे अमरकण्टक से सोनभद्र और नर्मदा निकलती है, वैसे ही महाबलेश्वरम् से कावेरी नदी निकलती है। उस कावेरी नदी को अगस्त्य लाये थे। तो अगस्त्य एक मुनि का नाम है, और एक नक्षत्र का नाम भी। वशिष्ठ एक मुनि का नाम है, एक तारे का नाम भी। ठीक है न!

क्या द्वारिका नगरी सचमुच समुद्र के बीच बसी थी?

मथुरा की तुलना में तो द्वारिका एक बहुत ही प्रगतिशील नगरी थी। कहानी चाहे कुछ भी कहे, मगर मेरा विचार यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ने द्वारिका को व्यापार की दृष्टि से चुना। पहले के जमाने में हर कोई राजा अपने खजाने को भरने के लिए दूसरे राज्य पर हमला करता था, चोरी करता था, डकैती करता था और अपने लोगों को पालता था। कृष्णजी को यह तरीका पसन्द नहीं आया। उनका मानना था कि प्रजा को व्यापार करना चाहिए। राजा को प्रजा से कर लेकर प्रजा को वापस देना चाहिए। लड़ाई-झगड़ा नहीं होना चाहिए। व्यापार की दृष्टि से द्वारिका बहुत ही उत्तम थी और इसलिए उन्होंने वहाँ राज्य कायम किया।

मैं समझता हूँ उसी समय कच्छ में रण बना था। वहाँ अंत:स्थलीय समुद्र था, समुद्र अन्दर तक जाता था, इतना तो पक्का है। पुराणों में जिस तरह से द्वारिका का वर्णन है, वैसा वर्णन हस्तिनापुर या मथुरा का नहीं है। द्वारिका की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वह समुद्र के बीच थी और वहाँ सीढ़ियों में हीरा, पन्ना, पुखराज जड़े हुए थे। ये सब रत्न कहाँ से आये? समृद्धि से। और समृद्धि बिना व्यापार के नहीं आती। समृद्धि का मूल व्यापार ही है। तुम्हारा माल हम लें और हमारा माल तुम लो। इसी को तो व्यापार कहते हैं। लूट-मार से समृद्धि थोड़े ही आती है।

– 29 सितम्बर, 1997



नोट

नोट

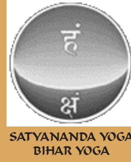


स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती झारखण्ड राज्य के अज्ञात-से गाँव, रिखिया में सन् 1989 में पधारे और यहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। गहन वैदिक तपस्याओं और साधनाओं को सम्पन्न कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए संन्यास परम्परा का एक उच्च आदर्श स्थापित किया। सन् 2007 में उन्होंने 'सेवा, प्रेम और दान' के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से रिखियापीठ की स्थापना की। 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि में वे यौगिक विधि से स्वेच्छानुसार महासमाधि में लीन हो गए।

यह पुस्तक श्री स्वामीजी द्वारा रिखियापीठ में सितम्बर 1997 में दिये गये सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने दर्शन-शास्त्र, साधना, परोपकार, भक्ति, महिलाओं के उत्थान, बच्चों की शिक्षा, प्राचीन इतिहास, आधुनिक सामाजिक प्रणाली तथा अर्थव्यवस्था जैसे अनेक विषयों पर अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। जीवन में प्रकाश और ज्ञान खोजते सभी जिज्ञासुओं एवं साधकों के लिए उनके व्यावहारिक विचार एक नयी दिशा, ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान करते हैं।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-11-3